गंगव्वा गंगामाई

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

गंगव्वा गंगामाई

शंकर मोकाशी 'पुणेकर'

अनुवादक

बी. आर. नारायण

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

प्रथम संस्करण : 1976 (शक 1897)
प्रथम आवृत्ति : 1992 (शक 1914)

Original Title : Gangawa Gangamai *(Kannada)*
Hindi Translation : Gangawa Gangamai
ISBN 81-237-0018-0

रु. 28.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, **इंडिया**, ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा **प्रकाशित**।

भूमिका

कन्नड़ में उपन्यास का प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है परंतु उतने ही निश्चित रूप से इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है कि उपन्यास का प्रारंभ कब से हुआ। कुछ आलोचकों का मत है कि 1823 में लिखा गया केंपुनारायण का 'मुद्रामंजूष' कन्नड़ का प्रथम उपन्यास है। इस गद्य कथा का निरूपण-क्रम उपन्यास के समीप है परंतु आगे आने वाले उपन्यास के स्वरूप की कल्पना केंपुनारायण में न थी। यह अवश्य कहा जा सकता है कि गद्य को संवार कर उसके द्वारा उपन्यास की रचना के लिए आवश्यक भाषा

की पृष्ठभूमि तैयार करने का यह यश इस लेखक को ही प्राप्त होता है। श्रेष्ठ गद्य में 'रामाश्वमेध' के लेखक पुट्टण्णा (1870-1901) ने गोदावरी नामक उपन्यास आधा लिखा। वेंकटाचार्य की रचनाओं को पुट्टण्णा बड़ी रुचि तथा आतुरता से पढ़ते थे उसी से उन्हें उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली।

वी. वेंकटाचार्य (1845-1914) ने बंकिमचंद्र और अन्य बंगाली लेखकों की रचनओं का अनुवाद करके कन्नड़ के पाठकों को उपन्यास का परिचय कराया। परंपरागत मूल्यों के समर्थक बंकिमचंद्र के विषवृक्ष, देवी चौधरानी, कृष्णकांत का वसीयतनामा आदि सामाजिक उपन्यास, राजसिंह, दुर्गेशनंदिनी, आनंदमठ जैसे ऐतिहासिक उपन्यास कन्नड़ में जनप्रिय हुए। बंगाली उपन्यासों में संस्कृत का बाहुल्य था। उसी शैली को अपनाने के कारण कन्नड़ भाषा भी क्लिष्ट हुई। शिवराम कारंत का यह कथन उल्लेखनीय है कि शैली की ओर हमारा मोह बंगाली उपन्यासों के कन्नड़ अनुवाद को पढ़ने से हुआ।

मैसूर के वेंकटाचार्य ने जहां बंगाली उपन्यासों का कन्नड़ में अनुवाद किया वहां मराठी लेखकों का, मुख्य रूप से हरिनारायण आप्टे के उपन्यासों का कन्नड़ में अनुवाद उत्तर कर्नाटक के वी. टी. गलगनाथ (1869-1942) ने किया। राणा राजसिंह, लक्ष्मीबाई, भगवती कात्यायिनी आदि कृतियों की अनूदित भाषा में वेंकटाचार्य की कन्नड़ की अपेक्षा सरलता और स्वाभाविकता दिखायी देती है। इसका मूल कारण मराठी भाषा का संस्कृतनिष्ठ न होना भी हो सकता है। गलगनाथ ने उत्तर कर्नाटक में प्रचलित शैली को ही संवारा है। इस प्रदेश के कई उपन्यासकारों ने गलगनाथ की शैली का अनुकरण किया। इससे यह प्रकट होता है कि उनकी भाषा अत्यंत प्रभावशाली थी। प्रसिद्ध वीरों के रोमांचकारी साहसिक कृत्यों का चित्रण, लोक जागृति की इच्छा, भाषा की सरलता और महाराष्ट्र का भौगोलिक सामीप्य आदि कारणों से वे उत्तर कर्नाटक में जनप्रिय अनुवादक हुए।

वेंकटाचार्य और गलगनाथ के समय को अनुवाद-युग कहा जा सकता है। इन अनुवादकों से उपन्यास जन सामान्य तक पहुंचने लगा। पाठकों को साहित्य में उपन्यास पसंद आने लगा। देश में सांस्कृतिक, राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में ये कृतियां सहायक हुईं। मुख्य रूप से यह अनुवाद कार्य कन्नड़ में उपन्यास के

उदय में प्रेरक हुआ। गलगनाथ ने ही विजय नगर साम्राज्य को आधार बनाकर 'माधव करुण विलास', 'कुमुदिनी' नाम के दो मौलिक उपन्यासों की रचना की। इन कृतियों में देशभक्ति, धर्माभिमान, दैव भक्ति विशेष रूप से दिखायी देते हैं। इसमें कन्नड़ के गत वैभव को दिखाने की भावना भी निहित है। परंतु अस्पृश्यता-निवारण जैसी समकालीन समस्याओं के साथ ऐतिहासिक सत्य का सामंजस्य गलगनाथ के मौलिक उपन्यासों में सही ढंग से नहीं हो पाया है।

गलगनाथ के मौलिक उपन्यास प्रकाशित होने से पूर्व दक्षिण कर्नाटक में भी मौलिक उपन्यास लिखे जा रहे थे। गुलवाडी वेंकटराय का 'इंदिरा बाई' (1899) कन्नड़ का प्रथम सामाजिक उपन्यास है। शायद यह प्रथम मौलिक उपन्यास भी है। जो भी हो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कन्नड़ में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक उपन्यास का आरंभ हो चुका था। 'वाग्देवी' (1905) के लेखक बोलार बाबुराव और 'रोहिणी' (1907) के रचयिता गुलवाडी अण्णाजीराय दक्षिण कर्नाटक में उपन्यास साहित्य को आगे बढ़ा रहे थे। कन्नड़ भाषी प्रदेश प्रशासन की दृष्टि से महाराष्ट्र, मद्रास और पुराने मैसूर में बंटा होने पर भी बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के समाप्त होने तक उसमें पर्याप्त संख्या में अनूदित और मौलिक उपन्यास लिखना आरंभ हो गया था।

1915 में प्रकाशित 'माडिद्दुण्णो महाराय' कन्नड़ के उपन्यास के विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है। पुराने मैसूर की शिष्ट शैली को एम. एस. पुट्टण्णा ने इसमें प्रयोग किया है। उन्होंने प्रथम बार, जहां तक संभव हो प्रचलित भाषा को ही वार्तालाप में प्रयोग किया। उनका विचार था कि उपन्यास में मूल्यों तथा शील निरूपण के लिए पौराणिक आदर्श आवश्यक है, फिर भी उन्होंने उपन्यास की कथावस्तु जनसाधारण से ली है। यहां यह उल्लेखनीय है कि 'रामायण दर्शन' के कवि के. के. वी. पुट्टप्पा ने अपने उपन्यासों की कथा-वस्तु जनसाधारण से ली है।

पुट्टप्पा के 'कानूरु सुब्बम्मा हेग्गडती' और 'मलेयलल्लि मदुमगलु' नामक वृहत्काय उपन्यासों की प्रकाशन अवधि में एक दूसरे के बीच तीन दशकों का अंतर है। पुट्टप्पा ने अपना बचपन और यौवन मलेनाड की गोद में बिताया था। इन दोनों उपन्यासों में लेखक का वह अनुभव विशेष रूप से व्यक्त हुआ

है। सौंदर्य के आराधक पुट्टप्पा के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनसे कन्नड़ उपन्यासों को काव्यमय आयाम प्राप्त हुआ।

कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध--मास्ती वेंकटेश अय्यंगार का मत है कि चरित्र के परिपक्व अनुभव के आधार पर उपन्यास की रचना होनी चाहिये। मास्ती की लेखनी अविराम चल रही है। उन्होंने 'सुब्बण्णा' नाम की एक सुंदर कृति की रचना कई वर्ष पूर्व की थी, बाद में उन्होंने मलेनाड के इतिहास की पृष्ठभूमि में 'चेन्नबसव नायक' लिखा। उनका और एक उपन्यास 'चिक्कवीर राजेंद्र' कोडग के इतिहास को कथावस्तु बनाकर लिखा गया है। कर्नाटक की संस्कृति और उसका अंतःसत्व मास्ती के उपन्यासों की विशेषता है।

कन्नड़ के प्रभावशाली उपन्यासकार शिवराम कारंत का दृढ़ मत है कि जीवन का अनुभव ही साहित्य निर्माण का आधार होना चाहिये। वास्तविकता और आडंबर रहित शैली ही कारंत के उपन्यासों का सहज गुण है। समाज सुधार को मुख्य उद्देश्य बनाकर लिखे गये उपन्यासों में भी लेखक की सृजनात्मकता सजग रहती है, अनुभूति की अभिव्यक्ति विषयानुकूल है। सामाजिक चिंतन कारंत के उपन्यासों में बौद्धिकता प्रदान करता है। औपन्यासिक अन्विति उनकी साधना का दूसरा स्वरूप है। साहित्य में उन्होंने किसी पंथ की स्थापना नहीं की है। कारंत के अनुयायी भी कोई नहीं है। उनके अधिकतर उपन्यासों में दक्षिण कर्नाटक का जनजीवन चित्रित हुआ है, सामान्य जनता के सुख-दुःख के साथ वहां के भूमि, पानी, प्राणी, पक्षी, पेड़-पौधे मूर्तिमान हो उठे हैं। कारंत की उत्तम कृतियों में पुट्टप्पा के उपन्यासों के समान वर्णन स्वतंत्र रूप से न होकर कृति की समग्रता में मिल जाते हैं। 'सरसम्मन समाधि', 'चोमन दुडि', 'मरलिमण्णिगे', 'बेट्टदजीव' आदि सफल कृतियों में कारंत के उपन्यासों की विविधता व्यक्त होती है। 'अलिदमेले' में नयी तकनीक का प्रयोग हुआ है। प्रयोगशीलता कारंत के व्यक्तित्व का गुण होने पर भी वह उपन्यासकार कारंत की साधना की विशेषता नहीं है।

नयी तकनीक के प्रयोगों को तर्कसंगत दृष्टि से अपनाकर कन्नड़ साहित्य को नवीनता प्रदान करने वाले नयी पीढ़ी के लेखक ही हैं। परंतु यहां इसके पूर्व के साहित्य को मोड़ देकर उसे आगे बढ़ाने वाले प्रगतिशील लेखकों के बारे में

भी एक-दो बातें कहनी हैं। एम. एस. पुट्टण्ण के काल तक के उपन्यासों को कन्नड़ के उपन्यास का पूर्व-युग कहा जा सकता है। के. वी. पुट्टप्पा, मास्ती तथा कारंत इन प्रमुख लेखकों की रचनाओं के आगमन के बाद, अर्थात् स्थूल रूप से 1930 के बाद--कन्नड़ उपन्यास की विशेष समृद्धि होने लगी। उपन्यास के विकास में प्रगतिशील लेखकों की देन को नजरंदाज नहीं किया जा सकता।

'संध्याराग', 'नटसार्वभौम' के लेखक ए. एन. कृष्णराव के कारण उपन्यास की जनप्रियता इतनी बढ़ गयी कि इससे पहले कभी उतनी नहीं हुई थी। आलोचनात्मक दृष्टि से और जन रुचि की दृष्टि से उपन्यास को पढ़ने वालों की संख्या में अपार वृद्धि हुई। कृष्णराव और कुछ अन्य लेखकों ने वेश्या जीवन, कलाकार का जगत, पूंजीवाद के दुष्परिणाम आदि विषयों को अपने उपन्यासों के लिए चुना। साहित्य के विषय वस्तु के बारे में जो एक प्रकार की पवित्रता की भावना चली आ रही थी उसे बदलकर नये लेखकों के आगमन के समय एक साथ जो विरोध होने की संभावना थी उसकी तीव्रता को प्रगतिशील लेखकों ने कम किया। परंतु जनप्रियता के लिए प्रयुक्त उनकी शैली स्पष्टता, संभाषण प्रिय, कुतूहलमय तथा कथानक की रोचकता और उत्तेजना के लिए प्रसिद्ध रही है। इसी कारण सर्वश्री कृष्णराव, सुब्बाराव, बसवराज, कट्टीमनी निरंजन, कृष्ण-मूर्ति पुराणिक आदि के उपन्यास पत्रकारिता के स्तर से ऊपर नहीं उठ सके।

1960 के लगभग प्रकाशित उपन्यासों में राव बहादुर का 'ग्रामायण' एक महत्वपूर्ण कृति है। एक ग्राम में घटने वाली घटनाओं में अन्याय का पलड़ा भारी होता है, परिणामस्वरूप प्रकृति के प्रकोप से सारा गांव खाली हो जाता है। इस दुखद अनुभव को इस उपन्यास में सशक्त भाषा में व्यक्त किया गया है। साथ ही इसमें प्रादेशिकता और सांकेतिकता के साथ सर्वकालिकता का समन्वय सफलता से किया गया है।

इस शताब्दी के छठे दशक में विकसित नव्य संप्रदाय के कला प्रयोग को स्फूर्ति देने वाले लेखक कन्नड़ के श्रेष्ठ कवि गोपाल कृष्ण अडिग हैं, परंतु किसी भी प्रभाव की छाया में बहुत देर तक रहना नव्य स्वभाव के विपरीत है। यू. आर. अनंतमूर्ति, पी. लंकेश, तेजस्वी, गिरी आदि ने इस क्षेत्र में बहुत जल्दी अपना प्रभाव जमाया। ये सब मास्ती के समान कहानी क्षेत्र से उपन्यास क्षेत्र में आये

नये लेखकों में अत्यंत प्रभावशाली उपन्यासकार अनंतमूर्ति के प्रसिद्ध उपन्यास 'संस्कार' में जीवन के अनुभव को बौद्धिकता के आधार पर एक संवेदनशील व्यक्ति द्वारा सांस्कृतिक निग्रह के द्वारा एक नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अनंतमूर्ति का दूसरा उपन्यास 'भारतीपुर' हाल ही में प्रकाशित हुआ है। ए. के. रामानुजन का 'हलदिमीनु' शारी के अप्रकाशित अंग्रेजी उपन्यास का अनुवाद होने पर भी तकनीक तथा स्थायी अंतर्मुखी भावों के विवेचन से कन्नड़ साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है। पी. लंकेश का 'बिरुकु' तेजस्वी का 'स्वरूप' गिरी का 'गति-स्थिति' यशवंत चित्ताल का 'मुरुदारिगलु' और शांतिनाथ देसाई का 'मुक्ति' उपन्यासों से नये लेखकों की प्रतिभा स्पष्ट होती है। नया साहित्य मानव के सामाजिक परिवेश तथा वैयक्तिक अनुभूति में व्यक्त होने वाले वास्तविक अनुभव को सूक्ष्म किंतु तीखे व्यंग्य और काव्यमय भाषा में सशक्त रूप में व्यक्त करता है। स्त्री-पुरुष, व्यक्ति-समाज और संस्कृति इन संबंधों की अव्यवस्था बढ़ती है तब मनुष्य अपने और जगत के बीच की खाई को पहचानने लगता है---इससे उसमें निराशा स्थायी रूप लेने लगती है, उसी की विवेचना नव्य उपन्यासों में होती है। नव्य पूर्व के उपन्यासों में जीवन में एक गूढ़ अर्थ तथा निरंतरता दिखायी देती है तो इसमें अर्थहीनता और संस्कृति की निर्जीवता व्यक्त होती है। नव्यों में जीवन के प्रति हताश तथा अनास्था का कारण समकालीन यूरोपीय साहित्य में व्यक्त अस्तित्ववाद और असंगत परंपरा और उसमें भी मुख्य रूप में काफ्का और कामू का प्रभाव है। परंतु जो लोग नये साहित्य की प्रमाणिकता पर संदेह करते हैं उन्हें इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि यूरोपीय संस्कृति का हमारे जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। सारांश यह है कि अब तक प्रकाशित उपन्यासों के आधार पर फिलहाल यही कहा जा सकता है कि कन्नड़ के प्रतिभाशाली लेखकों में अधिक लोग आधुनिक लेखक हैं।

यहां कन्नड़ उपन्यास की संक्षिप्त आलोचना—पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक--इस प्रकार अलग-अलग शीर्षक देकर नहीं की गयी है। अब तक जिन लेखकों का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त कुछ और भी लेखक हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। जैसे---देवडु, गोकाक, श्रीरंग, भैरप्पा, के. वी. अय्यर, इनामदार, मिर्जि अण्णाराव, आर. श्री. मुगलि,

वीरकेसरी, सीताराम शास्त्री, कोरटी श्री निवासराव, चदुरंग, व्यासराय बल्लाल, एस. अनंत नारायण, राममूर्ति, त्रिवेणी, एम. के. इंदिरा आदि। कन्नड़ का उपन्यास साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। इसका मूल्यांकन अभी किया जाना है।

कन्नड़ तथा अंग्रेजी के लेखक श्री शंकर मोकाशी की प्रांतीय स्तर पर ही नहीं अपितु राष्ट्रीय स्तर पर भी पर्याप्त प्रसिद्धि है। उन्होंने 'गंगव्वा गंगामाई' उपन्यास के अतिरिक्त 'मां के तीन मुख' नाम का एक काव्य-संकलन, 'ब्रेंदे की काव्य मीमांसा' नाम का एक आलोचनात्मक ग्रंथ और कुछ आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं। उन्होंने अपनी आलोचना में नव्य लेखकों का विरोध किया है। उनका मत है कि आलोचना का मुख्य काम रस ग्रहण है, मूल्यांकन नहीं, अतः नवीन कन्नड़ साहित्य की आलोचना में शल्य चिकित्सा की प्रवृत्ति के स्थान पर उत्साह भरना चाहिये।

मोकाशी ने कन्नड़ में एक ही उपन्यास लिखा है: 'गंगव्वा गंगामाई'। फिर भी इस उपन्यास का एक विशिष्ट स्थान है। इसमें परंपराजन्य नैतिकता, घर के बंधनों में निहित मानव सम्मान, अपने परिवेश के बाहर और भीतर की घटनाओं का चित्रण अत्यंत सशक्त है। कथा की समाप्ति पर लगभग सभी पात्रों द्वारा अपने गुण-दोषों को पहचानकर अपने को सुधारने का प्रयास स्पष्ट है। मनुष्य की दुर्बलता को मोकाशी भलीभांति समझते हैं। तर्कसंगत स्वीकार्य परंपरागत तत्व और कला के लिए दृष्टिगोचर होने वाले जीवन के सूक्ष्म तथा स्थूल तनावों की सफल अभिव्यक्ति के कारण गंगव्वा गंगामाई' को कन्नड़ साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

मोकाशी द्वारा अभिव्यक्त सिद्धांत का सार यह है कि विनाशकारी प्रवृत्तियां समाज द्वारा परिचालित रहती हैं। उपन्यास के परिवेश में वह बात कमजोर नहीं पड़नी चाहिये। यह 'गंगव्वा गंगामाई' का भी मुख्य उद्देश्य रहा है। अतः उपन्यास में दुखांत की छाया होते हुए भी उसका समग्र दर्शन सुखांत है। इस सिद्धांत को प्रमुखता देकर विकसित होने वाली कृति में अनुभव के मंथन से बाहर आने वाले विष को संपूर्ण रूप से पचाने की शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि सांस्कृतिक और बौद्धिक दोनों स्तरों पर वह परंपरा रूप में प्राप्त रहती है। इस उपन्यास की सफलता यह भी है कि सिद्धांत विशेष कृति के अनुभव पर हावी नहीं हुए हैं।

इस दृष्टि से 'गंगव्वा गंगामाई' एक कौटुंबिक उपन्यास है। उसकी कथावस्तु का क्षेत्र सीमित है। मुख्य रूप से धारवाड़ के गंगव्वा, राघप्पा और देसाई इन तीन घरानों के चारों ओर जो घटनाएं घटित होती हैं उन्हीं पर उपन्यास का विकास होता है; परंतु साथ ही साथ इस कृति में अपनी सीमा के भीतर और बाहर देखने की बात देखी जा सकती है। इस प्रकार उपन्यास के क्षेत्र का विस्तार हुआ है। वसंत का गांव जाना और अच्युत का बंबई निवास—इनके द्वारा धारवाड़ के क्रिया केंद्र की पृष्ठभूमि में ग्रामीण जीवन और एक बृहत् नगर आते हैं। यह भी बात है कि धारवाड़ या गांव या बंबई को प्रधानता देने का प्रयास 'गंगव्वा गंगामाई' में नहीं हुआ है। चरित्रों की स्पष्टता की अनिवार्यता से आने वाली प्रादेशिकता इसमें भी है। परंतु धारवाड़, और बंबई का संपर्क भी निरुद्देश्य नहीं है। तीन घरों के क्लेश या संबंधों से धारवाड़ का शहरी जीवन प्रभावित नहीं होता है। पर देसाई समझते हैं कि वसंत के करतूतों से गांव के शांत वातावरण में अशांति उत्पन्न होती हैं। बंबई में अच्युत का सत्याग्रह में भाग लेना तथा धारवाड़ की पाठशाला के जलूसों में शांता का भी अगुआ बनना, इन दोनों घटनाओं को तथा उनके परिणामों को एक साथ मिलाकर देखने पर यह बात स्पष्ट होती है कि जीवन की एकरूपता को बदलने वाली शक्ति को इस उपन्यास ने स्वीकार किया है। रत्ना की कल्पना में भी प्राप्त न होने वाली स्वतंत्रता शांता को राजनैतिक आंदोलन के कारण मिली है। इसमें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक होने वाले परिवर्तन और उसके कारण उठने वाली समस्याएं चर्चित हैं। (...प्रत्येक पीढ़ी के सामने अपनी-अपनी समस्या रहती हैं। पुरानी स्त्रियों को इस तरुण पीढ़ी की समस्याएं समझ में नहीं आती हैं। आगे तुम्हें जो बनना है उसकी ओर देखो...) परंपरा की समस्या मोकाशी को निरंतर बदलने वाले जीवन से मुंह नहीं मोड़ने देती। शांता के विवाह में तथा उसकी मां के विवाह में परिस्थितिवश जो समानता का उल्लेख है वह भी एक प्रकार से इस बात को स्पष्ट करता है। परंपरा पर पर्याप्त आलोचना होने से इन घटनाओं के पुनरावर्तन के व्यंग्य में रसिकता भी है।

इस उपन्यास में यह प्रश्न भी उठाया गया है कि जीवन से विमुख होना कहां तक संभव और उचित है? जीवन से ऊब जाने पर गंगव्वा गंगामाई का

आश्रय लेने को सोचती है। पर उसका कर्त्तव्य अभी पूरा नहीं हुआ है—किट्टी को विवाह करके घर बसाने तक मां के आश्रय की आवश्यकता है—यह विचार आते ही वह बेटे के लिए चिंतित हो उठती है। गंगा के आह्वान का तिरस्कार करके गंगव्वा घर की ओर ध्यान देती है। रेल के डिब्बे से गंगाजल को बहा देने का पाप भी वह कर डालती है। गंगा त्यागने से उसका व्यक्तित्व और उभर आता है। गंगव्वा कर्त्तव्य से मुंह नहीं मोड़ती है पर वह पाप से विमुक्त भी नहीं है। अपने भाई द्वारा किये गये अन्याय को भूलती नहीं है। भूतकाल के बारे में सोच-सोचकर उसका मन दुखी तथा कठोर हो जाता है। उसकी जबान से व्यंग्य-बाण निकलते हैं राघप्पा और चंपा की दुखद मृत्यु के बाद ही उसके मन का विकास होता है। तब तक हृदय का सारा प्रेम और चिंता केवल किट्टी के लिए है।

जीवन से संघर्ष करके जीतने का व्यक्तित्व किट्टी में नहीं है। वह मूलतः परावलंबी है। वह अंत तक किशोरावस्था से ऊपर उठ नहीं सकता है। उसमें अपना एक व्यक्तित्व न होने से वह दुर्बल ही रह जाता है। इस मुख्य पात्र को धीरोदात्त नायक बनाया गया। मोकाशी मानव स्वभाव से भलीभांति परिचित हैं, अतः वे किसी पात्र को संपूर्णता की कोटि तक नहीं पहुंचाते हैं। मानव की दुर्बलता को व्यक्त करने से उपन्यास में स्वाभाविकता व्यक्त होती है। मानव के अहंकार, धोखाधड़ी, अज्ञान, दुख और संघर्ष गंगव्वा-राघप्पा के बीच हैं। गंगव्वा के समान दूर हटने का प्रयास करके परिस्थितिवश ताल ठोककर संघर्ष में कूदने वाला दूसरा व्यक्ति देसाई है। वह कई बार सोचता है कि दूसरों के झगड़े में हाथ नहीं डालना चाहिए पर गंगव्वा के कष्ट को देखकर राघप्पा से मुकाबला करने के लिए उतर आता है। इसका एक परिणाम यह होता है कि किट्टी राघप्पा के जाल में फंसकर जिद्द करके रत्ना से विवाह करता है और दूसरी ओर वसंत शांता के पीछे पड़ता है। अंत में अनेक उत्पातों के बाद सब एक हो जाते हैं। इसमें मुख्य रूप से आमने सामने संघर्ष करने वाले तीन बुजुर्ग पर्याप्त शक्तिशाली तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाले हैं। राघप्पा का व्यक्तित्व गंगव्वा तथा देसाई से जटिल है। उसे अनुभव भी अधिक है। वह अपने लाभ के लिए कुछ भी करने को तैयार रहता है। समय आने पर स्वयं आभूषण उठा ले जाता है और चोरी हो गया कहकर ढूंढ़ने का बहाना करने में भी हिचकिचाता नहीं है। परंतु वह एकदम

निर्दयी खलनायक भी नहीं है। उसकी बेटी के विवाह के दिन उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए महबूबजान अपने स्वास्थ्य की भी परवाह न करते हुए उसके लिए पैसे जुटाती है। उसे देखकर उसका हृदय मसोस उठता है। वह व्यक्ति जिसने जीवन में कभी हार न मानने का प्रण किया था उसी क्षण से पराजय की ओर देखने लगता है। पर उसमें तभी से मनुष्यत्व तथा नैतिकता जागृत होने लगती है। सार यह है—नये ढंग से सत्य और असत्य के चिंतन के बाद राघप्पा में जीवन से विमुखता आने लगती है जिससे वह आत्महत्या कर लेता है। राघप्पा के चरित्र का विकास गंगव्वा और देसाई से अलग ढंग से हुआ है। सद् और असद् के विवेक का ज्ञान उन दोनों को जीने की ओर ले जाता है।

इन घटनाओं के विकास में विशेष स्थान न रखने पर भी जार्ज उपन्यास का एक प्रमुख केंद्र है। स्वाभाविक नैतिकता उसमें जड़ कर गयी है। वह किसी भी स्थिति में अनासक्त रह सकता है। वह समय के अनुकूल रिश्वत भी स्वीकार करता है। उसके व्यक्तित्व में अस्पष्टता नहीं है। उसकी निस्पृहता किट्टी की असहाय अवलंबन के लिए सहायक नहीं होती है। यही नहीं, उसकी तटस्थता उपन्यास के भीतर चलने वाली प्रज्ञा के अनुकूल है। अर्थात्—स्थिति का ज्ञान होने पर भी उनकी ओर आकर्षित न होते हुए तटस्थ रूप से खड़े होकर तृप्त होने की स्वाभाविक शक्ति उसमें है। वास्तविकता के सहारे उपन्यास के उचित महत्व को बिगाड़ने का साहस मोकाशी के लेखन में नहीं है।

गंगव्वा गंगामाई के प्रथम दो अध्यायों को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि इसमें सांकेतिकता का प्रयोग अधिक परिमाण में हुआ है। जीवन की निवृत्ति, मृत्यु का आह्वान स्वीकार करना गंगामाई का एक स्वरूप है। वह गंगव्वा में एकांत रूप में रह जाती है। आगे यह रूपक कुछ समय तक अदृश्य रूप में रहता है। पाठक का ध्यान सन्निवेशों के संयोजन, पात्रों के निरूपण की ओर आकर्षित रहता है, परंतु सास-बहू के संघर्ष एवं झगड़े के बीच गुप्तगामिनी के रूप में बहने वाली नदी में विष के स्रवण का संकेत मिलता है। अंत में गंगव्वा के अनुभव का घड़ा सूख जाता है। गंगाजल का कलश गंगव्वा के पास आता है। तब जीवन और मृत्यु के विरुद्ध गंगव्वा गंगामाई में परस्पर भिन्नता का दृष्टिकोण लुप्त होने की ध्वनि है। गंगामाई के रूपक में जो गौण दैविकता है वह शालिग्राम में प्रधान

हो जाती है। शालिग्राम के अनुभव के द्वारा गंगव्वा को उस समय थोड़ी-सी समझ आती है जिससे घर में अशांति कम हो जाती है। गंगा नदी के समान गरजने वाली गंगव्वा के व्यक्तित्व के और एक तटस्थ रूप को भी यह ध्वनित करता है। यह गंभीर मौन गंगामाई का और एक पहलू भी है। शालिग्राम और गंगव्वा के साथ सांकेतिक स्तर पर जार्ज के संबंध की कल्पना करके दैविकता के सामान्य प्रतीक शालिग्राम को, इस उपन्यास में तटस्थ आश्रय को मोकाशी ने दृढ़ किया है। गंगामाई और शालिग्राम का सांकेतिक प्रयोग उपन्यास के अंत तक एक समान नहीं हुआ है। गुप्तास्त्र, शल्य, किला, नेतृत्व आदि रूढ़िगत प्रयोग निष्क्रिय हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कथा के निरूपण में चुस्ती आने पर भी वे अंत तक निभ नहीं पाते।

इस उपन्यास में कौटुंबिक जीवन की व्याख्या करने का प्रयास किया गया है और इस प्रयास में कुछ रूढ़ तकनीक अपनाये गये हैं। जैसे, अध्यायों को शीर्षक देना, संस्कृत - श्लोकों का प्रयोग, डिकंस के समान नाटकीय हास्य सन्निवेश उत्पन्न करना। साथ ही 18वीं शताब्दी के अंग्रेजी उपन्यासों के समान कथानक के विकास के लिए पात्रों का प्रयोग करना। उपन्यास के अंतिम भाग में कथानक के अलग-अलग सूत्रों को जोड़ने के प्रयास में पात्रों के प्रयोग से धक्का लगा है। मोकाशी का मत है कि सामान्य तकनीक द्वारा ही उपन्यास का विकास होना चाहिये। 'गंगव्वा-गंगामाई' इस बात का सफल उदाहरण है कि परंपरागत सिद्धांतों के परिचित चौखटे में रहते हुए मानव क्षमता को सहृदयता से देखकर और यदा-कदा साहित्य की परंपरागत सीमाओं का उल्लंघन करते हुए भी एक रचना का निर्माण हो सकता है।

बी. दामोदर राव

गंगव्वा से सभी परिचित हैं। चालीसवां पार करते ही वह अपने पति को खो बैठी, पर उसने अपने प्राणों को अपने इकलौते बेटे किट्टी (कृष्ण) के लिए संजोए रखा। पहले ही गरीबी थी, जिस पर घर का कमाऊ आदमी उठ जाने से तो घर की हालत का भगवान ही मालिक था। अब किट्टी अट्ठारह का हो गया है। इन आठ वर्षों में उसने क्या-क्या तकलीफें नहीं झेलीं। पर वह सब पी गयी, केवल अपने किट्टी के लिए। उसने स्वयं अधपेट रहकर उसे भरपेट खिलाया। दूसरों का रसोई चौका करके उसे पढ़ाया-लिखाया। जो भी हो, किट्टी ने अब मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली थी और वह अब तहसीलदार के दफ्तर में काम पर

लग गया था। अपने प्रयत्नों की सार्थकता देखकर गंगव्वा को बहुत संतोष हुआ। आशाओं की भी कहीं कोई थाह हुआ करती है। मन में अब भी एक आशा बनी हुई थी कि किट्टी की एक सुंदर-सी बहू घर में लाने के बाद ही उसकी आंखें बंद हों। जब वह अपनी गृहस्थी स्वयं चलाने लग जाएगा, तभी वह अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझेगी।

इन्हीं दिनों पड़ोस के देसाई साहब की घरवाली काशी-यात्रा के लिए जा रही थी। गंगव्वा भी इसे अच्छा अवसर समझ कर उनके साथ हो ली। भगवान विश्वनाथ के सम्मुख अपनी अंतिम आकांक्षा निवेदित करने के लिए किट्टी को साथ लेकर जाना तो संभव न था, इसलिए अकेली ही वह उसके साथ चल पड़ी।

काशी पहुंचकर उसने गंगा जी में डुबकी लगायी। विश्वेश्वर, कालभैरव, घुंडीराज, बिंदुमाधव आदि सभी देवताओं के दर्शन किये। हरिश्चंद्र घाट पर दीपार्पण किया। पंचार्ति, गोपुरार्ति, कपूरार्ति आदि सभी आरतियां कराकर प्रसाद लिया। हर जगह गंगव्वा ने आंखें मूंद कर भक्तिभाव से दंडवत की और याचना की कि भगवान कृष्णा की शादी हो जाय और उसकी गृहस्थी भरी-पूरी हो जाये। बस, इतना ही दिखा दो भगवन। किट्टी ऐश्वर्यवान बने, मनुष्य बने, उसका जीवन सुखी रहे, यही थी उसकी इच्छा। उसका हृदय वात्सल्य से भर-भर उठता। विश्वेश्वर के सम्मुख जब गोपुर-आरती हुई तो वह नीरांजन की साक्षी में भगवान के सम्मुख गिड़गिड़ायी।

काशी से गांव लौटने का समय भी आ गया। सब ने अपनी-अपनी चीज-बस्त संभालनी शुरू कर दी। गंगव्वा ने भी अपनी छोटी-सी पोटली संभाल ली। गये दिन वह भी सब की भांति तांबे की ढक्कन वाली एक गगरी खरीद लायी थी। सब की तरह उसने भी वह गंगाजली भरी और मोम से उसका ढक्कन सील-बंद कर दिया। गगरी की गर्दन में पकड़ने के लिए डोरी भी बांध दी। गगरी कुछ भारी-सी लगी। उठाने में जरा मुश्किल-सी हुई। परंतु काशी आकर गंगा जल के बिना भी कहीं वापस जाया जाता है? मरते समय अंतिम सांसों में जब तक किट्टी सिरहाने बैठ कर उसके मुंह में गंगाजल न डालेगा तब तक उसकी सद्गति कहां?

रेल छूटने से एक घंटा पहले ही सब लोग आकर एक डिब्बा घेरकर बैठ गये। कुछ लोग बीच में आड़े बैठे और कुछ ऊंघने लगे। गाड़ी ने कब स्टेशन छोड़ना आरंभ किया, केवल कुछ ही लोग जान पाये।

गंगव्वा खिड़की से टेक लगाये अपनी गठरी संभाले बैठी रही। गाड़ी के चलने की हिलडुल और चार-पांच रोज की नित्य की थकावट के कारण उसकी आंखें भी झपकने लगीं।

वह दो-तीन घंटे सोती रही। गाड़ी की सीटी से उसकी नींद एकाएक खुल गयी। डिब्बे की सभी खिड़कियां बंद थीं। केवल गंगव्वा के पास की खिड़की ही खुली थी। सर्दी से उसके हाथ की नसें सुन्न पड़ गयी थीं। शरीर में कंपकंपी हो रही थी। उसने बाहर देखा तो गाड़ी दायीं ओर मुड़ रही थी। ऊपर इंजन का काला धुआं छा गया था। पूरा चांद सिर पर था। चारों ओर चांदनी, चमकते तारे, दूर-दूर के टीले और गोपुर के आकार के वृक्षों की छाया इन सब पर एक दृष्टि डालकर गंगव्वा ने खिड़की बंद कर दी। उसे तुरंत नींद नहीं आई। विचारों का तांता बंध गया। देखे हुए सब मंदिर, मूर्तियां, गंगा सब एक-एक करके उसकी आंखों के सामने घूमने लगे। वह उनमें खो गयी। उसे काशी-यात्रा सपने के समान लगने लगी। विश्वनाथ के दर्शन की याद करते ही वह रोमांचित हो उठी। उसके लिए उसने अपने आप को धन्य समझा।

सभी धार्मिक भावनाओं से बढ़कर मानव के लिए एक अंतिम सहारा हुआ करता है, वात्सल्य और प्रेम। उसे एकाएक किट्टी की याद हो आई। संभवत: वह इस समय धारवाड़ में सो रहा होगा। स्वप्न में शायद मुझे मां कहकर बड़बड़ा रहा होगा। बेचारा! इन दिनों उसने अपना खाना आप ही पकाया होगा। उसे कितना कष्ट हुआ होगा। अब तो बस उसकी नाक में एक नकेल डाल देने पर मेरा अंतिम काम निबटा समझो। इसके बाद मैं आराम से मर सकती हूं।

उसका विचार क्रम आगे बढ़ता गया। मृत्यु का डरावना स्वरूप उसके मन को क्षुब्ध करने लगा। मृत्यु मानव की सभी आकांक्षाओं को रोकने की दीवार है। बहू का मुख देखने के बाद ही क्या मेरा मरना ठीक रहेगा? किट्टी के ब्याह कर देने मात्र से ही क्या मेरा काम खत्म हो जाएगा? उसके जीवन की सार्थकता तो बाद

नें होगी, बेटे की गृहस्थी तो बाद में देखने की चीज होगी—इसके लिए मुझे आगे भी जीना होगा। दस आदमी जब उसकी प्रशंसा करें, वह मेरे कानों में पड़नी चाहिए। उसके बच्चों को दादी के हाथ से कौर खाने चाहिए। मुझे उन्हें कहानी सुनाकर लोरी देकर सुलाना चाहिए। इन सब के बिना मैं मर नहीं पाऊंगी। जहां तक हो सके मुझे जीना होगा। जीने की इच्छा ने उसके मन को बढ़ाते हुए उत्साह से भर दिया।

डिब्बे के बल्ब की मंद रोशनी में गंगाजली चमचम चमक रही थी। उसकी तीखी चमक उसके मन में तीर-सी चुभ गयी। गंगाजली के भीतर गंगाजल छल-छल आवाज कर रहा था। यह आवाज उसे यमराज के पास फेंकने के समान लगी। यह गंगाजल किसलिए? स्वयं मरते समय गले में डलवाने के लिए ही ना? न-न। वह अभी नहीं मरेगी, वह जियेगी। उसे जीना है। उसे तो काशी के विश्वेश्वर का प्रसाद मिला है।

चारों ओर नीरवता छाई थी। गंगाजली चमकती जा रही थी। उसके भीतर गंगाजल छलछल-ध्वनि के साथ मरण का संदेश दिये जा रहा था। गंगव्वा अधीर हो उठी। उसका दिल जोर-जोर से धक्-धक् करने लगा। एक ओर जीने की इच्छा दूसरी ओर मृत्यु की पुकार। इन दोनों के बीच वह घबरा उठी और डर गयी और सह न पायी। मन में संघर्ष होने लगा। जीने की इच्छा जीत गयी। उसने खिड़की खोली, धीरे-से गंगाजली उठायी। नाखून से मोम खुरचा; ढक्कन खोला, गंगाजली को अपनी आंखों से छुआते हुए 'जय गंगामाई' कहा। फिर उसे खिड़की के पास रखकर उलटा दिया। गंगामाई छलछलाती हुई बह गयी।

आखिर बूंद गिरने तक वह गंगाजली को वैसे ही पकड़े रही। सब लोग सो रहे थे। फिर से ढक्कन बंद करके उसमें मोम लगाया। गंगाजली के पुनः नीचे रखने की आहट पर किसी ने उनींदे स्वर में पूछा, "कौन है?"

'कुछ नहीं' कहते हुए गंगव्वा ने चैन की गहरी सांस ली।

2. पुराने संबंधी

काशी यात्रा से लौटी तो सभी गंगव्वा की प्रशंसा करने लगे। अड़ोस-पड़ोस के सभी लोगों को गंगव्वा ने अपनी यात्रा के विविध अनुभव बड़े रसपूर्ण ढंग से रंगीन बना-बनाकर सुनाए। परंतु 'गंगा मां' को रेल की खिड़की से बहा देने की बात सुनने वालों को कुछ अच्छी नहीं लगी। पड़ोसिन काशी की मां बोली, यह काम तूने गलत किया, गंगव्वा। घर में आती हुई गंगा को तूने बाहर निकाल दिया। तुझे फिर से जाकर उनके दर्शन करने पड़ेंगे। गंगव्वा ने अपने मन को यह कहकर तसल्ली दी कि जो हो गया, सो हो गया। शायद एक बार फिर भी काशी-यात्रा का योग हो जाये।

लेकिन अपना एक अनुभव गंगव्वा ने किसी को भी नहीं बताया। उसके बारे में केवल रूखा-सा वर्णन करती रही।

एक सीधी पहाड़ी से गंगा माई नीचे बहती है। यात्रियों को हजारों फुट की ऊंचाई से आगे बढ़ना पड़ता है। सामान ढोने वाले मजदूर यात्रियों को यह चेतावनी देते हैं कि नीचे की ढलान की तरफ देखने से चक्कर आता है। कई लोग इस कारण गिर भी जाते हैं। पर गंगव्वा उस ओर देखे बिना न रह पायी। दूर अंधेरी सी गहराई में गंगा मां का शुभ्र प्रवाह चमचमाता बह रहा था। उसे लगा मानो वह उसे बुला रही हो। गंगव्वा ने तुरंत आंखें फेर लीं और दुबारा उस ओर नहीं देखा। वह आगे बढ़ती गयी। विचित्र अनुभव था वह। ऐसी कोई विशेष बात न थी, पर उसका मानसिक चित्र, गहन अनुभव, भय, आशा, सब मिलकर गंगव्वा के मन में एक विचित्र स्वप्न के समान घर कर गये थे। वह सारे का सारा अनुभव उसके जीवन का अंग बन गया था। उसका विशद वर्णन करना भी साध्य न था और उसे छिपा पाना भी संभव नहीं था।

जीवन चक्र धीरे-धीरे चलता रहा। किट्टी के लिए मां के बिना अकेले रहने का यह पहला अवसर था। किट्टी कोई दुधमुहां बच्चा तो था नहीं, तथापि अलग रहने में उसे थोड़ा बुरा ही लगा। पहले तो खाना बनाने का मन नहीं हुआ और मां की अनुपस्थिति भी अखरी। दूसरे दफ्तर में हुए कटु अनुभवों को सहानु-

भूतिपूर्वक सुनकर तसल्ली देने वाली का अभाव भी खटका। किट्टी को कष्ट भी कम न था। नयी-नयी नौकरी, किसी ने उसे सलाह दी थी कि आयकर-विभाग में किसी पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। इसलिए दूसरे किसी से बिना पूछे जितना समझ पाता उसी के अनुसार काम करता। फलतः ऊपर के अधिकारियों से डांट खाता तथा साथियों से खिल्ली उड़वाता। उसकी नौकरी लगाने वाले तहसीलदार शुरू-शुरू में सहानुभूतिवश उसकी गलतियां सुधार देते थे, पर दो मास बीतने पर भी जब किट्टी ठीक से काम न कर पाया और अपनी कठिनाई भी न बता पाया और उसके गलत-सलत कागजों के पहुंचने पर तहसीलदार को पता लगा कि वह अब भी काम नहीं सीख पाया तो उन्होंने उसे चुभती बात कह दी, 'तुम्हें नौकरी दिलाने वाला मैं मूर्ख था।' तब किट्टी उनसे और भी दूर रहने लगा। धीरे-धीरे एक क्लर्क जोशी रामराय से मित्रता करके उसकी सलाह से कुछ काम करने लगा। पर उसमें भी गलतियां रह ही जातीं। रामराय की सलाह से उसने एक बार एक मसौदा तहसीलदार के पास भेजा। उसने किट्टी को डांटा और रामराय को बुलाकर वह मसौदा करने को कहा। इस प्रकार की विचित्र परिस्थितियों में मां उसकी सलाहकार थी। मां के सम्मुख एक बार हंस कर एक बार चिढ़कर जब तक सब-कुछ सुना न लेता, तब तक उसे चैन न आता।

किट्टी कभी-कभी जो अधिकार दफ्तर में न दिखा पाता था, वह अनायास ही घर में पा जाता था। अनपढ़ मां की अज्ञानवश कई बातों की खिल्ली उड़ाकर अथवा उसकी दी हुई पुराने ढंग की सलाहों की निंदा करके किट्टी एक प्रकार का संतोष पाता। मां के साथ छोटा-मोटा झगड़ा उसका दैनिक क्रम था। अब मां के काशी जाने से किट्टी की शक्ति कुंठित हो गयी थी। डेढ़ मास तक किट्टी एकाकी रहा।

गंगव्वा के लौटने के बाद कुछ दिन किट्टी ने बड़े उत्साह से बिताये। मां की अनुपस्थिति में घटी हुई बहुत-सी दफ्तर की बातें उसे बताईं। मां से भी भरी आंखों, काशी में बेटे की याद में बिताये दिनों की बात सुनने के बाद किट्टी तनिक शरमाया, पर सब बातें स्नेहपूर्वक सुनता रहा। गंगव्वा ने जब गंगाजल के त्याग की बात बड़े दुख व पश्चाताप के स्वर में कही, तो उसने उसे उत्साह देते हुए कहा, "मां" तुम चिंता न करो। एक बार और काशी हो आना।"

दिन बीतते फिर वही पुराना कार्यक्रम शुरू हो गया। बीच-बीच में छोटे-मोटे झगड़े जीवन में एक रंग भरते चले गये।

किट्टी के दो सगे मामा थे। एक का नाम वेंकटराय था दूसरे का नाम राघप्पा किट्टी ने केवल उनका नाम ही सुना था। शायद बचपन में उनको देखा भी था। अब उसे कोई भी बात याद न थी। पर जब गंगव्वा काशी-यात्रा पर गयी, तब एक मामा फिर क्षितिज पर उदय हुआ। एक बार दफ्तर में किसी काम की वजह से राघप्पा आया था। तब वह किट्टी को ढूंढ़कर मिला और उसने अपना रिश्ता बताया। रिश्तेदारों से अपरिचित ऋश्यश्रृंग के समान किट्टी को जरीवाली पगड़ी धारी गेहुएं रंग के ऊंचे कद के सगे मामा के प्रति कोई विशेष आसक्ति उत्पन्न नहीं हुई। राघप्पा ने गंगव्वा के स्वास्थ्य, उसके दैनिक कार्यक्रम आदि के बारे में पूछताछ की। बाद में उसने अपने बारे में बताया कि धारवाड़ के अपने घर में पुनः छह मास पूर्व आया है। कोई 'लेन बाजार' का पता देकर उसने किट्टी को घर आने का निमंत्रण भी दिया। उसने आगे यह भी बताया कि अब तक वह अपने बिदगोळ गांव में था, अभी-अभी उसकी बड़ी लड़की ने मुलकी परीक्षा पास कर ली है। दो दर्जे अंग्रेजी पढ़ाने के विचार से अब वह धारवाड़ में गृहस्थी ले आया है। किट्टी यह सब अनमने ढंग से सुनता रहा और यह बात वहीं भुला भी दी। गंगव्वा के आने के दो मास बाद राघप्पा की सवारी घर पर पहुंच गयी।

3. अप्रत्याशित भेंट

गंगव्वा ने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि उसकी अपने छोटे भाई से भेंट होगी। किट्टी भी दफ्तर में राघप्पा से भेंट की बात भूल गया था। उसने गंगव्वा के सामने उस बात की चर्चा नहीं की थी। यदि उसने चर्चा की होती तो वह राघप्पा से मिलने के लिए तैयार रहती। पर दस वर्षों के बाद राघू गंगव्वा के घर में सीधा तशरीफ ले आया। गंगव्वा को अपने भाव भी व्यक्त करने के लिए अवकाश न

देते हुए वह आंगन में पलंग पर बैठकर दस वर्ष के अपने सुख-दुख का बखान करने लगा। गंगव्वा को आरंभ में यह समझ में नहीं आया कि क्या बात करे। उसे भाई के बारे में भय और घृणा थी। यदि कुछ पहले ही पता होता तो वह अपनी जबान को सान पर चढ़ाकर रखती। जबान दस वर्षों में मंद पड़ गयी थी। साथ ही इन दस वर्षों में भाई के बारे में जानने की गुप्त इच्छा भी बनी हुई थी। इसीलिए उसने उसकी सारी बातें सुनीं। उस दिन रविवार होने से किट्टी भी घर में ही था। वह भी अनमना-सा इस अप्रत्याशित अभ्यागत की बातें सुनता रहा।

राघप्पा ने ये सारे साल गांव में ही बिताये थे। उसकी पत्नी दूसरी बच्ची को जन्म देने के बाद बीमार पड़ गयी थी। वह आज तक बीमार ही थी। बीच-बीच में छाती में दर्द हो जाता था। वर्ष में तीन-चार मास बिस्तरे पर पड़ी रहती थी। बिंदगोळ में उसने कुछ वर्ष गोशाला रखी थी। उत्तम किस्म की गौएं पालीं, कई दिन तक यही व्यापार भी करता रहा। पर उसमें लाभ दिखाई नहीं दिया। गृहस्थी चलानी ही थी। अब अधेड़ उम्र हो गयी है, सब चीजों से तंग आकर खेत को बटाई पर उठाकर लड़कियों की पढ़ाई के लिए धारवाड़ में फिर गृहस्थी बसा ली थी। लेन बाजार में घर मिला था, सभी सुख प्राप्त थे। पर पुराने दिन याद करके दुख भी होता था। कितनी भारी रिश्तेदारी थी, सब बिखर गयी। लगता था यह सब पूर्वजन्म का फल ही है। फिर सब एक साथ मिलेंगे आदि आदि...

गंगव्वा उसकी सारी बातें चुपचाप सुनती रही। वह प्रतीक्षा करती रही कि राघप्पा अपना भाषण कब समाप्त करेगा! धीरे-धीरे उसकी बातें एक रुख लेने लगीं। रिश्तेदारी, आपस की कलह, स्नेह आदि पूर्वपीठिका के बाद, किट्टी की होशियारी की जी-भर के तारीफ करने के बाद राघप्पा ने उसकी ओर घूमकर पासा फेंका।

"किट्टण्णा, हम लोगों ने अपनी रत्ना को आपके लिए रख छोड़ा है। उसके लिए हम दूसरा वर नहीं ढूंढ़ेंगे... ठीक बात है न, गंगव्वा?"

राघप्पा घर में अतिथि के रूप में आया था, भाई के रूप में नहीं। गंगव्वा हंसते-हंसते व्यंग्य से बोली, "किट्टी क्या तुम्हारे हाथ से बाहर है भैया?"

किट्टी की नौकरी लगने के बाद ऐसे कई कठिन प्रसंग आये थे, उन सबके लिए किट्टी का एक ही उत्तर रहा था। अभी उसका शादी का इरादा नहीं है। लेकिन

राघप्पा तो जोंक की तरह चिपकने वाला आदमी था, आसानी से छोड़ने वाला नहीं था।

"चाहे अब करो या दो साल बाद...। हमने तो रत्ना तुम्हारे निमित्त कर दी। या यूं कहूं कि वह हमारे घर तुम्हारे लिए पैदा हुई है। एक बार तुम्हारी मां ने कहा था कि तेरे घर से मेरे किट्टी के लिए एक बहू चाहिए। उसके तीन मास पश्चात ही रत्ना पैदा हुई थी। चाहो तो पूछ लो अपनी मां से ?"

गंगव्वा ने बीच ही में टोक दिया, "हां, किट्टी बेटा, राघू ने मेरे कहने पर ही शादी की थी, बच्चे भी मेरे कहने से ही पैदा किये थे। मेरे कहे बिना वह कुछ करने वाला नहीं था।" राघप्पा ने पसीना पोंछते हुए बात को दूसरी तरफ फेर दिया। उसे लगा कि अभी तक गंगव्वा पिछली बातें भूल नहीं पायी है और उसने उसे माफ भी नहीं किया है।

"किट्टण्णा हमारी रत्ना सौंदर्य में कोई कम नहीं है। रंग गोरा है... हां अगर तुम सिनेमावालियों जैसा रूप मांगो तो शायद नहीं। सब कामकाज करती है। घर में आजकल तुम्हारी मामी से कोई काम हो नहीं पाता। रत्ना ही सब गृहस्थी देखती है। गंगव्वा, तुम्हें वह गद्दी पर बिठाकर गृहस्थी चला लेगी।"

"मेरे लिए गद्दी क्यों ? बिस्तर काफी नहीं क्या ?" कहकर व्यंग्य से हंस पड़ी।

राघप्पा समझ गया। बातों से ही दुनिया जीतने वाले राघप्पा की वाक्शक्ति गंगव्वा के साथ बात करते समय कुछ कुंठित-सी होने लगी। उसकी बातों में डंक रहता है यह राघप्पा जानता था। उसने अनुभव किया कि पिछले दस वर्षों में जो परिवर्तन हुए हैं वे उसके अनुकूल नहीं। सो राघप्पा ने ऐसा दिखाते हुए जैसे बहिन की बात उसके कान में ही न पड़ी हो, किट्टी की ओर घूमकर मुस्कराते हुए अपने गुप्तास्त्रों का प्रयोग आरंभ किया।

"किट्टण्णा अब हमारी पेंशन का समय आ गया है, तुम्हारी मां का भी। मुख्य बात यह है कि अब नया खून आगे बढ़े और हमारा पुराना मनमुटाव दूर हो जाए। तुम्हारे तहसीलदार से मेरी पुरानी गहरी दोस्ती है। कल ही उनकी-मेरी भेंट हुई थी, देखते ही पहचान गये। अपने घर आने के लिए कहा। मैंने भी अपने घर एक बार आने के लिए निमंत्रित किया है। उन्होंने आने की हामी भर दी है। तुम्हें अब किसी बात से डरने की आवश्यकता नहीं...।"

अब तक किट्टी ऐसा बैठा था मानो उन बातों से उसका कोई सरोकार न हो। पर राघप्पा की अंतिम बात सुनते ही उसके मुंह में पानी भर आया। वह जब से नौकरी पर गया तब से सिपाही से लेकर तहसीलदार तक सभी अपने-अपने पद के अनुसार उसका मजाक उड़ाते रहे थे। बात यों थी कि दफ्तर में उससे गलतियां हो जातीं और इस कारण तहसीलदार उस पर बिगड़ता। इससे लज्जित होकर वह और अधिक गलतियां कर बैठता। विशेषत: यह नौसिखिया पुराने क्लर्कों के मजाक का कारण बना हुआ था। उसने भी मन में बहुत से स्वप्न संजो रखे थे कि वह भी कभी पुराना क्लर्क बन जाएगा और नये नौसिखियों की गलतियां पकड़कर उन्हें डांटा करेगा। कभी-कभी मां ही उसके स्वप्नों का निशाना बन जाती। किट्टी के मुख पर विजय की पगली हंसी चमकने लगी।

राघप्पा ने यह सोचकर कि अभी शादी की बात उठाने में कोई फायदा नहीं, तहसीलदार की बात ही आगे बढ़ाई। उसने बताया कि वह और तहसीलदार एक ही स्कूल में पढ़ते थे। साथ-साथ फुटबाल खेलते थे। वे मैट्रिक पास करके सरकारी नौकरी में लग गये। यह तो चौथी कक्षा में ही स्कूल को नमस्कार कर बैठा, आदि बातें नमक-मिर्च लगाकर सुनाने के बाद वह बोला, "बहुत देर हो गयी अब चलता हूं।" इतनी देर से आंखें फाड़े और बीच-बीच में तनिक हंसते मुस्कराते बातें सुनने वाले किट्टी ने अब मां से कहा—"मां थोड़ी चाय तो बनाओ।"

यदि आध घंटे पहले किट्टी ने यही बात कही होती तो गंगव्वा बना देती लेकिन राघप्पा की बातों का ढंग और किट्टी के सुनने का ढंग देख बुद्धिमती गंगव्वा ने अनुभव किया कि इन बातों को आगे बर्दाश्त करना ठीक नहीं। वह निरुत्साह से बोली—"बेटा, राघू चाय पीने वाला आदमी नहीं...।"

किट्टी ने यह नहीं सोचा था कि मां इतनी कठोर है, साथ इसकी बात भी कटी। वह नौकरी वाला आदमी है। उसके मिलने वाले और इस पर तहसीलदार के मित्र! उनका यह अपमान!

राघप्पा हंसते हुए बोला, "गंगव्वा आयु बढ़ते-बढ़ते हमारी शक्ति भी कम होती चली जा रही है। जब पहले तुमने देखा था और अब में कितना फर्क आ गया है। एक चाय और तंबाकू सदा ही चाहिए। पर चाय पीकर आया हूं, अभी जरूरत नहीं। इसके अलावा तुम से और किट्टण्णा से भेंट हो गयी, यह

चाय से भी बढ़कर है।"

वह इतने पर छोड़ने वाली न थी, "लेकिन इससे भी बड़ी बातें थीं ना वह छूट गयीं यह तो बता।"

राघप्पा जोर से कहकहा लगाते हुए बोला—'अच्छा अब मैं चलता हूं। एक बार अपनी मां को लेकर हमारे घर जरूर आना भैया। गरीबों को बिलकुल भूल मत जाना।" यह कहकर वह बाहर निकल गया। अपनी मां के असभ्य व्यवहार के लिए कैसे क्षमायाचना करे यह न समझ पाने पर किट्टी बोला, "चाय पीकर जाते तो अच्छा था।" अपने मामा को छोड़ने के लिए साथ चल पड़ा।

दहलीज पार करते हुए राघप्पा ने गंगव्वा की ओर एक कठोर दृष्टि डाली। इसे किट्टी देख न पाया पर गंगव्वा ने देख लिया। इतने दिनों बाद भाई को देखने से मन में जो थोड़ी-बहुत ममता हो आई थी वह इस दृष्टि को देखने के बाद समाप्त हो गयी और उसने फिर से मन को पत्थर कर लिया।

4. किट्टी का क्रोध

किट्टी जब गली से वापस लौटा तो उसके कानों में 'राघप्पा मामा' का स्वयंरचित संबोधन एक मिठास उत्पन्न कर रहा था, लेकिन घर में घुसते हुए उसे याद आया कि मां की गलती के लिए उस पर तनिक क्रोध दिखाना उसका कर्त्तव्य है। वह दुःखित सा पांव पटकता हुआ भीतर घुसा। धूप में से एकदम अंधेरे घर में घुसने से उसकी आंखों में अंधेरा-सा छाया था। टटोलता सा अधफटी आराम-कुर्सी पर धप से बैठ गया। वह बाकी भी फट गयी। जब तक उसके बीच से बाहर निकला तब तक उसे हंसी आ गयी थी लेकिन अब हंसना नहीं चाहिए यह सोचकर त्योरी चढ़ाकर चटाई पर लेट गया। गंगव्वा चश्मा लगाकर रसोईघर में बैठी भक्तिविजय के पन्ने उलट रही थी। किट्टी की धरापटक को सुनकर पुस्तक पर से नजर हटाकर उस पर कान लगाये थी। थोड़ी देर तक दोनों चुप

ही रहे। गंगव्वा को पता लग गया कि किट्टी गुस्से में है। कुछ भी कहते ही फट पड़ेगा। फिर भी चुप न रह सकी। भीतर से ही बोली

"किट्टी भीतर तो आ।"

"क्यों?"

"भीतर आ, बताती हूं।"

"वहीं से बता, सुनाई देता है।"

"अच्छी बात है मेरा इतना ही कहना है। इस राघप्पा के यहां रिश्ता मुझे पसंद नहीं।"

"हूं"

"तुम उसके फंदे में मत फंसना?"

"हूं।"

गंगव्वा को लगा कि अभी बात करने का ठीक समय नहीं है। वह जानती थी कि किट्टी उसके हाथ से बाहर नहीं पर उसको समझाने के लिए यह उचित समय नहीं है। किट्टी के लिए भी इस बात का कोई महत्व नहीं था कि उसका एक सगा मामा है, उसकी एक लड़की है। मामा उस लड़की का विवाह इससे करना चाहता है, उसे इस बात का दुख था कि अपने घर में ही उसकी बात चली नहीं। सरकारी नौकर होते हुए भी तहसीलदार के जान-पहचान के मामा को चाय के बिना भेजना पड़ा। उसके मान की रक्षा घर में ही यदि मां न करेगी तो क्या दफ्तर के सिपाही करेंगे? उसके दिमाग में यही विचार चक्कर काट रहे थे। अतः वह इसी ताक में था कि मां बात कुछ आगे बढ़ाए तो खरी-खरी सुनाये। पंद्रह मिनट बीत गये गंगव्वा के मुंह से कोई बात नहीं निकली। मां के मुंह से कुछ अस्पस्ट शब्द सुनाई देने लगे... मां ने भक्तिविजय का पारायण आरंभ कर दिया था।

किट्टी को और गुस्सा चढ़ गया। मां का ध्यान और एक घंटे तक दूसरी ओर नहीं जाएगा। अब बात उसी को आगे बढ़ानी है।

मां... मां... मां... जोर से चिल्लाया, पुस्तक में डूबी हुई गंगव्वा को उसकी आवाज साफ सुनाई नहीं दी। उसने पूछा "क्या कहा?"

"राघप्पा के आने पर... चाय क्यों नहीं बनाई? सुना...।"

"क्या बताऊं बेटा, जाने दो।"

"घर में आने वालों के साथ ऐसा करोगी तो मेरी इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी। समझी कि नहीं ? मैं सरकारी नौकर हूं। यदि मेरे घर में ही मेरी बात न चले तो लोग क्या कहेंगे। यही कहेंगे न ...।" किट्टी ने बात आगे बढ़ायी।

"बेटा किटण्णा, चाय की पत्ती खत्म हो गयी है। सुबह ही लाने को कहा तो था।"

"हां-हां-हां-हां भूल ही गया। मां ने सुबह ही आखरी चम्मच पत्ती डालकर डिब्बा झाड़ कर दिखाया था। मैं अभी लाता हूं कहकर दफ्तर के कागजों में डूब गया। सारी भूली बात याद आ गयी। हरि—हरि... हे पुरंदर विट्ठल मेरी याद थू।" किट्टी के गुस्से का तीखापन कुंद हो गया, थोड़ी हंसी भी आयी। उसने अपने को शाबाशी दी कि उसने उस समय मां से चाय के लिए ज्यादा जिद्द नहीं पकड़ी, नहीं तो तहसीलदार के परिचित मामा के सामने सरकारी नौकर के रसोईघर के खाली डिब्बों की खस्ता हाल का रहस्य खुल जाता और आज जो लड़की देने आया था वह कल नाहीं भी कर सकता था। यह सोचकर अपने में हंस कर रह गया।

मां के सामने गुस्से से चढ़े मुंह पर अब हंसी दिखाने में उसे अपना मान भंग सा होने लगा। अतः उसी तरह मुंह चढ़ाए ही कोट और टोपी पहन कर घूमने बाहर निकल गया।

गंगव्वा को इस ट्रांसफर सीन का पता ही नहीं चला। उसने अपनी समझदारी से एक अपने ही ढंग का रास्ता निकाला। कल शनिवार के दिन हनुमान जी के लिए जो नारियल तोड़ा था, उसमें से अभी थोड़ी गरी बची थी। उसे उकसा कर निकाला। भीतर से भुनी चने की दाल निकाली। किट्टी के वापस लौटने तक उसने उसकी रोटी के लिए बढ़िया गोले की चटनी तैयार करके रखी। घर लौटकर किट्टी संध्यावंदन करके खाने के लिए बैठ गया। उसे दोपहर को मां के साथ किये झगड़े के समझौते का अच्छा अवसर हाथ लगा। चटनी की खूब तारीफ करके मां से समझौता कर लिया। गंगव्वा ने भी 'क्या करूं बेटा। तुम बहुत गुस्से में आ गये थे' कहकर शांति का पाठ पढ़ाया।

मां-बेटे में बड़ी रात तक खूब बातें हुईं।

5. पुरानी यादें

"किट्टण्णा आज दोपहर को तुम गुस्से में आ गये थे। तुम्हें इस राघप्पा की एक भी बात का पता नहीं। हम सबने बहुत सहा है। मुझे वह व्यथा सदा सालती रही है। तुझे नासमझ मानकर जितना झूठ बोल सकता हो बोलने दो। मेरे सामने जितना उछल-कूद कर सकता है, उतना करने दो। पर ध्यान रखना कि कहीं वह तुम्हें धोखा न दे। वह किसी भी बात से हिचकिचाने वाला व्यक्ति नहीं है, क्या वह दो बार झूठी बातें कहने में आगा-पीछा देखेगा? उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों पर तुम लट्टू न हो जाना।

(इसी से हमें यह गरीबी पल्ले पड़ी किट्टण्णा। क्या तुम समझते हो कि हम सदा से गरीब थे। नहीं बेटा, एक सेर भर सोना मेरे शरीर पर लदा रहता था। सारे गहने पहन लेती तो हाथ यों उठा नहीं पाती थी। प्रतिवर्ष लक्ष्मीनारायण के दर्शन के लिए मैं इसी पोद्दार लक्ष्मीबाई के साथ जाती थी। उन्होंने वह सब देखा है। इसीलिए वे आज तक मेरा इतना आदर करती हैं... उन बातों को जाने दो। अब उसे याद करने से क्या लाभ?)

मेरे दिन जब वैसे थे तभी इस राघप्पा ने आकर तुम्हारे पिताजी के सामने नाक रगड़ी और कहा, 'खेती गिरवी पर पड़ी है, पांच सौ रुपये दीजिए थोड़ा हिस्सा छुड़ा लेता हूं।' तुम्हारे पिताजी का स्वभाव बड़ा उदार था। क्या किया जाता किट्टण्णा? तू तब बित्ते भर का था। वे मुझे अकेले छोड़कर चले गये"... मां सिसकियां भर कर बोली "अब उस बात को भूल जाओ। मैं वैसे रोने कलपनेवाली औरत नहीं हूं, पर जब तुम्हारे सामने बैठने पर उनकी याद हो आती है तो दुखी हो जाती हूं। आज यदि वे होते, पता नहीं कितने खुश होते। तुम्हारे लिए बहू खोजने कहां-कहां नहीं जाते? जाने दो...। इस नीच को पांच सौ रुपये देकर खेत छुड़वाने के बाद इसका दर्प शुरू हो गया। इसकी पत्नी चंपी आजकल इतने ऐश्वर्य में डूबी है। उस समय इसे नयी साड़ी तभी नसीब होती जब तेरे पिता 'लो, अपनी घरवाली के लिए दो नयी साड़ी खरीदो' कहते।... ऐसे दिन भी कभी थे

...अंत में उस उपकार का फल उसने दिया न ? यह भाई है, यह पूर्वजन्म का दुश्मन है।

तुम्हारे और एक सगा मामा है, इस राघप्पा से छोटा ··· उसका नाम वेंकाटी है...। पता नहीं अब है या मर गया ? दस-ग्यारह वर्ष हो गये उसकी खबर सुने। कुछ आधा पागल-सा था, पर दिल से भला था। भगवान के प्रति बड़ी भक्ति थी। दूसरों के लाख रुपये पड़े रहें, एक पैसा भी छूने वाला नहीं। हमारे घर में दुनिया भर की सारी बुराइयां इसी राघू में है। हमारा वेंकाटो कुछ अधपगला-सा था। चार दर्जे तक पढ़ा था। राघू की शादी के बाद किसी ने मजाक में कहा कि अब तुम्हारी भी शादी कर देंगे। इतना सुनते ही घर छोड़कर कहीं भाग गया। कई दिन पूना में था, बेवकूफ ने किसी को भी बताया नहीं था। उसका हिस्सा अपने हाथ लगेगा सोचकर इस राघू ने उसकी खोज खबर नहीं ली। स्वयं धारवाड़ में घर बसाकर प्रतिदिन कोई-न-कोई धंधा करने लगा।

पूना में किसी गुजराती के घर में वेंकाटी पूजा-पाठ का काम कर रहा था। वे बड़े भारी सेठ थे। इस पर पूरा भरोसा रखते थे। पता नहीं किसने क्या सिखाया कि उसे भी धन की लालसा उत्पन्न हो गयी। एक दिन दो हजार की हुंडी पर झूठा दस्तखत करके किसी बैंक से पैसा हथिया लिया। वह था पहले ही आधा पागल, यह उसके अकेले की करतूत नहीं रही होगी। उन्हीं दिनों पूना में उसका पता लगाकर राघू उसके पास दो दिन रहकर आया। इसी ने उसे पट्टी पढ़ाई होगी।

दो-चार दिनों में भेद खुल गया। उस सेठ ने पुलिस में रपट लिखवाई। बस, एकदम पुलिस पहुंच गयी। इस पगले को पुलिस थाने ले गयी। तब उसने किसी से राघू के पास तार भिजवाई। मुझे जेल में डालेंगे, बचा ले। वह तार पाते ही राघू हमारे पास भागा-भागा आया। उनके पांव पकड़कर कहा, 'किसी तरह मेरे भैया को छुड़ा लीजिए, एक बार लोगों को पता लग गया कि हमारे घराने के आदमी को जेल हो गयी है तो अब जो मैं चार पैसे कमा रहा हूं वह भी नहीं कमा पाऊंगा।' मेरा मन रखने के लिए इन्होंने उस काम में अपना हाथ डाला। उस रात को ये राघू को साथ लेकर रेल से पूना पहुंचे। राघू की सारी खेती गिरवी पड़ी थी। इन्होंने पांच हजार की जमानत दी और वेंकाटी को छुड़ाकर धारवाड़ ले आये।

उनको अपना काम बहुत रहता था, फिर भी सदा इस वेंकाटी पर नजर रखते थे। पता नहीं इस नीच राघू ने क्या किया ? इन्होंने एक दिन वेंकाटी को इसके साथ सोने भेजा। पता नहीं इस राघू ने उसके दिमाग में क्या भर दिया। उसी रात को उसे गांव से भगा दिया। आज तक उस पागल का पता नहीं।

आगे जो होना था सो हुआ। उसके जमानती होने की जो गलती इन्होंने की थी उसके लिए संपति, घरबार गवां दिये। घर के सारे कीमती सामान कौड़ी के दाम नीलाम हो गये,... सारा घर वीरान हो गया। तब आकर राघू ने रोने का बहाना किया, बड़ा नाटक रचाया। वह सब उनको अच्छा नहीं लगा। इसी की चिंता से उन्हें दिल का दौरा पड़ने लगा। उसी में घुलते-घुलते अंत में वे...।" कहकर वह सिसकियां भरने लगी। थोड़ी देर बाद शांत होकर मां फिर बोली—

"जाने दो, अब रोने से क्या मिलता है ? उस सारी राम-कथा को लेकर क्या करना ? अगले वर्ष यह राघू धारवाड़ छोड़कर बिदुगोळ में रहने के लिए गया। वहां खेती घुड़वाकर अमीर बन गया। अब हमें अपनी दौलत दिखाने और हमारी खिल्ली उड़ाने के लिए आया है।

किट्टण्णा, कुछ कुछ बातें बतलाने की होती हैं और कुछ नहीं... सारांश इतना ही है कि यह आदमी विश्वास-पात्र नहीं है, उसके साथ तुम नहीं जाना।"

गंगव्वा ने और कई छोटी-मोटी बातें बताई। रात के बारह बजे तक मां व बेटे की बात-चीत चलती रही। नौकरी लगने के बाद किट्टी ने मां से पहली बार इतनी बातें सुनीं। भूतकाल के चित्र प्रत्यक्ष देख नहीं पाया पर उसके मानस-पटल पर सारे चित्र विस्तार से बनते गये। इनसे मां के बारे में उसके मन में अत्यंत आदर भाव उत्पन्न हुआ।

6. संघर्ष

मां पुरानी पीढ़ी की है, वह नयी पीढ़ी का है। हर एक पीढ़ी की अपनी-अपनी

समस्याएं होती हैं। उसके निर्णय के विरोध में चलना किट्टी के लिए असाध्य था। उसमें विवाह करने का साहस नहीं था। हमारे समाज में जब तक एक लड़का अट्ठारह या बीस वर्ष तक पहुंचता है तब तक कन्याओं के पितृगण उसे घेर-घार कर यह भावना उसके मन में उत्पन्न कर ही देते हैं कि विवाह जीवन के लिए आवश्यक है। जिन लड़कों के पास अपना एक निश्चित सिद्धांत नहीं होता, वे इस सिद्धांत के सामने अपना सिर झुका देते हैं। किट्टी विवाह के नाम से डरता था। पर वह इस मत का हो गया था कि आज नहीं तो कल, विवाह करना ही पड़ेगा। साथ ही दफ्तर में उसे रोज कटु अनुभव भी होते थे।

उस दिन सड़क पर विदा लेते हुए राघप्पा की अंतिम बातें दफ्तर में भी किट्टी के कानों में गूंज रही थीं। 'किट्टण्णा हम और तुम्हारी मां पेंशन लेने की अवस्था में पहुंच गये। हमारी बातें अपने मुताबिक होती हैं। इसमें तुम अपनी मां पर गुस्सा नहीं करना। पुराने जमाने की औरतों को इस नयी पीढ़ी की बातें समझ में नहीं आतीं। हमारे झगड़े और मनमुटाव चलते ही रहते हैं। पर मुख्य बात यह है कि तुम लोगों को अतीत की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। आगे चलकर तुम लोगों को जो बनना है उस तरफ देखो...।' राघप्पा की ये बातें उसे ठीक ही सी लग रही थीं।

किट्टी के समक्ष अनेक समस्याएं थीं। उसमें नया मनुष्यत्व जन्म लेने लगा था। भूतकाल के साथ संबंध बनाये रखना दिन-दिन कठिन होता जा रहा था। अपने विद्यार्थी जीवन में जिनके घर 'बार भोजन'[1] करता था उनके सामने पड़ जाने पर किट्टी के सामने यह धर्मसंकट उत्पन्न हो जाता कि उनको नमस्कार किया जाये या नहीं। ऐसे उपकारी लोग किट्टी के लिए गांव भर में थे। उसने निकर छोड़कर पाजामा पहनना शुरू कर दिया था। इससे उसे इस बात का भय था कि ऐसे लोग उस पर हंसेंगे। बाल लंबे होने लगे थे, चोटी पतली होने लगी थी। उसने शीशे के सामने खड़े हो कर मांग संवारना आरंभ कर दिया था। चोटी को छिपाने के लिए किट्टी बड़ी चतुरता से एक काली टोपी पहन लेता था। कभी-कभी चोटी के बाल टोपी से बाहर दिख जाते थे। इस पर दोस्तों की तानाकशी

[1]संपन्न घरों में गरीब विद्यार्थी बारी-बारी से प्रत्येक सप्ताह भोजन करते थे। अब यह रिवाज समाप्त होता जा रहा है।

होती। कभी-कभी यह सोचता कि वह यह कह दे, 'मेरे कपड़े मेरे बाल, यह मेरी व्यक्तिगत चीजें हैं तुम्हें इससे क्या लेना-देना है ?' लेकिन यह सब कहने के लिए भी उसे अपने से बड़े क्लर्क की सलाह की जरूरत थी। उसका विचार था कि आज नहीं तो कल यह लोग उसके काम आयेंगे। दूसरे वह किसी से जरा सख्ती से बोल नहीं पाता था।

यह डर किट्टी की सब से बड़ी मानसिक समस्या थी। अपने विद्यार्थी जीवन में कई कष्टप्रद प्रसंगों में वह अपने को यह सोचकर समझा लेता था कि मैं बार भोजन पाने वाला लड़का हूं। गुस्सा करने से कैसे काम चलेगा। अपने को इस प्रकार दबा लेने की उसकी आदत बन गयी थी। इसीलिए वह अब गुस्सा कर नहीं पाता था। अगर कहीं कुछ गुस्सा कर सकता तो केवल घर में अपनी मां पर। अपने गुस्से को व्यक्त न कर पाने की आदत के अभाव से उसको अब अपने माता-पिता और भगवान तक को भी शाप देने की इच्छा होती थी। मां ने अब तक कई बार अपनी अमीरी का बखान किया था। वह सब होता तो आज यह मानसिक दुर्बलता उसमें होती ?

इस ऊब से भी बढ़कर किट्टी के मन में मां के प्रति करुणा और आसक्ति थी। किट्टी की नौकरी लगने पर पड़ोसी देसाईजी ने उसे भोजन के लिए बुलाया और कहा, "किट्टी तुम्हारी मां ने बड़ा कष्ट उठाया है, उसने तुम्हें कैसे पाला है इसे हम ही जानते हैं। उसे सुख देना।" नौकरी मिलने की खुशी में उसने कहा था, "उन्हीं के कारण मुझे नौकरी मिली।" यह बात उसके मुंह से निकलते ही उसने अनुभव किया कि वह यह क्या मूर्खता की बात कह बैठा। यही नहीं, भीतर भोजन परोसने आई देसाईजी की भतीजी यह बात सुनकर धिक से हंस पड़ी। देसाईजी की पत्नी वेणुबाई बोली, "पगले हमारे कहने का यह मतलब नहीं। अब तो तू शादी करके घर बसाने योग्य हो गया है। किसी की बातों में न आना। ध्यान रहे।" किट्टी यह याद करके अपनी अयोग्यता तथा अपमान अनुभव करता।

कचहरी में एक घटना घटी। किट्टी की जगह बदल गयी।

किट्टी को प्यादे हुसैन से जरा डर लगता था। उसके बारे में दफ्तर में यह

बात प्रसिद्ध थी कि वह बड़ा होशियार आदमी है और उसमें काफी फायदा पहुंचाने की योग्यता है। अब तक किट्टी का हुसैन से परिचय केवल दूर की बात थी। कचहरी में हाजिर होने के पहले ही जब किट्टी साबुन से धुली सफेद कमीज और खाकी निकर और टोपी पहनकर पहुंचा तो हुसैन ने उसे बड़ी चुभती-सी निगाहों से देखा था। तब से भले ही किट्टी का चालचलन, वेषभूषा और बातचीत किसी और की निगाह से बच जाय पर हुसैन की तीखी नजर से बच नहीं पाती थी। रास्ते में मिलने पर जब हुसैन इसे सलाम करता तो किट्टी को लगता कि वह उसका मजाक उड़ा रहा है। पर आज हुसैन ने स्वयं आकर उसे सलाम किया। किट्टी ने इस नये ढंग को देखकर अचकचा कर पूछा, "क्या बात है।"

हुसैन बोला, "बाहर कोई साहब से मिलना चाहते हैं।"

किट्टी चुपचाप बाहर आया वहां तहमद पहने, काला चश्मा लगाये एक आदमी खड़ा था। हुसैन भी थोड़ी दूर पर इस प्रकार खड़ा हो गया मानो वह भी उनकी बातों में भाग ले रहा हो। किट्टी समझ गया वह सब कुर्सी का प्रभाव है। अब तक किट्टी ने नयी जगह का चार्ज नहीं लिया था। एक दिन पहले उसे बदली का आदेश मिला था। किट्टी को यह पता न था कि इतनी जल्दी इस बदली की खबर दफ्तर से बाहर फैल जायेगी।

काले चश्मे वाले व्यक्ति ने खंखारते हुए कहा—"मेरा नाम कीटल्ली भीमण्णा है। मेरा एक झगड़े का केस आपके पास आयेगा। केस सब क्लीयर हो चुका है अब तक फैसला हमारे हक में हो जाता। आपकी जगह जो साहब थे उन्होंने कहा था कि सारा रफ नोट तैयार करके रखा है। उनकी बदली से हमें चिंता हो गयी है। केस क्लीयर है। उनके ही नोट को अगर आप पेश कर दें तो बड़ी मेहरबानी होगी। केस क्लीयर होते...।"

यह सब बात सुनकर किट्टी ने इतना ही उत्तर दिया, "मैंने अभी चार्ज नहीं लिया। बाद में देखेंगे।"

हुसैन को आश्चर्य हुआ। किट्टी के उत्तर से उसके मन में आदर भाव उत्पन्न हुआ। 'देखेंगे' ऐसे सरल शब्द का हुसैन एक ही अर्थ लगाता था। 'देखेंगे' कहने वाला साहब ही असली साहब है। स एव वक्ता स च दर्शनीय: इस पर हुसैन को कुर्सी पर अगाध विश्वास था जैसे विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठ कर बच्चा

भी न्याय कर सकता है वैसे ही अच्छी कुर्सी मिलने पर बेवकूफ भी साहब बन सकता है। उसके इस अनुभव रत्नाकर में किट्टी एक नया रत्न था। किट्टी नयी जगह का-चार्ज लिए बिना ही यदि 'देखेंगे' कह सकता है तो यह कुर्सी की महिमा के सिवा और क्या हो सकता है।

किट्टी के प्रति जो नया आदर हुसैन के मन में जागा था उसके जोश में वह उस काले चश्माधारी पर टूट पड़ा। "केस क्लीयर केस क्लीयर क्या बकता जाता है। कुर्सी की भी इज्जत करो ना ?" काले चश्मे वाला अंटी ढीली करके दो-तीन रुपयों के नोट टटोलकर मीनमेख करने लगा। हुसैन ने डांटते हुए कहा "नये साहब हैं। इसी से यह डौल दिखा रहा है।" फिर किट्टी से बोला "साहब आप भीतर चलें। मैं इससे निपटता हूं।"

अगले पंद्रह मिनटों में किट्टी के हाथ में एक पांच रुपये का नोट पहुंच गया। हुसैन की जेब में भी एक रुपया पहुंच गया था। अब तक किट्टी को इस प्रकार की प्राप्ति का अनुभव न था। हुसैन की मित्रता का अर्थ केवल सुना भर था। किट्टी की इस स्थान पर बदली के कारण बहुत लोगों को पहले दिन से ही जलन हो गयी थी। हैडक्लर्क जोशी रामराय को पता था कि तहसीलदार ने इस काले चश्मे वाले व्यक्ति के कारण यह स्थान किट्टी जैसे नौसिखिये व्यक्ति को दिया था। परंतु किट्टी को पहले दिन ही पांच रुपये की प्राप्ति और हुसैन की दोस्ती से अत्यंत प्रसन्नता हुई। हुसैन की दौड़धूप पर नजर रखने वाले कुछ क्लर्क दफ्तर से छूटते ही किट्टी को पकड़ कर चाय की दुकान में घसीट ले गये। किट्टी अभी तक चाय की दुकान पर नहीं गया था पर उस दिन हुसैन के स्नेह का प्रारंभोत्सव तो करना ही पड़ा। अतः चाय की दुकान में प्रवेश करना पड़ा।

छुआछूत के डर से किट्टी ने केवल एक कप दूध भर लिया। उसने मित्रों पर पंद्रह आने खर्च कर दिये। रामराय ने किट्टी के खिलाये नाश्ते का रसास्वादन लेते हुए आध घंटे तक उसकी टीका टिप्पणी करते हुए किट्टी के माथे का पसीना चुआ दिया। उसने पूछा, "तुम्हें चाय नहीं चाहिए, सिगरेट नहीं चाहिए, तंबाकू नहीं चाहिए, गप्पबाजी नहीं चाहिए, पत्नी नहीं चाहिए तो तुम नौकरी क्यों करते हो कृष्ण जी।" किट्टी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सका। पार्टी के विसर्जित होते समय रामराय ने कहा, "कृष्णा जी! यह पैसा इसी में डालना चाहिए, यह

दूसरे काम के लिए ठहर नहीं सकता। यदि ऐसी बात न होती तो हम सब अमीर बन जाते। उसे इसी में डालना चाहिए।" उसके इस उपदेश पर शेष सब लोगों ने जोर से सहमति प्रकट की।

किट्टी पर इस उपदेश का प्रभाव एक क्षण मात्र के लिए हुआ था। जेब में से टूटे पैसों की ध्वनि आ रही थी। चोर बिल्ली के समान किट्टी घर की ओर चला। रास्ते में सामने से पौद्दार लक्ष्मुबाई दिखायी पड़ी। उसे देखकर अन-देखा सा करके बिना बातचीत किये घर की ओर चल पड़ा।

हेड क्लर्क जोशी रामराय को पता था कि तहसीलदार साहब की अपनी दिलचस्पी इस केस में है। किट्टी ने अपनी सारी टेबल छान मारी कि उससे पहले वाले क्लर्क ने कोई नोट बनाकर रखा है या नहीं ? पर उसे कुछ भी न मिला। वह रामराय की सलाह के लिए उसके पास गया। जोशी रामराय को लोग शनि रामराय भी कहा करते थे। किट्टी की चाय वाले दिन ही उसने सोचा था कि इसे एक चोट लगानी चाहिए। किट्टी के लाये कागजों को देखकर 'केस तो सारा क्लीयर है।' कहकर चश्मे वाले कोल्ली भीमण्णा के अनुकूल नोट लिखकर दिया। उसी नोट को किट्टी ने अपने हाथ से सुंदर अक्षरों में लिखकर तहसील-दार के पास सही के लिए भेज दिया।

दस मिनट बाद तहसीलदार साहब का बुलावा आया। किट्टी के हाथ-पांव ठंडे हो गये। रामराय के पास जाकर पूछा, "इसका क्या जवाब देना होगा।" रामराय ने उसे उत्साहित करते हुए कहा, "तहसीलदार को पता क्या है उसका सिर। अगर वह कुछ कहे तो कह देना मैंने तो सब कायदे के अनुसार ही कर रखा है। केस तो क्लीयर है। अगर अब तुम ने ढील दी तो बाद में वह तुम्हारे सिर पर काली मिर्च पीसेगा।"

किट्टी ने तहसीलदार के कमरे में प्रवेश किया। तहसीलदार भरा बैठा था। किट्टी ने उनकी मेज पर हाथ रखकर पूछा, "क्या है साहब ?"

"पहले मेज से हाथ उठाओ।" साहब जोर से चिल्लाया।

किट्टी खट से हाथ उठाकर सावधान की स्थिति में खड़ा हो गया।

तहसीलदार ने सीधा पूछा, "कितनी रिश्वत ली ?"

"नहीं साहब ... ..."

"ऐ साहब के बच्चे मेरे सवाल का जवाब दो ?"

"किट्टी हक्का-बक्का होकर चुपचाप खड़ा रहा।"

"नोट लिखा है नोट। तुझे किसने मैट्रिक में पास कर दिया, किसने तुझे नौकरी पर लगा दिया। जाओ, जाकर गधे चराओ।"

"क्यों साहब मुझसे कोई गलती... ...।"

"गलती नहीं गधे रिश्वत ली कि नहीं ? इस पार्टी का वह प्वाईंट अपने नोट्स में क्यों नहीं लिखा ?"

किट्टी की समझ में कुछ नहीं आया। वह विभ्रांत-सा बोला, "गलती हुई साहब।"

तहसीलदार का गुस्सा कुछ उतरा। "कृष्णा जी, तुम नये हो। दूसरों को वह जगह दे दूं तो सत्यानाश पीटकर रख देंगे। यही सोचकर यह जगह तुम्हें दी। तुम्हें उसे संभालते दो दिन भी नहीं हुए कि तुम भी वही सीखने लगे। मैं यह नहीं कहता कि पैसा मत खाओ, पर कानून के मुताबिक चलो। खाओ सो हजम करो। जो आज खाया है उसे कल उगलना पड़े तो फायदा क्या ? पहले नौकरी संभालनी चाहिए उसके बाद जो चाहे सो करो।"

रामराय की सिखायी हुई बातें भगवान की दया से साहब के गुस्से के कारण सब भूल गयी। बिना और कुछ कहे जैसा साहब ने बताया वैसा नोट लिखकर साहब के सामने रखा। साहब ने उसके हिज्जे के ज्ञान पर खीझते हुए दस्तखत कर दिये।

किट्टी अपमानित होकर शर्म से लाल मुंह लिए अपनी मेज की तरफ गया। रामराय को अपना मुंह दिखाने की उसकी इच्छा न हुई। उसकी बतायी बातें तो एक तरफ, अपने मुंह से गलती मानना, साहब के कहे अनुसार नोट लिखना साहब का गुस्सा उतरता देखकर उसका संतुष्ट होना, यह अपनी कमजोरियां उसके सामने नाच-नाचकर उसे लज्जित कर रही थी।

सभी क्लर्क अपने कागजों में डूबे होने का दिखावा करते हुए अपनी मुस्कराहट दबाये मुंह झुकाये बैठे रहे।

उस शाम को किट्टी का सारा अभिमान चूर-चूर हो गया था।

उसने मन में सोचा, हां ! यह ठीक है कि काम यदि ठीक न हुआ तो भी इन गालियों से बचना चाहिए। आखिर में मेरी स्वभावगत विनय से काम चल सकता है पर यह असह्य गालियां नहीं सुनाई पड़नी चाहिए। गालियां सुई के समान चुभती हैं।

7. गंगव्वा की चिंता

गंगव्वा उस दिन संध्या के छह बजे देसाई के घर गयी। देसाई का बड़ा लड़का अच्युत जब से कामर्स पढ़ने के लिए बंबई गया तब से उनके दूसरे लड़के वसंत-राव को घर के व्यवहारों में बड़ी रुचि तथा जिम्मेदारी की भावना हो गयी। वसंत राव को गंगव्वा तथा उसका पुत्र फूटी आंख न सुहाते। इसका कारण यह भी था कि किट्टी प्रतिवर्ष परीक्षा में पास होता गया और मैट्रिक परीक्षा प्रथम प्रयास में ही पास करके वसंत से आगे चला गया। जब देसाई किट्टी से यह कहते थे कि हमारे लिए किट्टी और वसंत में कोई फर्क नहीं तो वसंत समझता कि उसके पिता का वात्सल्य किट्टी पर ज्यादा है। इसके अतिरिक्त उसे इस बात का पता लगे दो मास हो गये थे कि किट्टी की मां कभी-कभी रहस्यात्मक ढंग से दस-पंद्रह रुपये ले जाती रहती है। वसंतराव को स्टंट पिक्चर देखने का बड़ा चाव था पर उस दिन पिताजी ने पैसे देने से इनकार कर दिया। इस दुःख में वसंतराव को अपना जीवन ही व्यर्थ सा लगा। वह आंगन में चटाई पर मक्खियां उड़ाता हुआ बैठा था। उसी समय गंगव्वा का प्रवेश हुआ।

वसंतराव ने दुःख से कहा, "आइये, कितने रुपये चाहिए? पिछवाड़े हम लोगों ने पैसे के पेड़ लगवा रखे हैं।"

गंगव्वा को बात चुभ गयी। वह तेजी से भीतर गयी। देसाईजी आराम से पान चबा रहे थे। उनके सामने खड़ी होकर वह जोर से बोली, "क्यों गोपण्णा, यह तो सच है कि हम तुम्हारे आश्रय में हैं, पर मेरे मांगने पर जो तुम पैसा देते हो न,

वह किसके हैं ? उसे जरा अपने बेटे को बता दो।"

देसाईजी सब कुछ सुनकर बहुत दुखी हुए। उसे बुलाकर डांटा। वह सिनेमा देखने के लिए तीन आने न मिलने की बात पर बड़बड़ाता हुआ चला गया। गंगव्वा की कहीं बात उसके कान में गूंज रही थी--किसके पैसे ? इस प्रश्न के अर्थ के बारे में वह सोचने लगा।

देसाईजी यह जानते थे कि गंगव्वा के इस समय आने का कोई विशेष कारण होगा। दीवार से पीठ लगाकर उन्होंने गंगव्वा की बातें बड़े ध्यान से सुनी। वे गंगव्वा का बड़ा आदर करते थे। परंतु बिना कोई कारण वे उस परिवार की बातों में हाथ नहीं डालना चाहते थे क्योंकि उन्हें सदा इस बात का डर था कि इसमें कभी होम करते हाथ जलने वाली बात न हो जाए। गंगव्वा अपनी सारी समस्याओं को उसके सिर पर मढ़ती थी। वे उसका केवल बहुत जरूरी कार्य ही करना चाहते थे। वे गंगव्वा की ऐसी छोटी-मोटी बातें सुनना पसंद नहीं करते थे जैसे किट्टी मुझसे पहले जैसी बात नहीं करता, किट्टी बहुत पैसे खर्च करता है, किट्टी रात को बहुत देर से घर आता है। इसके अतिरिक्त देसाईजी जो काम हाथ में लेते थे उसे पूरा करके दम लेते थे। जहां तक संभव होता किसी काम में हाथ नहीं डालते थे। दूसरे लोगों की बातों के बारे में अनावश्यक लगाव उचित नहीं... यह सोचकर वे जहां तक संभव हो दूर ही रहते थे। पर गंगव्वा सदा उनके न चाहने पर भी अपनी समस्याओं को उनके सिर डालती ही जाती थी।

"गोपण्णा, किट्टी ने इस महिने कितने रुपये दिये ?"

"कोट सिलाने की बात कह रहा था। पांच रुपये दिये होंगे।"

गंगव्वा बोली—"तुम बहुत खर्च करने लग गये हो ऐसा एक बार उसे समझा दो न ! वह बहुत फिजूलखर्ची करने लगा है।"

पुरुषों की समस्याओं से परिचित देसाई कुछ चिढ़कर बोला, "तुम्हारा बेटा कोई मूर्ख गंवार है ? वह तो अच्छी नौकरी करता है, पैसे कमाता है। अब बड़ा भी हो गया। ऐसी बातें तुम्हें कहनी नहीं चाहिए। यदि तुम कह दो तो चल भी सकता है। हमें तो ऐसी बातें मुंह से नहीं निकालनी चाहिए। 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत'।

यह यूयम-वयम् का सिलसिला गंगव्वा के लिए असह्य था। कसमसा कर

बोली "तो तुम्हारा कहना है जो कुछ हो रहा है चुपचाप देखती रहूं।" उसे हिचकी आ गयी।

उसके इस ढंग से देसाईजी को लगा कि उसके मन में कोई और ही बात है। इस परिवार की आंतरिक बातों में हाथ न डालने के विचार से देसाईजी कुछ देर चुप ही रहे। लेकिन गंगव्वा के आंचल में मुंह छिपा लेने से वे चुप न रह सके और पूछा, "क्यों क्या हुआ ?"

"होना क्या है ? रोज की तरह गुस्से में भरा कचहरी से घर आया, फिर बोला रात को गाना सुनने के लिए जाऊंगा। जाने कहां..." आगे गंगव्वा बोल न सकी।

देसाईजी ने उसे तसल्ली दे कर सब बातें पूछीं।

गायन-सभा का आयोजन गंगव्वा के भाई राघप्पा के घर में था।

बात यह हुई कि राघप्पा ने दफ्तर में आकर जब किट्टी को निमंत्रण दिया तो उसे जंचा नहीं। गाने के नाम से किट्टी को औरंगजेब वाला प्यार था। लेकिन राघप्पा ने जाते-जाते कहा था कि तहसीलदार साहब भी संगीत-सभा में आ रहे हैं वहां तुम्हारा व्यक्तिगत परिचय करा दूंगा। इसलिए किट्टी के मन में वहां जाने की उत्कट इच्छा हुई। किट्टी ने सोचा, गाली देने की कला में निष्णात तहसीलदार से परिचय हो जाय तो शायद गालियों की तोप से बचाव हो सके। राघप्पा मामा उसके लिए भगवान के समान आये थे।

नयी जगह पर बदलने के बाद किट्टी का व्यवहार घर में भी बदल गया था। सुबह देर से उठता, शाम को घूमने जा कर देर से लौटता, आते ही भूख न होने का बहाना करता और दो कौर निगलकर बिस्तर पर पड़ जाता। उसने यह सब हरकतें शुरू कर दी थीं। बाहर के चार पैसे आने से चुप्पी साधता चला जा रहा था। घर में अब उसने बातचीत करना कम कर दिया था। पहले का-सा बचपना अब छूट गया था। इस कारण घर में पूर्ण मौन का साम्राज्य रहता था। पहले की तरह खाने के समय वह मां से कोई बात न करता मानो उसे कोई बात मां से छिपाकर रख ली हो। किट्टी का घर में एकदम बात न करने का कारण संभवत: यह भी रहा हो कि उसकी ऊपरी आमदनी की बात यदि मां को लग जाय तो वह

कहीं उससे पैसे न मांग ले या ... या ... शर्म से।

इससे गंगव्वा को मानसिक दु:ख हुआ। कुछ दिन यह सोचकर चुप रही की अधिक काम करने की थकावट हो सकती है। अंत में अपने मातृत्व के अधिकार से बोली "किट्टी तहसीलदार साहब तुम्हारे काम के बारे में क्या कहते हैं। उनकी मर्जी का ध्यान रखना भइया। आज के अनारस कितने अच्छे बने हैं। दो-चार गरम-गरम तैयार करके देती हूं, उनके यहां दे आना।"

किट्टी को इस प्रकार की बेकार बातों से चिढ़ थी। जो बात उसकी मां की समझ से परे है उसमें वह क्यों दखल देती है यह सोचकर उस पर खीज पड़ता था। उसे इस बात का गुस्सा था कि मां को यह क्यों नहीं समझ में आता कि अब मैं बड़ा हो गया हूं। मां जब तहसीलदार का नाम लेती तो उसे ऐसा लगता, मानो वह यह दिखा रही हो कि मेरे प्रयास से ही तेरी नौकरी लगी है। इसी से वह अपमानित सा गुस्से में उस पर चिल्ला पड़ता। बेटे का दफ्तर से जल फुंक कर घर आना गंगव्वा का प्रतिदिन का अनुभव हो गया।

गंगव्वा इसे सह जाती थी पर जिस पेड़ को उसने दस वर्ष तक सींचा था उस पर फल लगने का समय आने पर राघप्पा उसे चुराने आ गया यह उसके लिए असहनीय था, अक्षम्य था।

केवल उस दिन किट्टी मां को धोखा देकर विजयी हुआ।

उसे यह पक्का पता था कि उसके यह कहते ही कि राघप्पा के घर जा रहा है, मां उबल पड़ेगी। इसलिए उसका गुस्सा उतरने तक चुप ही रहा। वह सब समाप्त होने पर तनिक असंतोष के स्वर में कपड़ों का ट्रंक उलटता-पलटता बोला "तहसीलदार साहब भी गाना सुनने आयेंगे वहां उनसे व्यक्तिगत परिचय हो जायेगा इसलिए हां कर दी थी। तुम्हारे राघू की बेटी के गले में वरमाला डालने नहीं जा रहा हूं। घर आते ही तुम्हारा यह संगीत, सुबह भी तुम्हारी यही चिल्ल-पुकार थी। पहनने को एक इस्त्री किया कोट नहीं। क्या पहनकर जाऊं। अच्छा, यही मैला कोट पहनकर तहसीलदार के सामने जा रहा हूं।"

गंगव्वा कुछ देर को अप्रतिभ हो गयी। किट्टी को मां को सफलतापूर्वक धोखा दे पाने में बड़ा आनंद आया। नयी जगह पहुंचकर वह कुछ वाक्-चातुर्य सीख गया है। उसे क्रोध दिला कर फिर उसका मुंह बंद करना कोई साधारण सफलता

की बात है पर इतने में गंगव्वा संभल गयी ।

"तहसीलदार के परिचय के लिए इस राघू की क्या जरूरत है ? वैकुंठ जाने के लिए लंगड़े दासय्या[1] की सहायता चाहिए । मैं इतने दिन से कह रही हूं, किट्टी बेटा तहसीलदार के घर एक बार हो आ उन्हें कुछ चाहिए तो नहीं पूछकर आ । पुराना परिचय छोड़ना ठीक नहीं । मेरी सुनने वाला कौन है ? अब तहसीलदार से परिचय के लिए राघप्पा मामा जरूरी हो गया ।"

"मां तुझे जिस बात का पता नहीं उसमें क्यों बोलती है । अब तहसीलदार ये दूसरे हैं । अंगड़ी तहसीलदार की बदली हुए पांच महीने हो गये ।"

गंगव्वा को लगा कि वह गिर पड़ेगी और उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला ।

...अंगडी तहसीलदार गंगव्वा के पति के मित्र थे । अपने पति के रहते बड़े आदमी की पत्नी होने से वह तहसीलदार की पत्नी से बराबरी ही नहीं, तनिक बड़प्पन से व्यवहार करती रही थी । तब यह तहसीलदार नहीं हुए थे । बाद में जब वे कई बार तबादले प. धारवाड़ आये तो उसे उनके सामने जाना ठीक नहीं लगा क्योंकि अब उसके दिन अच्छे नहीं रहे थे । किट्टी के मैट्रिक पास होने के बाद उसकी नौकरी के लिए अपने मान-अपमान को एक तरफ रखकर पुराने संबंधों की याद दिलाने दस वर्ष बाद तहसीलदार की दहलीज पर गयी थी । उन्होंने भी पुराने परिचय को याद करके खुशी से उसका काम कर दिया । गंगव्वा उनकी बड़ी कृतज्ञ थी । उन्हीं दिनों तहसीलदार की बारह वर्षीय लड़की नीलव्वा के लिए वर की खोज हो रही थी । जब यह लड़की पैदा होने वाली थी तब गंगव्वा के पति ने दौड़-धूप करके अपने जेब से खर्च करके सिविल सर्जन को घर बुलाया था । तहसीलदार की पत्नी ने गंगव्वा को भी वह बात याद दिलाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की । इसलिए गंगव्वा के मन में इस बच्ची के प्रति आत्मीयता उत्पन्न हो गयी थी । गंगव्वा के मन में यह बड़ी इच्छा थी कि नीलव्वा का वर निश्चित होते ही उसके लिए अच्छा जोड़ा तैयार करे । उसने किट्टी को कह रखा था कि उसके विवाह का दिन निश्चित होते ही उसे बताये । एक-दो बार पूछने पर किट्टी अभी पता नहीं बड़बड़ाया था । और बाद में उसने यह कहकर आश्वासन दिया

[1]भिक्षा पर जीविका चलाने वाला ।

था कि तू अब मुझसे पूछा मत कर, पता लगते ही तुझे तुरंत बता दूंगा। लेकिन इसने तो तबादले की बात भी नहीं बतायी। कम-से-कम इस मौके पर गंगव्वा घी में अनारस तलकर उनके घर भेज सकती थी। यह ठीक है कि वह स्वयं भी स्वाभिमान के कारण उस दिन के बाद उनके घर नहीं गयी थी। लेकिन तबादले के बहाने उनके घर जाकर कुछ मिठाई आदि देकर आती तो अच्छा होता। पर इसे क्या उस तबादले की खबर ही नहीं देनी चाहिए थी? इस विश्वासघात के कारण गंगव्वा आगे कुछ न बोल सकी। उसका जी जल गया।

इधर मां से झगड़ा करके उसका मुंह बंद करने में किट्टी को मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

देसाईजी के सामने गंगव्वा ने सारी बात अपने दृष्टिकोण से बतायी और राघप्पा के बारे में अपने मुख्य दो भय भी बताये। अगर उसने किट्टी को बुरी आदतें डाल दीं तो क्या होगा? किट्टी के कान भरकर वह अपनी बेटी उससे ब्याह दे तो उसका क्या परिणाम होगा?

इतनी सब बातें होने तक वेणुबाई नौकरानी से कुछ कहने के लिए पिछवाड़े गयी, उसी मौके को देखकर गंगव्वा ने देसाईजी से कहा—

"गोपण्णा एक बात बताती हूं किसी से मत कहियेगा। यह बात हम दोनों के बीच में ही रहे। राघप्पा का नाम लेते ही मेरे तन-बदन में आग-सी लग जाती है। फिर भी उसकी लड़की की शादी हो जानी चाहिए। भगवान की कृपा से उसकी शादी हो जाये, लेकिन मेरे घर में नहीं हो, यही मेरी इच्छा है। तुम पूछोगे क्यों? इतने दिनों से जो बात मैंने छिपा रखी थी वह बता दूं क्योंकि नौबत मेरे घर तक आ पहुंची है। हमारे राघू के शादी के बारे में तुम्हें पता नहीं। शादी से पहले वह दोनों एक दूसरे को जानते थे। बाद में जब शादी की बात चली तो वह इनकार करने लगा। तब उस लड़की की मां मेरे घरवाले के पांव पकड़कर कहने लगी, 'मेरी बेटी की इज्जत बचा लीजिए।' यह सुनते ही वे गये और राघू को पकड़कर कहा, 'चुपचाप शादी कर ले, नही तो हंटरों से खाल उधेड़ दूंगा। गधे पर बिठाकर सवारी निकलवा दूंगा।' इनकी इस धमकी से यह उस लड़की से शादी करने को तैयार हुआ। ऐसे आदमी की बेटी को मैं अपने घर में नहीं

चाहती भैया।"

इस पर देसाईजी ने वही कहा, "गंगव्वा इतने दिनों तक तुमने यह बात अपने पेट में रखी। आगे भी किसी से न कहना, अपने में ही रखना।"

देसाईजी ने अनुभव किया कि वे जितना दूर रहना चाहते थे, उतना ही वे कीचड़ में फंसते चले जा रहे थे। वे सोचने लगे जितनी जल्दी हो सके इस घर के व्यवहारों से छुटकारा पा लेना चाहिए।

इतने में वेणुबाई अंदर आयी इसलिए वह बात वहीं समाप्त हो गयी। इधर-उधर की बातें करके गंगव्वा अपने घर चली आयी।

8. संगीत सभा

किट्टी को संगीत सभा में बिना इस्त्रीवाला कोट पहनकर जाना पड़ा। उसने सोचा कि उस कोट के अनुकूल विनय से तहसीलदार साहेब के सामने व्यवहार करेगा। संगीत सभा कैसी होती है यह किट्टी की कल्पना से बाहर की बात थी। उसने कल्पना की थी कि एक कमरे में वह और राघप्पा मामा साहब के आमने-सामने बैठेंगे। राघप्पा इसका गुणगान करेगा, साहब सम्मति सूचक मुस्कराहट के साथ सुनेंगे। यह सिर झुकाकर विनय से उनकी बातें सुनेगा। संगीत सभा में एक गायक भी होना चाहिए, पर उसका तो किट्टी की कल्पना में कोई अस्तित्व ही न था। सात बजे किट्टी मामा के घर पहुंचा तो उसे पहले ही निराशा हुई। उसके पहुंचते ही उसका स्वागत करने वाला राघप्पा मामा घर में नहीं था। तहसीलदार भी अभी नहीं आये थे, किसी ने भी उसे अंदर आने के लिए नहीं कहा। मजबूर होकर चप्पल बाहर उतार कर उसने अंदर प्रवेश किया।

पूरे आंगन में एक लाल जाजम बिछा हुआ था। एक कोने में जहां जाजम नहीं था, एक पैट्रोमैक्स रखा हुआ था। उसके चारों ओर कीड़े घिरे थे। रेशमी पगड़ी और ऊनी कोट पहने छह सात सभ्य गृहस्थी जाजम के ओर रखी कुर्सियों पर बैठे

थे। वे सब गप्पों में मग्न थे। गैस की गर्मी से कुछ लोगों के पसीने छूट रहे थे। जाजम की दूसरी ओर सात से बारह वर्ष तक के बच्चे एक गोला-सा बनाकर स्कूल अध्यापक, खेल आदि विषयों पर धीमी आवाज में चर्चा कर रहे थे।

किट्टी को प्रवेश करते आत्मसंभाविता: स्तब्धा: धनमानमदांविता: व्यक्तियों ने एक बार निगाह उठाकर देखा और उसी पर नजरें जमाये उन्होंने अपनी चर्चा आगे चलायी। बच्चों ने तो इसकी ओर देखा ही नहीं। दौड़कर बाहें पसारकर स्वागत करने वाला मामा कहीं अदृश्य हो गया था। आखीर में किट्टी को लगा कि बड़े लोगों में सभी इससे आयु में बड़े थे और उससे अच्छे कपड़े पहने हुए थे, इसलिए उसने स्कूल के उन बच्चों में बैठना ही उचित समझा। बच्चों के समूह में जाकर उसने एक को एक ओर धकेला, दूसरे की छाती पर कुहनी मारी, तीसरे के हाथ पर पांव रखकर चौथे की गोद में धम्म से गिर पड़ा। इस हंगामे में जिसका हाथ कुचल गया गया था वह सात वर्ष का बालक था। वह एकदम जोर से चिल्लाया। कुर्सियों पर बैठे देवताओं ने एक करुणा दृष्टि किट्टी पर डाली और वे अपनी चर्चा में खो गये। किट्टी को लगा कि पृथ्वी माता उसे अपने में समा ले तो अच्छा है। बच्चों के झुंड में यही सबसे लंबा था। इसलिए वर्षा में भीगी बिल्ली की भांति सिकुड़कर उन बच्चों जितना होकर अपने को सिकोड़ कर बैठ गया।

इसके द्वारा दिये गये कष्ट को सहने वाले बच्चों की आलोचना थोड़ी देर तक सुनने के बाद उसने अपनी जगह बना ली। फिर उसने अपनी आंखें आंगन में चारों ओर घुमाईं। दीवारों पर लगे चित्रों और छत पर लटके शमादानों को बड़े ध्यान से देखा फिर बड़े कौतूहल से कोने में रखे तबले और तंबूरे आदि का निरीक्षण किया। 'अरे, तंबूरा इतना बड़ा होता है।' उसने मन में कहा।

आंगन के दो ओर दो कमरे थे। दोनों कमरों में हल्का-सा प्रकाश था, इसलिए पैट्रोमैक्स की चौंधियाने वाली रोशनी के कारण पहलेपहल वहां कुछ भी दिखायी नहीं दिया। दस मिनट आंगन में इधर-उधर देखने के बाद थककर किट्टी ने जब कमरे के भीतर नजर जमाई तो उसे एक विचित्र दृश्य दिखायी दिया।

उस कमरे में एक सुंदरी बैठी थी। दीवार की छाया होने पर भी उसका मुंह स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा था। किट्टी ने पौराणिक कथाओं में उर्वशी, रंभा, चित्रा, गदा आदि सुंदर स्त्रियों का नाममात्र सुन रखा था। उसे देखकर वह दंग

रह गया। वह सचमुच सुंदरी थी।

... यह अप्सरा तो नहीं। वह सौंदर्य किट्टी की कल्पना से परे की बात थी। किट्टी ने उसकी ओर ध्यान से देखा। वह भी इसकी ओर देख रही थी। किट्टी में उसकी दृष्टि का सामना करने का साहस न हुआ। इसने लज्जा से सिर झुका लिया। पर फिर उस स्वर्गीय मुख को देखने की इच्छा हुई। बार-बार उसकी ओर आंख उठाकर देखता और नीचे कर लेता। अब तक इसने ऐसे सौंदर्य की कल्पना तक नहीं की थी। किट्टी को किसी के सौंदर्य ने इतना आकर्षित नहीं किया था। उसकी आंखें उसके वश से बाहर होने लगीं। धीरे-धीरे वह साहस उत्पन्न होने लगा जो उसमें कभी न था। वह भी इसकी ओर देख रही थी।

हुब्बळ्ळी की महबूबजान प्रसिद्ध गायिका तथा रूपवती थी। वह अपने ढंग से सुसंस्कृत भी थी। राघप्पा का चुनाव कोई साधारणा हो सकता है? गत दस-बारह वर्षों से वह राघप्पा के आश्रय में थी। संगीत में उसने एक खास नाम कमाया था। शेषशायी नाटक कंपनी ने उसी के नाम के कारण बहुत-सा पैसा कमाया। कंपनी छोड़ने के बाद अब कंपनी नये-नये दृश्यों वाले परदों और नये-नये कलाकारों की व्यवस्था के बाद भी उतना पैसा न कमा सकी। पूना की गंधर्व नाटक कंपनी के कारण एक नये रसिकवर्ग का जन्म हुआ। वे लोग महबूबजान के संगीत में बड़ा रस लेते थे। परंतु हाल के चार-पांच वर्षों से महबूबजान ने नाटकों में भाग लेना छोड़ दिया था। उसे कई कंपनियों ने तीन सौ रुपये मासिक तक वेतन दिया था। एक बार एक उत्सव में नाटक करते समय महबूबजान को बहुत परिश्रम करना पड़ा जिससे वह बीमार पड़ गयी। तब उसके 'यजमान' ने उसे कसम दिलाकर नाटक में भाग लेने से मना कर दिया। तब से वह राघप्पा पर विश्वास करके उसकी आज्ञा मानकर उसी के आश्रय में दिन बिता रही थी। अब वह अधेड़ हो चली थी। हिचकियों की बीमारी लग जाने के कारण गाना भी उसने कम कर दिया था। आज यजमान के घर में संगीत सभा होने के कारण सुबह से इलायची मुंहलहठी खाकर गला सधा कर गाना गाने आयी थी।

परंतु तहसीलदार को बुलाने के लिए गया घर का मालिक एक घंटा बीत जाने पर भी लौटकर नहीं आया था। वह बहुत ऊब गयी थी। गाना सुनने आये हुए लोगों में महबूबजान से दो एक बातें करने की इच्छा थी। राघप्पा की अनु-

परिस्थिति के कारण उन्होंने विशेष उत्सुकता नहीं दिखायी और आपस में गप्पें मारने लगे। उससे बात करने वाला कोई न था। राघप्पा ने उसे बताया था कि उस सांझ को बड़े अफसर सभा में आयेंगे इसलिए महबूबजान ने अपने रेशमी वस्त्र पहने थे। मुख पर खूब मेकअप भी किया था, गले में सोने की जंजीर के साथ सेवंती के फूलों की माला पहनकर जैसे अपनी जवानी के दिनों में बड़ी-बड़ी सभाओं में जाया करती थी उसी प्रकार आज भी सजधज कर आयी थी। काफी दिनों से अभ्यास कम हो जाने के कारण उसे पसीना छूट रहा था। ऐसे ऊब भरे समय में किट्टी भीतर आया। उसके आगमन से महबूबजान की ऊब कुछ घट गयी। अभिनय कला में निष्णाता महबूब को किट्टी का असमंजस में पड़कर बैठने को स्थान खोजना, बच्चों के बीच बैठते समय की गड़बड़, शरीर सिकोड़कर बैठना, मुंह बाये तंबूरी की ओर निहारना आदि सब उसे नाटक में विदूषक के पात्र की याद दिला रहा था। इसीलिए वह उस जीवंत नाटक को अपलक देखने में मग्न थी।

इतने में राघप्पा तहसीलदार और उसके एक और मित्र को साथ लेकर पहुंच गया। तहसीलदार के आते ही तकिये की टेक लगा कर बैठे सभ्य गृहस्थ सीधे होकर बैठ गये और उनका स्वागत किया। तहसीलदार ने अपने आये हुए मित्र को बड़ा तकिया देकर आप भी बैठ गये। उन्हीं के पास राघप्पा भी बैठ गया और सभी सद्गृहस्थों का परिचय कराया। जिन-जिन से तहसीलदार परिचित थे, उनसे उन्होंने हल्का-सा हंसी-मज़ाक भी किया। जब इधर यह सब चल रहा था तब किट्टी ने थक कर बच्चों के झुंड में सिर ऊंचा कर ही लिया। वह अपने मामा की ओर कातरता तथा दीनता से यह सोच कर देख रहा था कि कब उसकी ओर मामा की नजर उठेगी। परंतु न तो तहसीलदार ने और न उस तक पहुंचाने वाले मामा ने उस कीचड़ में फंसे कमल की ओर दृष्टि उठायी।

राघप्पा ने कमरे में आसीन सुरसुंदरी से जोर से कहा, "महबूब तुम्हारा संगीत सुनने के लिए तहसीलदार पधारे हैं। वे बहुत दिनों से तुम्हारे संगीत सुनने की बात कह रहे थे। तुम आज अपना सबसे बढ़िया गाना सुनाना।"

महबूबजान ने थोड़ा प्रकाश की ओर खिसकते हुए नज़ाकत से बड़े तकिये पर विराजमान तहसीलदार के मित्र को मुजरा किया। इस बात को देखकरतह सील-

दार ने अपना हक जताते हुए कि तहसीलदार यह नहीं मैं हूं, गंभीरता से पूछा, "गंधर्व राग आता है।"

तब महबूबजान ने कहा, "जी हां" (सभा में हिंदुस्तानी में ही बोलने का उसका सिद्धांत था) वह और विलंब न करते हुए कमरे से बाहर आकर उसी के लिए अलग बिछायी गयी दरी पर बैठते हुए सिर का पल्लू ठीक करने लगी।

उसके प्रकाश में आ जाने से किट्टी के लिए उसका रूप मंद पड़ गया। गैस के प्रकाश में उसके मुंह पर लगाये रंग से न दब पाने वाली झुर्रियां जहां-तहां दिख रही थीं। अधिक अनुभवी लोगों के लिए भले ही वह अब भी सुंदर रही हो। सौंदर्य की दहलीज पर जाकर भीतर जाऊं या न जाऊं सोचने वाले किट्टी को महबूबजान का तत्कालीन सौंदर्य भयानक ही लगा। थोड़ी स्थूलकाय होने पर भी उसके शरीर के सभी अंग पुष्ट थे। उसके मुख को नजदीक से देखने पर किट्टी को पूर्ण रूप से निराशा ही हुई।

लेकिन पांच मिनट पूर्व के उस अर्ध-अंधेरे कमरे के झूठे फरेबी चित्र के कारण उसकी किशोरावस्था उसका साथ छोड़ गयी। अब की यह निराशा उसे पुनः बालक न बना सकी।

बैठक के बाहरी बरांडे में बैंच पर बैठा एक वृद्ध भीतर आया और उसने वहां रखे तंबूरा तथा तबलों का सुर एक बार जांच कर देखा। तबला ठीक करने वाली हथौड़ी की आवाज के बीच ही देशपांडे ने देखा कि तंबाकू के डिब्बों में तंबाकू खत्म हो गया है। उसने घोषणा की 'राघप्पा तंबाकू खत्म हो गया है।' 'ओह' कहते राघप्पा ने छोटे बच्चों की ओर घूमकर अंटी से दो आने निकालकर उनकी ओर बांह लंबी करके बोला, "अरे तुममें जिसकी मूछें आ गयी हैं वह जाय और दो आने का तंबाकू ले आये।"

इधर के सुरथाप की आवाज आते रहने से बच्चे बाहर जाने के लिए एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। एक लड़के ने किट्टी की ओर इशारा करके कहा इसकी मूंछे निकल आयी हैं। किट्टी हक्का-बक्का होकर फटाक से उठकर मामा के हाथ से दुअन्नी लेने को आगे बढ़ा। तभी राघप्पा ने इसे देखा।

"ओह... हो... तुम आ गये? यहां क्यों बैठे हो?" कहते हुए तनिक सरक कर जगह बनायी और बैठने का इशारा किया। महबूबजान के मुख पर हल्की-सी

हसी खेल गयी। तहसीलदार ने भी उसे तंबाकू लाने के लिए उठते देखा था या नहीं, यह जांचने को भी किट्टी की दृष्टि तहसीलदार की ओर उठने का साहस न कर सकी। फिर भी तत्क्षण मिली प्रमोशन ही काफी है, यह सोचकर वह प्रसन्नमुख वहीं बैठ गया। उसने अपनी ओर घूरते हुए साहब को नमस्कार किया। राघप्पा ने उसका केवल इतना ही परिचय दिया "यह हमारा लड़का है, आपकी कचहरी में ही काम करता है।" साहब ने सिर हिलाया। अपने मातहत को अपने इतने पास बैठा देखकर साहब संकुचित हुए। उनके पास बैठते समय तकिये से पीठ टेककर बैठना चाहिए या नहीं किट्टी इस असमंजस में था। इतने में संगीत प्रारंभ हुआ। थोड़ी देर आराम से बैठकर साहब अपने साथी से गप्पें मारने लगे। किट्टी फिर असमंजस में पड़ गया कि इनकी बातें सुनें या संगीत। मामा तो संगीत में गर्क था। किट्टी को उस गाने का अर्थ समझ में न आया, इससे छुटकारा नहीं मिलेगा यह सोचकर बैठा रहा। थोड़ी देर में तकिये की टेक न लगा पाने के कारण उसकी कमर दुखने लगी। साथ ही साथ यह कानों पर अत्याचार। वह सुरसुंदरी स्वर्ग के द्वार के बराबर मुंह खोलकर विचित्र स्वर और व्यंजनों के संयोग से एक शास्त्रीय राग अलाप रही थी। 'शास्त्रीय' और 'वेश्या स्त्री' का कैसा विचित्र संयोग यह सोचकर किट्टी को मन ही मन जोर की हंसी आयी। परंतु बाद में उसने एक मराठी पद और कन्नड पद 'कृष्ण नी बेगने बारो'[1] गाया। उसमें भी किट्टी को विशेष आनंद नहीं आया। लेकिन तहसीलदार से लेकर बच्चों तक सबको सिर हिलाते देख वह स्वयं सिर हिलाने लगा और धीमे से वाह वाह कहा, जिसे कोई सुन न पाये। उस ढाई घंटे के कार्यक्रम में मामा ने एक ही बार उससे बात की। तहसीलदार ने तो केवल दो बार उसके अस्तित्व को स्वीकारा भर था। एक बार तंबाकू लाने की बात पर, दूसरी उनके समीप के तकिये पर आक्रमण के समय। किट्टी ने स्पष्ट रूप से अनुभव किया कि उसका आना व्यर्थ हुआ। राघप्पा की फरमाइश के अनुसार 'न मारो पिचकारी' ठुमरी को साभिनय गाकर गाना खत्म किया गया। महबूबजान का अभिनय और नज़ाकत किट्टी को तनिक न भाई। उसने सोचा आज की यह हिंसा ही आज का लाभ रही।

1कृष्ण तुम शीघ्र आओ।

सभा की समाप्ति के बाद तहसीलदार महबूबजान से दो-एक बातें करके और दूसरों का नमस्कार स्वीकार करके जाने लगे तो किट्टी ने नमस्कार करके पूछा– "तांगा ले आऊं साहब" साहब ने कहा, "राघप्पा ने किसी लड़के को भेज दिया है।" बिना गालियों के भी साहब के मुंह से बात निकल सकती है यह देखकर किट्टी को धैर्य बंधा। इधर-उधर की बातों के बाद किट्टी ने उस पुराने केस की बात उठाई। इतने में तांगा आ खड़ा हुआ। लेकिन तहसीलदार के मन में किट्टी से बात करने की इच्छा हो गयी इसलिए वहीं खड़े-खड़े किट्टी से गंभीरता से बोले, "देखो कुलकर्णी। तुम्हारे जैसे लोग अगर रेवेन्यू विभाग में टिके रहना चाहते हैं तो एक बात समझ लो। तुम्हारी जैसी जगह के आदमी के लिए यह आवश्यक है कि वह सब कायदे-कानून और दफ्तरी प्रक्रिया को अच्छी तरह जाने। किसी दूसरे की बातों में आने की जरूरत नहीं। तुम्हारी प्रक्रिया ठीक रहनी चाहिए। तब तुम इसको पार पा सकते हो। परसों तुम्हें नोट किसने लिखाया, यह मुझे नहीं मालूम क्या?"

किट्टी बोला, "नहीं साहब उनका केस क्लीयर था, यही कहा था।"

"जो भी हो तुम्हें उन पर इतना निर्भर नहीं रहना चाहिए। तुम जरूरी कायदे-कानून की जो फाइल कचहरी में है, घर ले जाकर एक बार नहीं चार बार पढ़ो तब तुम्हें अपना काम समझ में आयेगा। रेवेन्यू विभाग में काम करते समय किसी पर भरोसा नहीं रखना चाहिए। अभी तुम जूनियर हो, इसलिए चार आदमी तुम्हें समझाते हैं। पर कल अगर कोई चालाक लड़का तुम्हारे नीचे काम करने लगे तो 10 या 15 दिन में कोई मामला तुम्हारे गले डालकर तुम्हारा चांस छीन ले जायगा। तुम सीधे हो। अभी तुम्हें इस विभाग की रीति-नीति का पता नहीं। कल शाम नियमों की उस फाइल को घर ले जाओ और सुबह लेते आना। तुम्हें देने से कोई मना करे तो मेरे पास आना, दिला दूंगा। दूसरों पर निर्भर रहने से कितने दिन तक काम चलेगा। अपना हाथ जला बैठने से पहले यह बात समझ लेना।" इतना कहकर साहब तांगे में बैठ गये। उन्हें पहुंचाने के लिए राघप्पा भी तांगे पर बैठ गया। कृतज्ञता से किट्टी का मन भर उठा।

तांगा चला जाने के बाद जब किट्टी ने सोचा कि अब घर चलना चाहिए तभी जो बच्चा उंगलियां कुचल जाने की पीड़ा से चिल्लाया था, आकर उसकी कमीज

खींचकर बोला "मामी बुला रही है।"

किट्टी ने पूछा "कौन-सी मामी ?"

"हमारी मामी।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं भीमसेन।"

किट्टी को लगा कि इस व्यर्थ की बातचीत से कुछ फायदा नहीं, इसलिए चुपचाप भीमसेन के हाथ पड़े बकासुर के समान उस बालक के पीछे-पीछे चल दिया। बालक ने उसे घर के भीतर एक कमरे की ओर उंगली दिखाकर कहा, "वहां लेटी है" और स्वयं भाग गया। राघप्पा की पत्नी सारे मोहल्ले में मामी कही जाती थी। किट्टी को भय और संकोच दोनों ही महसूस हुए। उसे याद आया कि राघप्पा ने एक बार बताया था कि उसकी पत्नी बहुत दिनों से रक्तक्षय के रोग से बीमार है और सालभर में तीन-चार महीने बिस्तर में गुजारती है। यह याद आते ही उसे तनिक धैर्य हुआ और वह दरवाजे की ओर बढ़ा। दरवाजे के पास आते ही उसे यह बातचीत साफ सुनाई पड़ी।

"बहिन महबूब, तू मेरी छोटी बहिन है मैं तेरे से बड़ी हूं, तू यह भावना छोड़ मत देना। तू मेरे लिए भगवान के समान है।"

किट्टी सोचता हुआ दरवाजे के पास आया। उस समय रात के दस बज गये थे। उसकी छाया को देखते ही झट से महबूब उठी और एक ओर खिसक गयी। लालटेन की धीमी रोशनी में एक मध्य वयस की थकी-सी दुर्बल स्त्री झुकी हुई बैठी थी। उसके माथे पर लंबी-सी पतली बिंदी लगी थी। उसके शरीर का रंग नीबू के समान पीला था। आयु से कुछ अधिक दिखने पर भी यह ... स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी कि वह अपनी जवानी में अच्छी सुंदर रही होगी। उसके गाल थोड़ा ठुड्डी की ओर झुके थे जिससे ऐसा लगता था मानो वह वर्षों से खांसी की शिकार रही हो, लेकिन मुख कांतिवान था। उसने इसकी ओर धीरे-से घूमकर, कोई भी आश्चर्य न दिखाते हुए और इसकी ओर देखने का प्रयास भी न करते हुए "आओ किट्टण्णा आओ" कहा फिर महबूबजान से बोली, "महबूब बहिन इधर चटाई बिछा दो।"

किट्टी चटाई पर बैठ गया। महबूबजान उठकर बोली, "अच्छा बहिन अब मैं

चलती हूं। गाड़ी साढ़े दस बजे तक है।" महबूब का यह सदा नियम था कि जहां तक संभव हो वह राघप्पा के घर में सोने से बचती थी। जब और कोई चारा न होता था तब राघप्पा से वचन लेकर सोती थी।

चंपक्का के यह कहते ही "जरा दूध पीकर जाओ बहिन", महबूबजान वहीं बैठ गयी। चंपक्का की निशक्तता ने उसकी वाणी में अधिकार भर दिया था। उसकी वाणी में निशक्तता के कारण आग्रह करने की भी शक्ति न थी। लोग उसे देखकर और कोई चारा न होने के कारण उसकी इच्छा को ही आज्ञा मानकर पूरा कर देते थे।

इतने में चंपक्का ने दरवाजे के पास से गुजरती हुई रत्ना को पुकार कर कहा, "रत्ना बाहर आंगन से गैसबत्ती उठा ला।" गैस आ गया। वह दहलीज पर गैस रखकर बाहर से ही खिसक गयी।

"तुम जब इतने से बच्चे थे, तब तुम्हें देखा था। तुम्हारा हमारा मन-मुटाव हुए दस वर्ष हो गये। दर्शन भी दुर्लभ रहे। चाहे जो भी हो तुम तो बड़े हो गये।" यह कहकर चंपक्का ने महबूबजान से किट्टी का रिश्ता बताया। महबूब ने भी उत्सुकता से बीच-बीच में प्रश्न पूछ कर सब कुछ जान लिया। इन्हीं प्रश्नोत्तरों के बीच चंपक्का ने गंगव्वा के बारे में छोटे-मोटे सवाल करके सब कुछ जान लिया। बार-बार किट्टी से प्रश्न करके यह जानने का प्रयास भी किया कि गंगव्वा का अब तक उन लोगों से गुस्सा है या नहीं, यदि है तो कितना है। किट्टी के पिता जब जीवित थे तब उसके पिता पर कितना स्नेह करते थे सब बखानने लगी। अपनी बीमारी के बारे में बड़े करुण ढंग से बताया। इन स्त्रियों के सामीप्य से किट्टी का मन नरम पड़ गया था। इसी समय मौका पाकर चंपक्का ने किट्टी को एक बात सहज रूप में बतायी। "इस दर्द में मेरा जीना और मरना दोनों बराबर ही हैं। आज जो जीवित हूं वह आपके पिता के पुण्यों से। तुम्हारी मां की तरफ से तो मैं मर ही चुकी हूं। वे तो हमारा तर्पण कर चुकी हैं।" यह सुनकर महबूबजान का दिल भर आया और वह बोली "आप जैसी औरत से कोई कैसे द्वेष कर सकता है ?"

"महबूब बहिन हर चीज का समय होता है। अब यही लो, तुम कौन हो और मैं कौन। बहिनों की तरह रहती हैं। फिर भी देखो खून के संबंध में ऐसी बातें हो जाती हैं। इसी से तो लोग 'कालाय तस्मै नमः' कहते हैं। लेकिन बहिन महबूब

झगड़ने से कहीं खून का रिश्ता टूट जाता है। सौ साल भी बीत जायं तो भी खून खून ही है।"

ऐसे उदार लोगों की ओर से मां के तर्पण कर लेने की बात सुन किट्टी का तनिक भी शर्म नहीं आयी।

इतने में रत्ना दो कप दूध गरम करके ले आयी। अब भीतर आने के सिवा उसके पास कोई चारा न था। दहलीज पर संकोच से खड़ी पंद्रह वर्ष की तरुणी किट्टी को दिखायी पड़ी। मां का सौंदर्य उसमें द्विगुणित होकर दिख रहा था। उसके दूध लाकर रखने पर किट्टी ने उसके खुले सिर को ललचाई नजरों से देखा।

तीन घंटे पहले जवान हुआ किट्टी अब प्रेमी भी बन गया।

9. गंगव्वा की असावधानी का फल

पिछली बार जब गंगव्वा देसाईजी के घर आयी तो एक असावधानी कर बैठी।

गुस्से में पैसे के बारे में गंगव्वा ने जो कुछ कहा वह वसंत के कानों में पड़ गया वसंतराव को सिनेमा देखने के लिए पैसे न मिलने के कारण वह सारी शाम बार-बार खीजता रहा। इतनी बार सिनेमा जाने और वहां का स्थायी ग्राहक होने पर भी उसी एक दिन गेटकीपर ने बिना टिकट भीतर घुसने नहीं दिया। वसंतराव बहुत गिड़गिड़ाया, फिर भी वह न माना। तीन आने के लिए उसने कभी इतना दुख नहीं उठाया था। उस दिन सिनेमा जाकर खाली लौटने की व्यथा से व्यथित होकर उसने गंगव्वा की बात के रहस्य का पता लगाने का निश्चय कर लिया। बसंत ऋतु की तरह ही वसंतराव की हरकतें भी बड़ी विचित्र हुआ करती थीं। अगले दिन दोपहर को मां का भोजन ठीक समाप्त होते ही उसने पनडब्बा छिपा दिया। भोजन समाप्त करने के तुरंत बाद यदि वेणुबाई दो पान और एक मुट्ठी सुपारी न खायें तो उनका जीना हराम हो जाता। छटपटाते हुए उन्होंने सारा

घर छान मारा। देसाईजी के सोने का समय होने के कारण ज्यादा हल्ला भी न मचा सकी।

इतने में ऊपर से वसंतराव उतरकर मां के पास आया और बोला, "मां कल गंगव्वा कुछ कह रही थी न ?"

"क्या कह रही थी बेचारी। बेटा-बेटा करती घुलती जा रही है।"

"नहीं मां कुछ पैसों की बात थी न ?"

"पैसे कहां से आये रे ?"

"लेकिन उसने मुझे डांट पड़वा दी। घर के वारिस को सिनेमा देखने को तीन आने नहीं मिलते हैं, इस माई को जब भी दस-पंद्रह की जरूरत पड़े मिल जाते हैं। घर में जो कुछ होता है मुझे पता नहीं क्या ? ऐरे गैरे नत्थू खैरे मौज करें और घरवालों को ठेंगा। मैं कुछ कहता नहीं ना इसीलिए तो।"

"तुम्हें देने से कौन मना करता है वसंतण्णा। वे तो तुम्हारे भले के लिए ही कहते हैं। हफ्ते में एक बार सिनेमा देखो बेटा, रोज देखने से कैसे चलेगा ? तुम्हारी पढ़ाई का क्या होगा ... ?"

"मुझे बिना सिनेमा देखे सिरदर्द हो जाता है। सिर दर्द रहे तो पढ़ाई कैसे होगी ? अगर मैं फेल हो जाऊं तो कहोगी 'देख उस किट्टी को'। बस 'किट्टी-किट्टी' का नाम ही मेरे कानों में किटकिटाती रहोगी। उन लोगों को देखते ही मेरे तन-बदन में आग लग जाती है...। जाने दो मुझे भी नहीं चाहिए पैसे। लेकिन घर के पैसे कहां जाते हैं यह तो मुझे पता रहना चाहिए। मैं कोई छोटा बच्चा हूं। इस घर में पैदा नहीं हुआ क्या ? अगर ऐसे ही चलता रहा तो अच्युतण्णा को सब कुछ लिखकर बता दूंगा।

"अच्युत तुम्हारी तरह बेवकूफ नहीं है। चाहे जो भी हो पहले मैं पान तो खा लूं।" बात बदलने के लिए वेणुबाई बोली।

"तुम पान-सुपारी कहां से खाओगी ? मैंने पनडब्बा ही छिपा दिया है। पहले बताओ फिर दूंगा।"

वेणुबाई को अपने बेटे के इन हथकंडों पर दया आयी। वह पान-सुपारी तक छोड़ सकती थी पर अपने इस लड़के की हरकतें, उसकी बातें, उसके विचार यह सब देखकर वह चिंतित हुई। एक क्षण-भर सोचने के बाद उसे लगा कि जिस बात

को उसने अब तक छिपाकर रखा था उसे बता देने में कोई हानि नहीं और छिपा रखने में लाभ भी नहीं। उसने इस आशा से मुंह खोला कि कम-से-कम वसंत के मन में गंगव्वा के प्रति थोड़ा आदर उत्पन्न हो।

"वसंत बेटा, तुम अब समझदार हो गये हो। तुम्हारी पान-सुपारी तुम्हें मुबारिक, लेकिन तुम्हारा पैसे का अहंकार मिट जाय इसलिए बताती हूं, सुनो गंगव्वा ने कहा था कि किसी से न कहना, पर तुममें और मुझमें कोई अंतर नहीं। अब तो दस साल हो गये कहने में कोई बुराई भी नहीं। खासकर पैसे पर अकड़ना नहीं चाहिए। यह आज है कल नहीं। सबके साथ बनाये रखो...।"

पहले बताओ बात क्या है। वसंत ने अपने कौतूहल को रोक न पाकर कहा।

"गंगव्वा बड़े घराने की है, बेटा। उसका पति मोतियों का व्यापार करता था, गुड़ का भी व्यापार करता था। कितना बताऊं, बेचारा किसी मुसीबत में फंस गया। सब नीलाम हो गया, जहां दिया था वहां गया, जहां लिया था वहां गया, जहां रखा था वहां भी गया। छह माह में ही पेट-ही-पेट के दर्द में खुद खतम हो गया। गंगव्वा हिम्मत वाली औरत है। व्यापार के सिलसिले में खेत-हाट सब बिक चुके थे। कुर्की आने पर जब उसका घरवाला घबरा गया तब गंगव्वा ने घर में जो थोड़ा-बहुत सोना था इसी किट्टी के हाथों पिछले दरवाजे से घूरे में फिकवा दिया, पता नहीं कैसे वह ले गया और सबकी आंख से वह कैसे बचा रहा। जो भी हो वह थोड़ा बच गया। सब कुछ चले जाने के बाद और पति के भी मर जाने के बाद उसने वह निकाला और रातोंरात हमारे पास लायी और बिकवा दिया। उससे लगभग सात आठ सौ रुपये तुम्हारे पिता के पास रख दिये। सूद-दर-सूद सब मिलकर अब लगभग हजार रुपये हो गये हैं। जब चाहिये तब आकर अपने पैसों में से ले जाती है। हम सब कुछ नहीं देते हैं। हम तो देते हैं उसे केवल दो स्नेहभरी बातें। सिर्फ इतने के लिए वह हमारी कितनी एहसानमंद है। उसका यह गुण तो देखो।"

"तो किट्टी भी हर मास रुपये लाकर देता है क्या?"

"पिछली बार जब हम काशी यात्रा को गये थे तो वह मेरे साथ गयी। उस समय हमने खर्च किया था यह नाम को ही है। अब किट्टी के हाथ से कुछ रुपये हर महीने दिलाती रहती है। यह उसकी योजना है कि चार पैसे बच जायें। गरीबों

की बातें ऐसी ही होती हैं। पेट भरने को खाना मिल जाता है तो ज्यादा जबान नहीं चलानी चाहिए।"

अंतिम वाक्य से वसंत मर्माहत हुआ। उसने अपने कमरे से पान सुपारी का डिब्बा लाकर मां के सामने रख दिया।

मां बोली, "नहीं चाहिए, जा तू ही अपने पान खा ले।"

मां की दी इस शिक्षा के पयपान को विष बनाने में उसे दो दिन लग गये।

उसी रात को वेणुबाई ने अपने बेटे का कारनामा और अपना जवाब पति को सुनाये। यह सब सुनकर देसाईजी अपने बेटे के भविष्य के बारे में चिंतित हो गये। यह लड़का जैसे बढ़ रहा, ऐसे ही रहा तो न जाने कहां पहुंचेगा? बड़े बेटे अच्युत के बारे में उन्हें कोई चिंता न थी। उसे देख वे फूले न समाते थे। उन्हें इस बात की चिंता हुई कि कहीं वसंतराव अपनी शिक्षा से छोटे लड़के पुरुषोत्तम को भी न बिगाड़ दे।

वैसे देखा जाय तो देसाईजी ने भी अपने समय में अपने पिता के साथ काफी झगड़ा किया था, लेकिन वसंत की तरह उनमें ओछापन न था, उन्होंने अपने पिता से सिनेमा की खातिर तीन आने के पीछे लड़ाई नहीं मोल ली बल्कि संपत्ति को बनाये रखने की खातिर सभी बड़े घरों के बच्चे छोटी आयु में ही धन-संपत्ति के लिए जागरूक होते हैं। वे ही जब बड़े हो जाते हैं तो अपने बच्चों में संपत्ति का मोह देखकर दुखी होते हैं। यह संपत्ति के साथ चिपका हुआ शाप है।

देसाईजी ने इस स्थिति का दूसरे ढंग से उपयोग करने का निश्चय किया। बहुत दिनों से उनके कंधों पर गंगव्वा का जो जुआ चला आ रहा था उसे चाहने पर भी उतार न पा रहे थे। अब उसे उतार फेंकने का अच्छा बहाना हाथ लगा था। अगले दिन ही उन्होंने गंगव्वा को बुलवा भेजा। उसे सब बातें साफ-साफ बता दीं।

"तुमने जो पैसे मेरे पास रखे हैं उनका न कोई कागज है न पत्र। हमारी भी अब उमर हो चली है। हमारे बड़ों के समय से चला आया विश्वास भी अब नहीं है और हमारे समय का विश्वास हमारे बच्चों के समय में नहीं होगा, यही दुनिया का दस्तूर है। तुम्हारा बेटा भी अब अच्छी नौकरी पर है। कल को मेरे पास पैसा

बना ही रहेगा, इस बात का कोई भरोसा नहीं है। मेरे बच्चे भी जवान हो रहे हैं... चलो यह बात जाने दो। पर सारी बात का सार यह है कि पैसा नश्वर है। तुम्हारा ऋणी होकर मैं मरना नहीं चाहता। हाथ में पैसे रहते-रहते तुम्हारा पैसा तुम्हें मिल जाय तो मेरी छाती से एक भार उतर जायगा।" इस प्रकार एक लंबा-चौड़ा भाषण देने के बाद देसाईजी ने तब तक का हिसाब पढ़कर सुनाया।

गंगव्वा के सामने उनकी क्या चल सकती थी ? उसके आंसुओं और आकाश के सामने उनका वक्तव्य व्यर्थ सिद्ध हुआ। आखिर में देसाईजी ने गिड़गिड़ाकर कहा कि कम से कम इस पैसे की बात किट्टी तक पहुंच जानी चाहिए। गंगव्वा इसके लिए भी तैयार नहीं हुई।

"पहले ही उसने अपना खर्चा बढ़ा रखा है। यह सोचकर कि पीछे कुछ भी नहीं है इसलिए चार पैसे बचाये हैं। गोपण्णा यह हजार ले भी लिए तो चार दिन नहीं टिकेंगे। किसी काम भी नहीं आयेंगे ? लोग कहते हैं बंद मुट्ठी को और सुगंध को बंद ही रखने में सार है। उसके कान तक यह बात पहुंचनी नहीं चाहिए" यह कहकर उसने देसाईजी को निरुत्तर कर दिया।

अंत में घर लौटते समय वह जोर देकर बोली, "अगर कोई पूछे तो कह देना मेरे पास किसी के पैसे नहीं हैं। इतनी मेरी बात रख लो, जो होगा से देख लूंगी।"

देसाईजी ने लंबी सांस लेते हुए उस दायित्व को फिर स्वीकार कर लिया।

अगले दिन वसंतराव तहसीलदार की कचहरी की कैंटीन में चाय पकौड़े खत्म करके किट्टी के दफ्तर से निकलने का रास्ता देखता, खिड़की से झांकता हुआ बैठा था। तहसीलदार साहब के दफ्तर से निकलते ही किट्टी और उसके चार साथी क्लर्क कंधों पर कोट डाले हंसते खेलते बाहर कैंटीन की ओर आये। किट्टी ने भी सब के साथ चाय-नाश्ता लिया। पिछले हिस्से में बैठा वसंतराव किट्टी को दिखायी नहीं दिया। नाश्ता खत्म करने के बाद जब किट्टी अकेला घर की ओर चला तो वसंत रास्ते के बीच में पड़कर उसके सामने आया।

"क्यों साहब, अब पुराने परिचितों से क्यों मिलने लगे ?"

वसंत और किट्टी की भेंट एक मास से नहीं हुई थी। इसके साथ उसके अक्खड़-पन से किट्टी परिचित था। किट्टी उसके साथ सदा प्यार से बोलता था।

"आप तो देसाई बहादुर हैं। आप गरीबों को भूल सकते हैं, पर हम गरीब कैसे...?"

"ओए भूठे ! चाय की दुकान में मैं पीछे बैठा था, तुमने बात तक नहीं की। पीछे देखने से बात करनी पड़ेगी इसलिए कोहनी टिकाकर आगे मुंह किये बैठे रहे। अच्छा, मैंने सोचा यहां दफ्तर में क्यों इसे चोटी से पकड़ूं बाहर ही सही। यह तो साहब बन गया है...। अब तो किट्टी तुम साहबी को छोड़ दो। मेरे पिता तुम्हारी तारीफ करते अघाते नहीं हैं। किट्टी होटल में चाय नहीं पीता, नाश्ता नहीं करता, सिनेमा नहीं जाता। भृगुऋषि के समान रहता है लेकिन चोर बिल्ली की तरह तुम सब कुछ करते हो।"

"ऐ वसंत ! तुम्हारी तरह घर में आराम से खाने को मिलता तो इन सबकी जरूरत न थी। पेट के लिए यह सब कुछ करना पड़ता है। न चाहने पर भी कुछ आदतें डालनी पड़ती हैं।"

"तुम्हें किस बात की कमी है चोर भीतर ही भीतर दीमक की तरह खूब जोड़ रहे हो। तुम्हारी मां ने काफी जोड़ रखा है। आज तुम कमा रहे हो कल साहब भी बन जाओगे। अपने इस पुराने सड़े कोट को फेंक दो। यह शुजाऊद्दौला की मूंछें साफ करा दो। साहब बनने पर भी गंवारपन अभी बाकी है।"

"वह कहां जायेगा... वह तो बड़ों की देन है।" किट्टी ने अपमान में मान दर्शाने की चेष्टा की।

"अरे, ऐसी बात मत कहो। तुम्हारा बाप जरा से में डूबने वाला नहीं था। तुमने उसको भी मात कर दिया। तुमने आठ वर्ष की उम्र में ही सोना चुराया था।"

"ओए ! क्या कहते हो ?"

"जो कहना था सो कह दिया।"

वसंत से अलग होने के बाद किट्टी के मन में यह उत्कट इच्छा हुई कि जाते ही मां से पूछूं। लेकिन घर पास आते ही उसने अपना विचार बदल दिया। किसी मौके पर मां से पूछने का निश्चय करके उसके बारे में एक शब्द नहीं कहा। परंतु उस दिन के अनुभव ने किट्टी के जीवन में कई छोटे-मोटे परिवर्तन उत्पन्न किये। पीठ पीछे एक हजार रुपये होने की बात जानकर उसे कुछ तसल्ली मिली। तह-

सौलदार के उपदेश के अनुसार कायदे-कानून की पुस्तकें उलट-पुलट कर देखने लगा। उसे उनमें कई बातें समझ में आने लगीं जो उसे इससे पहले समझ में नहीं आ रही थीं। उसके चाल-चलन में कुछ गंभीरता आने लगी। कार्यालय में आत्म-विश्वास से काम करने लगा। अब सबको प्रसन्न करने का प्रयास नहीं कर रहा था। आत्मसम्मान भी बढ़ा। अब सभी की बात को समझने का विचार छोड़ दिया। खर्च भी अच्छा करने लगा। शरीर का वजन बढ़ा। काम में यांत्रिक सुग-मता आयी।

10. घर मिटाने वाला जीवन

बिदगोळ राघप्पा सदा से 'राघोबा भरारी' उपनाम से प्रसिद्ध था। उस उपनाम पर उसे अभिमान भी था। उसकी कीर्ति कई रूपों में फैली हुई थी। जब वह ग्यारह-बारह वर्ष का था और गांधी जी भी छोटे थे तभी वह सत्याग्रह का मंत्र जानता था। अपने चार दोस्तों को लेकर एक बेकरी के सामने खड़े होकर एक घंटे तक 'ब्रैड चाहिए' के नारे लगाता रहा। बेकरीवाले ने उस नारे से तंग आकर एक डबलरोटी उन्हें देकर नमस्कार करके दुबारा वहां न आने की प्रार्थना की थी। बारहवें वर्ष में वह अपने पिता की जेब से पांच रुपये पार करके अपने जीवन की एक और सीढ़ी चढ़ गया। चालीस साल का होते तक गांव के सभी कामों और त्यौहारों में वह आगे रहता था। कभी आउट न होने वाले बेट्समैन के पेंशन ले लेने की भांति इसने भी अपनी गद्दी इन दस बारह वर्षों में दूसरों को सौंप दी थी। फिर भी अगले चार सालों तक नौजवान उसकी सलाह प्रत्येक कार्य में लेते ही रहे।

राघप्पा का भाग्य अच्छा था। उसे किसी बात की कमी नहीं थी। उसके बिदगोळ के आठ वर्ष के जीवन में वह अपने गांव का अगुवा था। किसान लोग उससे डर कर उससे कोई चंदा नहीं मांगते थे। उसके बारे में यह बात प्रसिद्ध थी

कि चंदा मांगने पर भाई-भाई में झगड़ा करा देना उसके बायें हाथ का खेल है। अगर उसने किसानी की तो बड़े-बड़े किसानों को भी लजा देने वाले बैल बांधे। उनसे कमाया भी खूब, कुछ दिन मधुमक्खियां पालीं और कुछ दिन मुर्गियां भी पाल कर देखा। इसके कर्ज मांगने पर 'न' कहने की हिम्मत गांव भर में किसी में न थी। घास के पूले में आग यदि आगबाग लगे तो आधे घंटे पहले से ही राघप्पा को पता रहता था। गांव में कोई झगड़ा खड़ा करके लोगों को आपस में लड़वा कर कचहरी तक पहुंचाने यदि वह निकलता तो पांच-छह रुपये बनाये बिना घर न लौटता। परंतु इन सब कार्यों में भाग लेने पर भी वह गांव के बाहर के हनुमान के समान निर्लिप्त रहता था।

जब से वह धारवाड़ आ गया तब से बिदगोळ सुख चैन से रहने लगा। धारवाड़ में राघप्पा ने एक नया धंधा शुरू कर दिया। वह था बड़े-बड़े लोगों के साथ दोस्ती करना। घोड़ा पाला तो बढ़िया, किसानी करे तो उत्तम किसानी और पशु पाले तो प्रदर्शनी में रखने लायक। इन सभी बातों में यशस्वी राघप्पा ने नये धंधे में भी एक ही वर्ष में अपूर्व सफलता पायी।

उसका और महबूबजान का संबंध हुए बारह चौदह वर्ष बीत गये थे। शुरू-शुरू की जानपहचान बहुत शीघ्र ही प्रेम में बदल गयी। आरंभ के तीन-चार वर्ष यह बात गुप्त रही। बाद में बात फैल गयी। बिदुगोळ में एक बार घर से कुछ सोना गायब हो गया। राघप्पा ने चोरी हो गयी कहकर खोजना शुरू किया। गांव में उसी गली का एक बूढ़ा अपने बेटों की बात न मान कर सीधा चंपक्का के पास आकर बोला, "बेटी, तुम्हारे सुख के लिए मैं एक बात कहता हूं। यजमान कचहरी के धंधे से बार-बार हुब्बली आते जाते रहते हैं। वहां किसी गलत रास्ते पर जा सकते हैं। सोना और कहीं नहीं गया। गायब करने वाले भी वही हैं और खोजने वाले भी वही हैं। तुम ज़रा होशयारी से गृहस्थी चलाओ।"

अगले तीन वर्ष तक चंपक्का ने सावधानी नहीं बरती। घर को असाध्य कलह से भर दिया। एक बार बच्चों को लेकर चार महीने भाई के घर जाकर रह आयी। भाई ने बाद में समझा-बुझाकर चंपा को घर वापस भिजवा दिया। राघप्पा को समझाने का साहस बिदगोळ में किसी में न था। एक बार सारे आभूषणों को एक ट्रंक में बंद करके यह निश्चय करके चाहे जान जाय पर उन्हें चाबी

नहीं दूंगी। वह ट्रंक के साथ पूजाघर में जा बैठी। पति का एक थप्पड़ पड़ते ही उसके सारे निश्चय हवा में उड़ गये। उसने उसके पांव पकड़े, अनशन किया, प्यारी बेटी को पांव में डाल दिया। उन सब बातों के लिए राघप्पा का एक ही जवाब था : मैं कमाता हूं, मैं खर्च करता हूं जिस दिन तुम लोगों के लिए खाने-पहनने को कम होगा उस दिन बिदगोळ की चौपाल के सामने खड़े होकर अपनी नाक-कान कटवा लूंगा। मर्दों के कामों में तुम क्यों दखल देती हो। यही बात अब तक राघप्पा निभाता चला आ रहा था। उसके फिजूल खर्च करने पर भी वह तबाह नहीं हुआ। "मैं जहां कहीं चार कदम रखूंगा चार रुपये जेब में डालूंगा" उसका कथन अक्षरशः सही सिद्ध हुआ। उसने खाने के लिए कभी कमी नहीं रखी। कभी फटा पहना नहीं, कभी घरवालों को फटा पहनने नहीं दिया। कभी यदि उसने कहीं कुछ पैसा खोया तो चाहे ताशखेल, चाहे कोर्ट-कचहरी में मध्यस्तता करके, चाहे धोखा दे, वह पैसा कमा कर ही लाया।

इतना सब होने पर भी चंपक्का इस नतीजे पर पहुंची कि उसके पति के समान संसार में कोई और नहीं। इसलिए वह चुप हो गयी। एक बार पति की चार लोगों से जो शिकायत की थी उससे उसी की मर्यादा को धक्का लगा। इस-लिए वह जब एक बार घर में घुसी तो एक वर्ष उसने बाहर कदम न रखा।

एक दो वर्षों में उसके भाई की बदली हुब्बली में हो गयी। तब वह स्वयं जिस पति से हारी थी उसी को जीतने वाली उस सुंदरी को अपनी आंखों से देखने की इच्छा बलवती हो उठी। वह भाई के घर हुब्बली आयी और महबूबजान का पता लगाया। एक दिन अपनी बेटी को लेकर महबूबजान के घर पहुंची। वहां अपनी बेटी को उसके पैरों पर डालकर अपना आंचल फैला कर, रोकर, अपना दुखड़ा कहकर लौट आयी।

महबूब को यह बात ध्यान में ही न आयी थी कि राघप्पा की पत्नी और बच्चे भी हैं। इस नयी बात के पता चलने से उसका मन पिघल गया।

अगले सप्ताह जब राघप्पा आया तो उसे 'अपने घर जाइये', कह कर लौटा दिया। इसके बाद डेढ़ वर्ष तक राघप्पा को महबूबजान के दर्शन न हुए।

इतने दिनों में चंपक्का के मन में नयी चिंताएं उत्पन्न होने लगी। उसे यह डर लगा कि राघप्पा कहीं इधर-उधर गलत जगहों पर भटक कर कहीं अपना

स्वास्थ्य न गंवा बैठे। अंत में एक दिन चंपक्का ने स्वयं महबूबजान के घर जाकर उसे राघप्पा का भार सौंप दिया। उस दिन से महबूबजान इस घर में कुलदेवी के समान मान्य हो गयी। तब से 'युगादि' तथा दीवाली पर चंपक्का महबूब को निमंत्रित करके उसे ब्लाउज आदि का कपड़ा देकर भेजती। महबूबजान भी चंपक्का को अमरूद तथा आमों की टोकरियां मौसम के अनुसार भेजा करती। इससे राघप्पा का जीवन पहले से सुखी हुआ। इससे पहले चंपक्का के यहां एक और बच्चा हुआ था। उसी प्रसव के समय से चपंक्का को हृदय-शूल और रक्तक्षय रोग शुरू हुए और वह साल भर में तीन-चार महीने बिस्तर पर काटने लगी। डाक्टरों को सलाह थी कि उसे पुनः गर्भ धारण नहीं करना चाहिए।

चंपक्का के बीमारी के आरंभिक दिनों में महबूबजान उसे हुब्बली के अस्पताल में दिन में दो बार देखने आती रही। बच्चों को पढ़ाई के बहाने जब राघप्पा धारवाड़ में गृहस्थी जमाई तो महबूबजान का घर में आना-जाना और भी बढ़ गया। वह भी उसी घर की सी हो गयी। बच्चों को तो उससे आदरभाव बहुत था क्योंकि वह आते समय पेड़े, आटिगे[1] और फल आदि लेकर आती।

अब रत्ना चौदह वर्ष की और शांता बारह वर्ष की हो गयी थी। वे धारवाड़ में चालचलन के कारण अपने मोहल्ले भर में लोकप्रिय थीं। रत्ना ज्यों-ज्यों विवाह लायक होने लगी त्यों-त्यों चंपक्का की चिंता बढ़ने लगी। गंगव्वा और किट्टी के अस्तित्व को वे जानते थे परंतु उन्होंने उनके बारे में कभी बातचीत नहीं की थी। परंतु किट्टी जब बड़ा होकर तहसीलदार के दफ्तर में नौकरी करने लगा तब राघप्पा ने उसका ज़िक्र अपनी पत्नी से किया। उसके मन में किट्टी को अपनी लड़की देने का विशेष आग्रह नहीं था, परंतु चंपक्का तो उसे अपनी बेटी देकर पहले के संबंध को पुनः स्थापित करना चाहती थी। किट्टी के पिता स्वामीराय ने उसके विवाह में जो उपकार किया था उस बात को वह अब तक भी भूली नहीं थी। अपनी बेटी देकर उस उपकार को चुकाने की उसकी आंतरिक इच्छा थी। इसी के आग्रह के कारण राघप्पा दफ्तर में पहले किट्टी से मिला और बाद में उस दिन गंगव्वा के यहां जाकर उसने विवाह का प्रस्ताव उठाया। गंगव्वा के इनकार

[1]नमकीन खाद्य।

से इस विषय में राघप्पा के मन के खिलाड़ी को पुन: चौपड़ की चाल चलने का आह्वान मिला। 'तेरी आंखों के सामने ही तेरे बेटे को अंटी में लगा लूंगा' यह मन में सोच कर उसी के अनुसार उसने अपनी योजना बनानी शुरू की थी। इसके अतिरिक्त एक बात और भी थी। राघप्पा को अपने विवाह के बारे में दुखी होने का कोई कारण न था। फिर भी स्वामीराय की डांट के सम्मुख झुकने की बात के कारण कुटुंब-द्वेष और ग्लानि अब भी उसके मन में बनी हुई थी। उसने सोचा यदि वह अपनी बेटी किट्टी को ब्याह देगा तो उस बात का थोड़ा-बहुत बदला चुक जायेगा।

भाग्य से रत्ना बड़ी सुंदर थी। राघप्पा को इस बात का धैर्य था कि वही आधा काम बना देगा। इसीलिए वह आगे की योजनाएं बनाने में लग गया था। यदि विवाह का निश्चय हो जाता है तो हाथ में खर्च के लिए दो-तीन हजार रुपये तो चाहिए।

धारवाड़ में बड़े-बड़े लोगों की मित्रता के कारण विवाह में आने वाले भी वे ही लोग तो थे, सो शादी भी धूमधाम से होनी चाहिए। राघप्पा को घर के खर्च की कोई चिंता न थी परंतु इकट्ठे पैसे की आवश्यकता होने पर जमीन बेचने के सिवा कोई चारा न था।

जब राघप्पा इस चिंता में डूबा था तब चंपक्का स्त्री सुलभ दुर्बलता के कारण किसी और ही विचार में खोयी थी। महबूबजान मेरी बहिन है, मेरी गृहदेवी है। यह बात ठीक भी है। अब तक उसे इस घर से आठ दस हजार रुपये प्राप्त हो चुके हैं। क्या रत्ना उसकी बेटी नहीं है ? बेटी के लिए उसे स्वयं दो-एक हजार रुपये देने नहीं चाहिए ? इस विचार से चंपक्का महबूबजान को स्नेहपूर्वक जता दिया करती।

यह बात एक बार अपने को न रोक पाने के कारण वह राघप्पा से कह बैठी। यह सुनते ही राघप्पा गुस्से से गरज पड़ा "फिर यह बात मेरे सामने मत उठाना। चाहे तो एक खेत बेच दूंगा। नहीं तो रत्ना एक बेटे की तरह घर में रहेगी।" तब से चंपक्का को उसके सामने कुछ भी कहने का साहस न हुआ। इसी बात का फायदा उठाकर चंपक्का महबूब से फिर एक बार बोली, "देखो बहिन, तुम्हारे यजमान रत्ना की शादी के लिए मेगूर के खेत बेचने की बात सोच रहे हैं।"

चतुरा महबूब इन बातों का अर्थ न समझती हो, ऐसा नहीं था, लेकिन ऐसी बातों में वह चुप रहती थी। पहली बात यह थी कि अभी विवाह का कुछ पक्का न था, दूसरे उसने अपने भांजे के लिए किरानी की दुकान खोलकर दी थी और उसमें उसने अपना सारा पैसा लगा दिया था।

11. देसाईजी की चिंताएं

देसाईजी चिंतित होकर लक्ष्मी हाई स्कूल पहुंचे। वे जब प्रधानाध्यापक के कमरे की ओर जा रहे थे तो बातचीत से गूंजती हुई सभी कक्षाएं इनकी ओर चुप होकर कौतुहल से घूर रही थीं। एक कक्षा में एक, व्यवहार-शून्य शिक्षक जोर से चिल्लाया—"डोंट लुक हियर एंड देयर, बि अटेंटिव!" (इधर उधर मत देखो। सावधान रहो) देसाईजी की चिंता और बढ़ गयी। चाहे जो हो, भले ही झगड़ा हो, चोरी हो, खून हो, पर वह एक न हो। भगवान से यही मनाते हुए देसाईजी ने प्रधानाध्यापक के कमरे में प्रवेश किया। प्रधानाध्यापक ने सदा की भांति हंसकर और ऊंची आवाज में उनका स्वागत नहीं किया। 'आइये' इतना ही कहकर कुर्सी की ओर ऊंगली से इशारा किया।

वहां वही हुआ था। अब तक वसंतराव के बारे में काफी शिकायतें थीं। कक्षा में शोर मचाना, शिक्षकों को जवाब देना जब चाहे स्कूल आना, यह सब बातें वसंतराव में पहली कक्षा से ही थी। परंतु देसाईजी स्कूल के बनने के समय से दान देने वालों में थे और प्रबंध-समिति के सदस्य थे, इस कारण वसंत के बारे में शिकायत करने की बात शिक्षक लोग सोचते ही न थे। मैट्रिक की परीक्षा में पहली बार फेल होने पर वसंतराव ऐसे व्यवहार करने लगा मानो उसके बाप के बाद वही स्कूल का आजीवन सदस्य बन जायेगा। कक्षा की लड़कियों के घर जाने के समय उनके पीछे-पीछे अपने चार लफंगे दोस्तों के साथ जाकर उनको छेड़ना, उनके घर पहुंचने तक पीछा करना, यह सब बातें चपरासी से लेकर

प्रधानाध्यापक तक सभी को पता थी । अब तक वसंतराव इससे आगे नहीं बढ़ा था । लड़कियां भी इस बात की अभ्यस्त हो जाने के कारण इसकी ओर ध्यान न देकर अपने-अपने घर चली जातीं । अगले वर्ष वसंतराव तीसरी बार मैट्रिक की परीक्षा में बैठा । उस वर्ष 'त्रेधा निदधे पदं' वाला त्रिविक्रम रूप वसंतराव ने धारण किया और तृतीय मार्ग को अपनाया। इंदुमती के स्वयंवर में आये राजाओं को लज्जित करने वाले तरीके उसने अपनाये। उसने कन्याओं के कोमल गालों को चिकनी सुपारी का निशाना बनाया। कभी-कभी चंपा के फूल की पंखड़ियों पर अपना नाम लिखकर या किसी लड़की का नाम लिख-लिखकर प्रतिदिन अलग-अलग लड़कियों के बालों में खोंसकर अपने प्रेम का निष्पक्ष भाव प्रकट करता । कक्षा में ज्यादा फैशन करने वाली लंबे बालों वाली मर्दाना ढंग की लड़की की ओर वसंतराव का तनिक भी झुकाव न था। 'किसी भले आदमी ने उसे कभी बताया था कि सिर पर नमक डाल देने से बाल उड़ जाते हैं । उसका प्रत्यक्ष प्रयोग करने के लिए उसने एक दिन स्कूल की दीवार पर खड़े होकर उस लड़की के सिर पर आध सेर नमक उंडेल दिया। यह करतूत देखकर प्रधानाध्यापक ने उसे बुलाकर खूब डांटा था । लेकिन वह प्रधानाध्यापक को भी चक्कर देने की कला में पारंगत था । उनसे बुरी तरह डांट खाकर एक गंवार की तरह गिड़गिड़ाते हुए इस समय 'एक बार गलती हुई महाराज, मुझे अपना बेटा समझ कर माफ कर दीजिए' कहकर हाथ जोड़ दिये। ऐसे लोगों को कैसे समझाया जाय ? प्रधानाध्यापक के सामने यह सबसे बड़ी समस्या थी। पाठशाला के विद्यार्थियों में तो वसंतराव की कहानियां पुराणों की पुण्यकथाओं के समान फैली हुई थी और वे रात-दिन उसके यश में वृद्धि किया करते थे। वह किसी भी विद्यार्थी का बुरा करने वाला न था और किसी का मन दुखाने वाला नहीं, यह बात भी प्रसिद्ध थी ।

उसी वर्ष के दूसरे सत्र में पना से बदल कर आये हुए सब-जज की लड़की ने पाठशाला में दाखिला लिया । इसके आने के बाद अब स्त्री जाति में समभाव से विचरण करने वाला अनासक्त योगेश्वर कृष्ण की उपाधि पाने वाला वसंत एकदम योग भ्रष्ट होकर उसका पक्षपाती बन गया । इस बिल्ली की आंखों वाली लड़की की ओर वसंत बकरे की आंखों से निहारने लगा। अब तक खेल के रूप में

बातें करने वाले वसंत ने अपने मित्र अब्दुल अजीज के कमरे में जाकर अपना दिल खोल दिया। उससे गजलें सीखकर स्वयं हाय! हाय! कहकर लंबी-लंबी सांसे लेने लगा। अंत में उसकी सहायता से यह प्रेमपत्र लिखकर उसने कंपास के डिब्बे में छिपा दिया।

परमप्यारी लैला (कुमारी खोट)

सब ठीक है। मैं दिलोजान से तुम्हें प्यार करता हूं। तुम भी मुझसे प्यार करो। मैं और तुम सिनेमा चलेंगे, बाक्स में बैठेंगे। मैं मोटर स्टैंड पर तीन बजे तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा। सिनेमा साढ़े तीन बजे शुरू होता है। यदि तुम नहीं आओगी तो मेरा जीवन बरबाद हो जायेगा। अब कुछ ज्यादा लिख नहीं सकता। शेष मिलने पर। सब ठीक है।

तुम्हारा परमप्यारा मजनू

पो. धारवर — वसंतराव गोपाल गौडा देसाई

जि. धारवर — (बहादुर)

लैला ने इस पत्र को अपनी मां को और मां ने अपने पति को और पति ने एक परिचयात्मक पत्र के साथ प्रधानाध्यापक को भेज दिया। इस प्रकार वसंतराव के प्रेमपत्र ने तीन दिन तक यात्रा की।

पाठक इसे 'यह क्या बकवास प्रेमपत्र' न कहें क्योंकि यह घटना कम से कम तीस साल पहले घटी थी उस समय के प्रेमपत्र आज के प्रेमपत्रों जैसे सस्ते न थे।

प्रधानाध्यापक के सम्मुख बड़ी नाजुक समस्या थी। उस लड़की के पिता सबजज ने एक कानूनी ढंग का सख्त नोट उस पत्र के साथ भेजा था।

प्रधानाध्यापक महोदय,

मैं वह पत्र संलग्न कर रहा हूं जो मुझे अपनी लड़की के कंपास बाक्स में मिला। मैं यह जानना चाहता हूं कि इस गुंडे के विरुद्ध आप क्या कार्यवाही करेंगे। कृपया पत्रवाहक के द्वारा दोनों पत्रों की पावती भेजें। आपका वगैरह... वगैरह...

चिट्ठी को लाने वाला सिपाही पत्र पाने की पावती लेकर लौटा।

एक तरफ से प्रधानाध्यापक को खुशी भी हुई। इस बार सभी शिकायतें लिखित रूप में मिल गयी थीं। उसने निश्चय किया कि यह पत्र देसाईजी के

सम्मुख रखकर उन्हीं से पूछेगा कि क्या किया जाये। सब उन्हीं के ऊपर डाल देगा।

पत्र देखकर देसाईजी के पसीने छूट गये। उनको पसीने-पसीने देखकर प्रधानाध्यापक को भी पसीना आ गया। थोड़ी देर तक मौन छा गया। इतनी देर में कुछ लड़के मास्टरों से लघुशंका की छुट्टी मांग कर बाहर आकर प्रधानाध्यापक के कमरे में ताक-झांक करने लगे। देसाईजी पांच मिनट में निश्चय पर पहुंच गये।

"मास्टर साहब आप यह बात भूल जाइये कि मैं स्कूल का डोनर हूं परंतु लड़के का पिता होने के नाते मेरी एक विनती है। यदि वह भी आपको ठीक न जंचे तो आप इंकार कर सकते हैं। कोई चिंता की बात नहीं।"

मास्टर जी को चिंता हुई कि पता नहीं देसाईजी क्या कह बैठें। वे थोड़ा खीजकर बोले "कहिए।"

"मैं अपने बेटे का नाम काट देने के लिए अर्जी दूंगा। आप उसका नाम क़ाट दीजिए। तब मैं उसे ताकीद कर दूंगा कि वह पाठशाला के आसपास भी कदम न रखे। इतने पर भी यदि वह बाज न आये तो दूसरी बात, आप चाहें तो उसे चपरासी से निकलवा सकते हैं। एक के कारण सारे स्कूल की बदनामी नहीं होनी चाहिए। स्कूल भी एक ढंग से मेरा बच्चा ही है।" देसाईजी अपनी भीगी आंखों को रूमाल से पोंछकर आगे बढे। "मेरी इतनी प्रार्थना है कि निष्कासित कर दिया यह नोटिस वोर्ड नहीं लगना चाहिए। रिकार्ड में निष्कासित शब्द भी न लिखियेगा। चाहे तो उस जज को लिख दीजियेगा की हमने निष्कासित कर दिया। आप चाहें तो मैं क्षमा के लिए एक प्रार्थना-पत्र लिखकर दूंगा परंतु स्कूल के रिकार्ड में यह शब्द न लाइयेगा। यह मेरी विनती है। आप चाहें तो इसे पूरा कर सकते हैं।"

"प्रोग्रेस बुक नहीं भेजी, फीस ज्यादा ली, खेलों की फीस लेते हैं पर खेलने को कुछ नहीं देते।" साधारण अभिभावकों की ऐसी बातें सुबह से शाम तक प्रधानाध्यापक सुना करते थे। अब ऐसी बातें सुनकर बुद्धिभ्रष्ट बेचारे मास्टर को देसाई साहब की बात सुनकर कानों में अमृत पड़ने के समान महसूस हुआ। कृतज्ञता से उनका मुंह खुला का खुला रह गया। देसाईजी से उन्हें इन सब बातों की आशा न थी। देसाईजी की बातों से लगा कि सब तरफ न्याय हो जायेगा। जज

साहब से थोड़ा भूठ बोलना पड़ेगा परंतु केवल रचना के द्वारा इससे भी कुछ हद तक बचा जा सकता है। इससे अधिक स्कूल के रिकार्ड के बारे में देसाई की श्रद्धा को देखकर मास्टर के थके दिमाग को शांति मिली।

प्रधानाध्यापक साहब ने बसंतराव को बुला भेजा। वह अभी तक अपनी कक्षा में नहीं पहुंचा था।

उस दिन सजधज कर वसंतराव ने अपनी सारी दोपहर अपने दोस्त अब्दुल अजीज के कमरे में बितायी। उसके साथ होटल में काफी सलाह-मशवरा किया। दो बजे जाकर मोटर स्टैंड पर खड़ा हो गया। दो घंटे खड़े रहने पर भी कोई न आया। मोटर स्टैंड और सिनेमा थियेटर के, इसने कोई दस चक्कर लगाये। इसके बाद उसे निश्चय हो गया कि उसकी प्रेमिका ने उसे पसंद नहीं किया। स्कूल छूटने से पहले उससे मिलकर उसे अपने दिल की बात बता देनी चाहिये, यह उसके बरबाद दिल ने सलाह दी। रास्ता लंबा था अतः उसे संदेह था कि वह समय पर पहुंच भी पायेगा या नहीं। उसने तुरंत एक तांगा किया। तांगा छनछनाता हुआ स्कूल के आंगन तक तेजी से पहुंच गया। यह किसका तुरंग है? यह देखने को सारा स्कूल उमड़ आया। प्रधानाध्यापक भी कि कहीं कोई इंस्पेक्टर तो नहीं आन पहुंचे यह सोचकर अपने कमरे से बाहर निकल आये। उनके पीछे-पीछे दो चपरासी दौड़े। इंस्पेक्टर के डर से चारदीवारी के भीतर के पेड़ों की चिड़ियां भी स्तब्ध हो गयी थीं।

इस अवसर पर वसंतराव बड़ी शान से अपनी धोती सम्भालता हुआ तांगे से उतरा। पान से उसका मुंह लाल था उसके गर्म कोट में से आती हुई इत्र की सुगंध से बगीचे के फूलों की सुगंध भी मात हो गयी थी। कोट में एक ताजा गुलाब लगा हुआ था। जेब में दो-तीन रंग के रुमाल सजे हुए झांक रहे थे। जूते पालिश से चमचम चमक रहे थे। गले में स्कार्फ शेषनाग की भांति लिपटा हुआ था। बालों की एक लट माथे पर खेल रही थी। अब्दुल अजीज ने उसे मजनू बनने के लिए आंखों में सुरमा भी लगवा दिया था। इस सब सज्जा को देखने के बाद वसंतराव नाटक के दो विचित्र पात्रों जैसा दिख रहा था आधा भीमसेन और आधा तीन मास का जच्चा।

प्रधानाध्यापक साहब अपने जूतों का होश खोकर घोड़े की तरह दौड़ते हुए वसंत के सामने आ खड़े हुए। वे जोड़ने के लिए उठे हाथों से सिर खुजलाने लगे। एक मिनट में उन्हें क्या किया जाय यह न सूझने पर इधर-उधर देखने लगे। कक्षाओं में विद्यार्थी एक-दूसरे की ओर देखते अपनी हंसी रोक रहे थे। चौथी-पांचवीं कक्षा का अप्रशिक्षित अध्यापक जब अपनी हंसी न रोक सका और 'ही' का शब्द उसके मुंह से निकलते ही सारी कक्षा 'हो-हो-हो' करके हंस पड़ी। उनकी हंसी का स्वर सुनकर दूसरी दो-तीन कक्षाओं में भी हंसी फैल गयी। इस हंसी के बीच प्रधानाध्यापक महोदय संभल गये और उन्होंने अपना कर्त्तव्य सोच लिया।

"क्या है ?" उन्होंने गंभीरता से पूछा।

"कुछ नहीं सर घर में श्राद्ध था, इसलिए आने में देर हो गयी।"

प्रधानाध्यापक साहब ने सोचा इस श्राद्ध को अब खतम ही कर देना चाहिए। वे उसे अपने कमरे में ले गये। उस प्रेमपत्र को उसके हाथ में देकर उससे पूछा, "क्या यह तुमने लिखा है ?"

अपने ही खून से लिखा पत्र जब प्रधानाध्यक के हाथ से उसके हाथ में थमाया गया तो वह पत्र उसे अपने शत्रु की भांति लगा। स्वयं उसके हस्ताक्षर थे। उसी की स्याही थी। कहीं गलत न समझ लिया जाय इसलिए स्वयं उसका जोड़ा हुआ 'बहादुर' शब्द। इन सब बातों ने वसंत को बांध दिया। उसकी कुछ भी कहने की इच्छा न हुई। झूठे आवेश से वसंत कानून का सहारा लेने लगा।

"जी हां मैंने लिखा, पर आपने इसे क्यों पढ़ा ?"

तब प्रधानाध्यापक महोदय ने जज साहब का पत्र उसकी नाक के आगे सटा दिया और गरजकर बोले, "कल से तुम स्कूल नहीं आओगे।"

उनका गुस्सा देखकर वसंतराव ने साम-दाम का रास्ता ढूंढ़ा, "सर! मुझे अपना बेटा समझ लीजिये, इस बार क्षमा कर दीजिये। इस गलती को अपने में ही रख लीजिये।"

मास्टर साहब के लिए वसंत की यह बातें नयी न थीं। "यह सब कुछ नहीं। कल से स्कूल आने की जरूरत नहीं। आये तो... ?" यह कह उन्होंने थूक निगला।

वसंत के लिए यह एक नयी बात थी।

"आया तो क्या कीजियेगा ?"

"यह बात बालप्पा से पूछो।"

बालप्पा घंटी बजाने वाला तगड़ा चपरासी था। वसंत को बड़ा गुस्सा आया। अपमान भी लगा। दर्प से हकलाते हुए बोला, "हां, बालप्पा क्या कर लेगा। मेरे पिता जी की दी हुई नौकरी है, नहीं तो मारा फिरता। छू कर तो देखे मुझे। यह चिल्लाता हुआ मुख्य विषय पर आया। मैं कल से स्कूल नहीं आऊं ? क्यों ? मैं क्या फीस नहीं देता, पत्थर देता हूं ? फीस देता हूं, फीस।"

"तुम्हारी फीस की भी ज़रूरत नहीं और तुम्हारी भी ज़रूरत नहीं ?"

"क्यों ? जब आपको ज़रूरत हो तो आऊं नहीं तो नहीं। यह स्कूल आपके बाप का नहीं।" यह कह कर वसंत सिसकियां लेने लगा। चपरासियों ने आकर उसे पकड़ लिया। वह ज़ोर लगा कर ज़मीन पर बैठ गया। प्रधानाध्यापक ने जब देसाईजी का लिखा क्षमा-प्रार्थना पत्र पढ़ा तो उसके पैरों के नीचे की धरती खिसक गयी। अंत में प्रधानाध्यापक ने बताया, "देसाईजी ने ही तुम्हें बालप्पा के हाथ से बाहर निकलवा देने की मौखिक आज्ञा दी है। वे तुम्हारी सब बातों को जानते हैं।" वे आगे बोले, "तुम्हारे पिता जी ने यह भी कहा है कि यदि तुम गुस्से में आकर रात मेरे जाने के टाइम पर कुछ करो तो ... ?" यह सब बातें बताने के बाद उन्होंने उससे कहा "अब तुम जा सकते हो।"

वसंत गेंद की भांति उछल कर बाहर आया। पैसे न देने के कारण तांगा अभी बाहर ही खड़ा था। वसंतराव आधा सिसकता और उंगलियां मरोड़ता इस तरह तांगे पर चढ़ा मानो ... फिर बोला—"जाने दो इस रूम में कौन आयेगा।" कह कर अपने स्कूल के फर्श पर थूक दिया।

12. वसंतराव का लंका-दहन

पाठशाला से निकल कर वसंतराव सीधा अपने मित्र अब्दुल अजीज के कमरे में पहुंचा। अब्दुल अजीज को अपनी कलाकृति का उचित पुरस्कार न मिलने का

बहुत दुख हुआ। इस प्रेम-भंग से वास्तविक कष्ट उसीको हुआ। लैला-मजनू की कथा पढ़कर ही जवान हुए उस मित्र को इस बात की चिंता हुई कि कहीं यह वसंतराव बरबाद न हो जाय, अपनी छाती न पीट ले, कहीं पागल न हो जाय। यह सोच कर उसने उसे समझाना शुरू किया, लेकिन वसंतराव तो प्रेम की बात ही भूल चुका था। उसके सिर में तो प्रेम की जगह स्कूल में हुए अपमान की बात चक्कर काट रही थी। वह स्कूल को जला डाले या प्रधानाध्यापक को अंधेरे में पकड़ कर हाथ दिखाये आदि दुस्साहस की बातें सोच रहा था। अब्दुल अजीज की गजलों से, उसको शांति न मिली। उसने 'एकाकी विक्रमं कुरुयात्' के विचार से अंधेरा होने पर घर की ओर प्रस्थान किया। घर के पास आते ही 'यहां क्यों जाऊं' सोचकर वापस लौटा। इस बार दोलायमान चित्त के कारण चक्कर काटते-काटते दस बज गये। अंतिम बार उसे अपने घर की कंपाउंड की बाड़ से यह बातचीत सुनायी दी।

"ऐ कुएं के पास वाले घर में ताश खेल रहा होगा। वहां देख कर आया है?" देसाईजी पूछ रहे थे।

"वहां भी नहीं है मालिक?"

"उस मुसलमान लड़के के कमरे में देख आये?"

"अभी वहीं से आ रहा हूं।"

"तो एक आध घंटे उसकी प्रतीक्षा करो उसके आते ही मुझे जगा देना। जायेगा कहां...।" आगे सब चुप रहे।

यह वार्तालाप सुन कर वसंत को वहां से भाग जाने की इच्छा हुई, पर उसके पांव दुखने लगे थे। अजीज का कमरा भी बहुत दूर था। उसने सोचा किसी और के घर जाये तो कई बखेड़े खड़े हो जायंगे। पुरोहित बालम भट्ट के घर जाकर 'भट्ट तुम्हीं खाना खिलाओ' कहा जा सकता था पर वहां सोना मुश्किल है। वहां खटमल बहुत हैं। उसे एक उपाय नजर आया किसी कमरे के पिछवाड़े से आंगन में प्रवेश करके चुपचाप ऊपर के अपने कमरे में घुस जाना चाहिए।

पिछवाड़े में पूरा अंधेरा। बाड़ को लांघकर कांटा न चुभने से खुश होता हुआ घर के पास आया। अंधेरे में घर सफेद देव के समान अस्पष्ट-सा खड़ा था। अपनी टोपी उतारकर जेब में डाली और कोट को उतार कर बांहों से उसे कमर पर

बांध लिया। जूते जाली में छिपा दिये। धोती ऊपर चढ़ा कर लांग कस ली। खिड़की में पांव रख उसकी सलाखों पर पांव के अंगूठे टिका कर चिपक कर सटकता हुआ खिड़की की कमानी के बीच वाले पत्थर से लटक गया। वहां से उचक कर एक छोटे पत्थर पर पांव टिका कर घुटने टेककर बीच वाले पत्थर पर चढ़ गया। आधा फुट चौड़े उस पत्थर पर घुटने दुखने लगे। हथेलियों के सहारे दीवार पकड़ कर एक बार खड़ा हो गया। वहीं से ऊपर हाथ उठाने पर उसकी उंगलियां अपने कमरे की खिड़की के तले के पत्थर को छूने लगी। अगर खिड़की की सलाख तक वसंत का हाथ पहुंच जाता तो वह एक उछाल में अपने कमरे में पहुंच जाता और दूसरी ओर हाथ फैलाता तो बरामदे की सलाखे हाथ से एक इंच की दूरी पर थी। वसंत अपना सारा शरीर सिकोड़ कर पंजों के बल खड़ा हो गया। उसके हाथ के पोरुये केवल आधे खिड़की के पत्थर को पकड़ पाये। उस पर वह अपना पूरा भार कैसे छोड़ सकता था ? ...

ऐसी निराशा वसंत को जीवन में कभी नहीं हुई थी। अब भूली हुई शारीरिक थकावट भी उसे महसूस होने लगी। सारा शरीर थक गया और पसीने छूट गये। पिंडलियां में लोहे के कांटे लगने के समान दर्द करने लगी। तलवे भी पसीज गये। यदि थोड़ा और ध्यान उस निराशा में बंट जाता तो वह छत से गिरने वाली छिपकली की तरह धरती पर टपक जाता। उसने अपने को संयत किया, पैर नीचे लटका कर देखा। नीचे की खिड़की की सलाखें पांव को नहीं मिली। कूदना ही एकमात्र उपाय था। अंधेरे में जमीन कितनी दूर है, यह सुझाई नहीं पड़ रहा था। जहां भी गिरा जाय पांव के बल ही गिरना ठीक रहेगा यह सोच जरा-सा पीछे झुका और छलांग लगा दी। हवा में आधा क्षण निर्बाध रूप में सफर करके धरती पर धप से बैठ गया। आंखों में अंधेरा आ जाने के कारण दो मिनट सिर पकड़ कर आराम किया। सारा संसार शून्य-सा लगा।

इतने में कोने में से सरसराहट सुनाई दी। यह गोठ थी। गोठ ने मानो वसंत को निमंत्रण दिया। सरकता हुआ वहां गया और पुआल पर लुढ़क गया। वहीं नींद आ गयी।

रात के बारह बजे तक लड़का घर नहीं लौटा, यदि सिनेमा भी गया होता तो इतने समय तक लौट आना चाहिए था। अब तक चुप रहने वाली वेणुबाई दुखी

होकर रो पड़ी। पति-पत्नी दोनों ने उस दिन खाना नहीं खाया था। रात के दोबजे तक देसाईजी गली-गली भटकते फिरे। आखिर रेलवे स्टेशन गये और वेटिंग रूम में बैठे और वहां एक ओर भरमा को और दूसरी ओर यल्ला को ढूंढ़ने भगाया। वे लोग लालटेन लेकर एक-एक डेढ़-डेढ़ मील तक ढूंढ़ कर लौट आये। लंबी सांसें लेकर घर लौट आये। वेणुबाई अपने छोटे लड़के पुरुषोत्तम को छाती से लगाकर व्याकुलता से रास्ता देखती हुई लेटी थी। थोड़ी आहट सुनते ही जाग गयी और फिर रोने लगी। देसाईजी के उसको जैसे-तैसे तलल्ली देने में ही मुरगा बांग देने लगा। पौ फटते-फटते सबको नींद आ गयी।

सात बजे के लगभग गोबर और कचरा उठाने के लिए गोठ में आये भरमा को द्रोणावतार की भांति भूसे के ढेर में सोया वसंत दिखायी दिया। देसाईजी तभी तनिक ऊंघने लगे थे। उसने उन्हें जगा दिया। वेणुबाई भी दौड़ती हुई आयी और अवाक्-सी आंखें फाड़े अपने बेटे को देखती रह गयी। देसाईजी ने बिना कुछ और बोले भरमा को उसे जगाने के लिए कहा। वेणुबाई ने स्वयं जाकर उसका सिर अपनी गोद में रखकर उसे जगाया। वसंत आंखें मलता उठ बैठा। इधर-उधर देखते ही सूखे गोबर चारा और घास आदि के दर्शन होते ही वसंत को पिछले दिन की सारी बातें याद आ गयी।

मां उसे छाती से चिपकाकर 'वसंत-वसंत' रुआई सी बोली। बड़े प्यार से बैठे बैठे एक कटोरा दूध पिलाया। देसाईजी ने सब कुछ चुपचाप देखा। बेटे को इस प्रकार सोये देखकर उनका हृदय भी द्रवित हो उठा, परंतु अपने उस भाव को मुख पर व्यक्त करने की इच्छा उन्हें न थी।

वेणक्का ने वसंत को तेल मालिश करके स्नान कराया। आरती उतारी और नजर उतार कर माथे पर कुंकुम का टीका लगा दिया। नाश्ते के लिए बिठाया। भूख के मारे वसंत ने खूब अच्छी तरह खाया। इसके बाद मां गिड़गिड़ाकर बोली "वसंत मुझे छोड़ कहीं न जाना बेटा। देख तेरे कारण कल मेरी एक पल को आंख नहीं लगी। सारी रात ऐसे ही बैठी रही। वे भी रात भर तुझे गली-गली ढूंढ़ते फिरे। कितने थक गये। चाहे तो भरमा से पूछ ले। जा बेटा उनसे माफी मांग 'मुझसे गलती हुई पिताजी' कह। इससे उनका मन थोड़ा हल्का हो जायेगा।"

लेकिन पेट भर जाने के बाद वसंत पिता को क्षमा करने के लिए तैयार न हुआ।

पिता ने उसे स्कूल से निकाल लिया । और मास्टर को चपरासी से उसे निकलवा देने को कहा था । यह सब याद करके वह मां की बात मानने को कदापि तैयार न हुआ ।

वसंत के विचित्र पराक्रम और उसकी पहले की सब गलतियों को भुलाकर सबने घर में उसका यथा प्रकार स्वागत किया परंतु दूसरे दिन से ही उसे धारवाड़ नगर ही जैसे काटने लगा । उसके स्कूल से निकाले जाने की खबर सारे शहर में फैल गयी थी और अब गलियों में भी निकलना मुश्किल हो गया । उसे लगा सारा शहर ही उसका शत्रु हो गया है । उसने निश्चय किया कि अपना आक्रोश मिस खोट पर ही उतारेगा । इससे एक रात चुपचाप घर से खिसक कर एक चाकू से सारे सार्वजनिक स्थानों पर उसका नाम और शृंगारिक बातें गोद आया ।

इसकी देसाईजी के पास फिर शिकायत पहुंची । वसंत ने घर में सब लोगों की शपथ खाकर कहा "मैं तो घर से बाहर ही न निकला । मैंने ऐसा काम ही नहीं किया ।" देसाईजी की समझ में न आया कि वह क्या करें । अंत में वेणक्का की विनती को अनसुना करके उसे गांव भेज दिया । वह तो धारवाड़ छोड़ना ही चाहता था । पिताजी और धारवाड़ के लोगों की नजरों से दूर होकर उसने गांव पहुंचकर सुख की सांस ली ।

13. जार्ज वाशिंगटन कंबार गणिवी

कचहरी में अपनी बदली हुई मनोवृति के अनुसार किट्टी को एक नया मित्र मिला । वह था जार्ज वाशिंगटन कंबार गणिवी ।

काफी दिन तक जार्ज अपने लंबे नाम के कारण कचहरी में किट्टी के लिए एक जादूगर की भांति दूर ही दूर था । वह अपने काम से मतलब रखता था । वह किसी से बात करता तो केवल काम के कारण । किट्टी के लिए तो वह एक नाम-

मात्र था। किट्टी का स्वभाव ही आजकल कुछ बदल गया था। तहसीलदार साहब की सीख के बाद वह घर पर कानून की पुस्तकों तथा कुछ केसों की फाइलों का अध्ययन करने लगा। काम की पकड़ समझ जाने के बाद अब उसे पुराने मित्र नहीं भाते थे। उनके पास अनभिज्ञ के रूप में जाकर छोटी-मोटी बातों की सलाह लेना उसे अपने मान के अनुकूल न लगा। उन लोगों को मन ही मन यही इच्छा थी कि किट्टी उनसे सलाह लिया करे। इन दिनों जब कोई बात समझ में न आती तो वह स्वयं सीधा तहसीलदार के पास चला जाता। इससे दूसरों को संदेह हुआ और उन्होंने इससे पहले की तरह खुलकर बात करना बंद कर दिया। किट्टी के बारे में तहसीलदार ने अच्छा कर्मचारी कहा। यह बात फैलने के बाद दूसरों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गयी। किट्टी किसी भी काम के लिए जब उनके पास जाता तो लोग बिना ताना कसे न रहते। एक बार एक छोटे से काम के लिए उसे जार्ज से बात करने का अवसर मिला तब उसने जार्ज के साथ कुछ देर तक बातें करके उसको अच्छा मित्र बना लिया। जार्ज भी दोस्ती का स्वागत करने वाला आदमी था। वह स्वयं आगे बढ़कर किसी का परिचय प्राप्त करने की इच्छा न करता था परंतु उससे दोस्ती का हाथ बढ़ाने वालों से यदि वह इसके मन को जंच जाय तो घुल-मिल जाता। कुछ ही दिनों में उनकी मित्रता घनिष्ठ हो गयी। सिर्फ नाममात्र रहने वाला जार्ज एक जीवंत व्यक्ति हो गया।

जार्ज का जीवन नींद के समान था। मौन ही उसका रहस्य था। कचहरी में उसने चुप रहकर ही अपना प्रभाव बना रखा था। लोग उसकी पीठ पीछे उसके नाम के बारे में, उसके मौन के बारे में अनेक प्रकार की फब्तियां कस कर हंसा करते थे, पर उसके लिए किट्टी की भांति अब तक डांट खाने का प्रसंग प्रत्यक्ष रूप में न आया था। वह कब अपनी फाइलों को पढ़ लेता यह कोई न जानता था। परंतु वह जहां भी रहता वहां कोई काम शेष न रहता। काम में लगे रहना, गलतियां होना आदि बातें न रहने के कारण कचहरी में उसके काम के बारे में भी कोई न जानता था। उसे किसी ने अच्छा कर्मचारी नहीं कहा। उसके काम के बारे में कभी किसी ने प्रशंसा नहीं की थी क्योंकि उसे दूसरों की भांति प्रयत्न करके आगे जाने का अवसर कभी नहीं मिला। उसे स्वयं पता न था कि वह काम अच्छी तरह करता है! कचहरी के काम के बारे में उसका दृष्टिकोण था कि सब अपना-अपना

काम करते हैं। मैं भी करता हूं।

शुरू-शुरू में किट्टी के उसे पसंद करने का कारण यह न था कि उसके लिए कोई और दोस्त न था अपितु 'ठोकर खाकर गिरे भी तो रुई की दुकान में' वाली कहावत के समान किट्टी जल्दी ही इस नये व्यक्ति के चरित्र से प्रभावित हुआ। सबसे पहले जार्ज में पसंद आने वाली बात किट्टी के लिए यह थी कि वह हर किसी को जैसा देखता था उसी तरह मानता था। उसने किट्टी की वेषभूषा, बात-चीत का ढंग इन सब पर एक शब्द भी न कहा। किट्टी के कपड़े उसकी चोटी और मूछों के तथा कोट और टोपी के बारे में उसके मित्र सदा कुछ न कुछ मजाक उड़ाया ही करते थे। परंतु जार्ज को तो मानो यह सब कुछ दिखता ही न था। उसने तो किट्टी जैसा भी था, उसे अपना लिया।

वह अपने काम में चौकस था। उसकी जीवन के प्रति एक काल्पनिक रोमांटिक अरुचि थी। उसे दूर करने के लिए दो दिन में एक बार सिनेमा देखा करता था। यही किट्टी को जार्ज के जीवन का सार सा दिखाई दिया। अपने बारे में उसने कभी सोचा ही न था, इसलिए अनावश्यक विनय भी उसमें न थी। किट्टी के लिए जार्ज अनजाने में ही एक आदर्श व्यक्ति बन गया। किट्टी तो प्रयासपूर्वक यश प्राप्त कर रहा था, जार्ज में स्वभावतः यह सब गुण थे। किट्टी इनका कारण सोचने लगा था। इन्हीं दिनों तहसीलदार साहब ने उसे 'अच्छा कर्मचारी' कहा था पर जार्ज के बारे में ऐसी कोई बात नहीं कही, इसलिए उसे लगा था कि उसका काम जार्ज के काम से अच्छा है। परंतु इस बात से भी उसे पूर्ण संतोष न था।

जार्ज किट्टी के जीवन में सिनेमा ले आया। उसे सिनेमा के बिना जीवन शुष्क लगता था। कम से कम उसे दो-तीन दिन में एक बार सिनेमा चाहिए था। दो-तीन वर्ष पहले तक मनोरंजन विभाग उसके पास था। अब वह उसके हाथ से चला गया। लेकिन सिनेमा वालों पर उसका प्रभाव अब भी था। वह चाहे जितने लोगों को मुफ्त में सिनेमा दिखा सकता था।

उसके साथ किट्टी पहली बार सिनेमा गया। जाते समय वह घबरा रहा था। एक तो जार्ज का आग्रह दूसरे मुफ्त सिनेमा। उसे यह तसल्ली थी कि वह अपना पैसा फूंक नहीं रहा। किट्टी के लिए सिनेमा एक नया अनुभव था। बचपन में वह एक मूक चित्र देखकर बोर हुआ था। वही एकमात्र उसका अनुभव था। किट्टी के

अनाड़ी मन को सिनेमा-थियेटर का अंधेरा, शोर और गर्मी यह पहला अनुभव शुरू हुआ। पार्श्व संगीत ने घटना के अनुकूल उसके हृदय में रसानुभूति जागृत की। जब शोक का गीत होता तो किट्टी को बहुत दुख होता। भाषा हिंदी होने के कारण उसे उसका अर्थ समझ में न आता था। भाषा से परिचित जार्ज बीच-बीच में बताता जाता कि यह बिलमोरिया है। वह हुस्नबानो है। इससे किट्टी के रसास्वादन में बाधा पड़ती थी। चलचित्र में एक जगह कुछ गुंडे एक तरुणी को तंग कर रहे थे। उसका मुखिया उसके बाल पकड़कर खींच रहा था। उसके साथी उसके मुंह के पास मशाल लाकर जलाने की धमकी दे रहे थे। किट्टी को वे लोग कौन हैं, समझ में न आया। पर उस युवती का दुख देखकर उसका दिल दहल गया, मन पसीज-पसीज कर रह गया। और वह अधिक न देख पाने से मुंह नीचे झुका लेता फिर देखने की इच्छा से मुख उठा लेता। जब वह करुण रस में डूबा तो जार्ज ने दो-तीन बार बोरिंग-बोरिंग कहकर उसका रस भंग कर दिया।

मध्यांतर में जब दोनों बाहर आये तो जार्ज ने बैड पिक्चर कहकर पुनः भीतर जाने से इनकार कर दिया। किट्टी को बड़ी चिंता हुई। उसे पूरी पिक्चर देखने की बड़ी इच्छा थी, परंतु वह जार्ज के निमंत्रण पर आया था। अंत में विवश होकर उसके साथ वापस घर लौटा।

ऐसी घटनाएं बार-बार होती रहीं। जार्ज ऊब कर आधी पिक्चर से चला आता पर किट्टी शेष पिक्चर संभवतः अच्छी हो, सोच आखीर तक देखता। पिक्चर अच्छी न होने पर बोर होकर रात को 10 बजे लौटता और मां की डांट खाता। मां को दो चार जवाब देता। बाद में झुंझलाता हुआ सो जाता। ऐसे अवसर कई बार आते। कुछ ही दिनों में किट्टी को अच्छी बुरी पिक्चरों की पहचान हो गयी किंतु आधे में उठकर आने की इच्छा को जीतने में वह कभी समर्थ न हो पाया। मां घर अकेली रास्ता देखती रहती है इसलिए मैं सिनेमा नहीं जाऊंगा। उसने कई बार यह निश्चय किया पर समय आने पर उस पर दृढ़ न रह सका। कभी-कभी सिनेमा के लिये निमंत्रित करने वाले जार्ज पर भी गुस्सा आ जाता, परंतु कुछ देर सोचने पर स्वयं उसे अपने पर गुस्सा आने लगता।

ऐसे प्रसंगों से किट्टी को अपने और जार्ज के बीच का बड़ा अंतर स्पष्ट दिखायी देता। जार्ज अनासक्त था। जहां उसका मन न करता वहां जाने में वह अपने को

रोक लेता। इस प्रबल इच्छाशक्ति के कारण उसके जीवन में चिंता के प्रसंग बहुत कम आते थे। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वे प्रियं भवति' यह ज्ञान उसके खून में ही था। ऐसी निश्चल बुद्धि के परिणामस्वरूप व्यक्तित्व की जड़ से विकसित हुआ जार्ज यही विशिष्टता लिये था। परिस्थिति के अनुसार कचहरी के कामों में पैसा ले लेता था, परंतु व्यक्ति को साफ-साफ बता देने में हिचकिचाता न था। वह साफ कह देता 'यही प्रोसिजर है, मैं क्या कर सकता हूं ?' एक बार एक आदमी उसके साफ कह देने पर भी पांच रुपये का नोट टेबल पर छोड़, भाग गया तो उसने चपरासी को पैसे देकर पीछे भगाया और पैसे उसे वापस पहुंचा दिये। किससे उसे किस कारण पैसे मिल रहे हैं यह बात जब तक पक्की तरह पता न लगा लेता तब तक वह एक दमड़ी भी लेने को तैयार न होता। उसे पैसे की चिंता न थी। घर में अविवाहित बड़ी बहिन थी जो एक स्कूल में पढ़ाती थी। वह स्वयं भी कमाता। अगले वर्ष छोटा भाई भी मैट्रिक पास करके नौकरी पर लगने वाला था। पिता चर्च में नौकरी करते। मां नहीं थी। घर में हर आदमी जिम्मेदार था।

यह निस्पृहता किट्टी के ढुलमुल स्वभाव में नहीं थी। कितना भी पैसा घर में क्यों न आये, पूरा नहीं होता था। कभी यह भी याद न रहता था कि किसने पैसे दिये। कई बार दोनों पक्षों से पैसे मिलने पर भी विचार किये बिना वह अपनी जेब में डाल लेता। बाकी लोग भी ऐसा ही करते हैं। यह कह कर मन को तसल्ली दे लेता था पर जार्ज के उदाहरण को देखते ही उसका मन अशांत हो जाता। पर वास्तव में किट्टी हुसैन का प्रीति पात्र था। वह लोगों के सामने अकसर डींग मारता था कि कृष्ण जी साहब को हमने ही तैयार किया था।

पैसा कमाने वाले दो प्रकार के हैं। एक अपने अधिकार के बल पर पैसा लेता है और इसे दैनिक कार्य समझ कर जेब में डालता जाता है। दूसरा लालच से जितना मिल जाये उतना लेकर खुशी से नाचता है। पहले वाले का पैसा मानो देने वाले पर उसका उपकार हो। दूसरा देने वाले को अपना परिश्रम बेचता है। पहले वाला धन स्वीकार करके मानो देने वाले को कृतकृत्य करता है दूसरा स्वयं कृतज्ञ होता है। दान देने वाले का हाथ सदा ऊंचा रहता है। यह बात दूसरे प्रकार के लोगों पर लागू होती है। दान लेने पर नाक में नसवार लेने की

भांति पहले वाले का हाथ ऊपर ही रहता है। किट्टी यदि किसी का काम ठीक कर देता था तो परिश्रम के रूप में न कि उपकार के रूप में, लेकिन जार्ज यदि किसी का काम कर देता तो वह व्यक्ति सदा उसे याद रखता और उसकी सेवा को तैयार रहता। ऐसा क्यों, यह प्रश्न किट्टी के मन में आता ?

रेवेन्यू विभाग में नहीं अपितु सरकार के किसी भी विभाग में काम करने वाला आज नहीं तो कल काम आता ही है। इसलिए उनको खुश रखना सिनेमा वालों को ही नहीं बल्कि बड़ी-बड़ी संस्थाओं के लिए यह बात आवश्यक होती है। ऐसे विभागों में काम करने वाले सभी कर्मचारी उसे अपना हक मानते हैं।

एक रविवार के दिन किट्टी बहुत उदास होने के कारण सिनेमा चला गया। जेब में पैसे तो रखे थे परंतु टिकट घर के सामने पांच मिनट खड़े होने की इच्छा न होने के कारण या पैसा खर्च न करने की इच्छा होने से वह सीधा बाक्स के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। इतना विश्वास था कि जार्ज को हमेशा सलाम मारने वाला गेट कीपर भले ही उसे सलाम न करे लेकिन उसे अंदर जाने तो देगा ही। सभी टिकट वालों के अंदर जाने के बाद यह भी अंदर घुसने लगा तो गेट-कीपर ने डपट कर पूछा 'टिकट'। किट्टी जरा चकराया। जार्ज का नाम लेना उसे ठीक न लगा। बटुआ निकाल कर ढूंढ़ने का बहाना करके 'अरे कहीं गिर गया' कह कर बड़बड़ाता हुआ लौट पड़ा। गेट-कीपर की हुंकार भरी हंसी उसके दिल को चीर कर पीठ से पार हो गयी। दुबारा उस सिनेमा की ओर न जाने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन जार्ज के बुलाने पर फिर जाने की इच्छा हुई। आज वही गेट-कीपर क्या करेगा यह वह देखना चाहता था। इस बार गेट-कीपर ने उसके अस्तित्व की ओर ध्यान नहीं दिया। इससे उसे बड़ी निराशा हुई।

चाय और नाश्ते के बारे में जार्ज बड़े नियम से चलने वाला आदमी था। प्रतिदिन कचहरी में शाम को एक बार चार बजे चाय लेता। कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर दो बजे कुछ खा लेता, नहीं तो वह भी नहीं। कचहरी में आने वालों के साथ वह कभी होटल नहीं जाता। शेष लोग इसको 'एक अच्छा नियम' कहते थे। जार्ज के लिए यह कोई विशेष सिद्धांत न था, हर आदमी के साथ बैठने की इच्छा उसे न थी।

उनकी मित्रता के आरंभिक दिनों में किट्टी ने अपने साथ चाय पीने के लिए ज़ोर दिया। वह चाय आधा घंटे पूर्व ही पी चुका था, इसलिए उसने लाचारी प्रकट की। उसे केवल साथ देने का आग्रह करता हुआ किट्टी उसे कैंटीन में खेंच ले गया। वहां जाकर उसके मना करने पर भी दो स्पेशल चाय का आर्डर दिया। उसे विश्वास था कि माणी के चाय लाकर रखने के बाद शायद जार्ज मान ले। चाय आ गयी पर जार्ज न माना। स्पेशल चाय होने के कारण वापस करने की भी इच्छा किट्टी को न हुई। दूसरा कप पीये बिना पैसे देने का मन भी न था। अंत में किट्टी ने स्वयं दोनों कप चाय पी। कई बार जार्ज के जिद्दी स्वभाव पर किट्टी को क्रोध आ जाता, पर साथ ही यह भी सोचता वह भी स्वयं जिद्दी बना रहता तो आगे न बढ़ जाता ?

जबान के चटोरपन से घर में भोजन करना मुश्किल हो गया। प्रतिदिन कचहरी में तीन-चार बार चाय नाश्ता चलता था, और हर बार किट्टी नाश्ते के साथ पूर्ण न्याय करता। वह चाहता था कि जार्ज उसे अपना नियम समझावे और किट्टी अपना मत व्यक्त करे। या तो जार्ज उस ओर ध्यान ही नहीं देता था या उसका विचार था कि इस मामले में हरएक का अपना सिद्धांत होना चाहिए। सो जार्ज ने इस विषय पर कभी भी बात नहीं की। अंत में किट्टी ने ही ऊब कर उससे पूछा। इस पर उसने केवल इतना ही कहा, "डाइजैस्टिव सिस्टम बिगड़ जाता है।"

किट्टी ने इस बात का स्वयं भी एक समाधान खोज लिया 'घर से भोंस-वाइ' खाकर आता है, उसे भला यह चकली चूड़ा भायेगा ?[1]

रविवार किट्टी को बहुत बुरा लगता। उस दिन कचहरी का कैंटीन बंद रहता और आमदनी भी बंद, मुफ्त की सलाहें भी बंद। एक रविवार किट्टी अपने घर के पास के परिचित होटल में गया। उस दिन माणी ने स्पेशल चाय लाकर दी तो किट्टी साहब ने कहा "एक टुकड़ा चकली भी लाओ।" किट्टी साहब हो तो माणी को क्या ? उसने ज़ोर से पूछा "एक प्लेट चकली लाऊं ?" किट्टी बोला, "नहीं रे चाय के लिए एक टुकड़ा लाओ।" माणी ने सीधा होटल के मालिक के पास जाकर ज़ोर से कहा, "उन साहब को चाय के साथ थोड़ी चकली चाहिए।" उपस्थित सभी लोगों ने किट्टी की ओर देखा। मालिक ने मुस्कराते हुए "दे दो" कहा।

---

[1]एक प्रकार का नमकीन पकवान

किट्टी के सामने चकली का टुकड़ा आ गया। उससे उसका जायका ही बिगड़ा।

यदि सुख चाहिए तो शर्म छोड़नी चाहिए यह तत्व प्रत्यक्ष व्यवहार में ले आना इतना सरल नहीं।

जार्ज के मित्र ही कम थे। उसमें भी किट्टी से जार्ज का बहुत प्यार था। ज्यों-ज्यों उनकी मित्रता बढ़ती गयी, जार्ज के मन में किट्टी को अपनी प्रेमिका से मिलाने की एक उत्कट इच्छा उत्पन्न होने लगी। विवाह करने के निश्चय की बात तो उसने बतायी नहीं पर यह इच्छा बनी रही। मित्रता गहरी होते-होते यह इच्छा और बलवती हो उठी।

जार्ज के जीवन में उसकी प्रेयसी एक बड़ी विजय थी। सारा एक पादरी की बेटी थी। वह उस शहर के प्रोटेस्टेंट घरों में सबसे सुंदर थी। वह छठे स्टैंडर्ड में पढ़ती थी। अगले ही वर्ष मैट्रिक पास करके नौकरी पर लगने वाली थी, इसलिए उसका दुगुना महत्व था। उसके लिए कई वर उसके पिता को प्रार्थना कर चुके थे। इन लोगों में मंगलूर की तरफ का एक तरुण पादरी भी था। पर उसी जगह में पलने के कारण पादरी को जार्ज के बारे में पहले से ही पता था। एक दिन उन्होंने जार्ज को बुलाकर विवाह के बारे में उसके विचार जानने चाहे। स्वप्न में भी न देखा हुआ यह अलभ्य लाभ पाकर जार्ज के परिवार की खुशी का ठिकाना न रहा। मंगलूर के पादरी का प्रस्ताव ठुकराकर स्वयं जार्ज को बेटी देने का प्रस्ताव रखना उस परिवार के लिए गर्व के अतिरिक्त और क्या हो सकता था?

सारा ने इस विवाह के लिए खुश होकर अनुमति दी थी। इसके साथ ही गरीबों के दुर्लभ डेढ़ वर्ष के कोर्टशिप का भी अवसर था। जार्ज को उसके सौंदर्य पर बड़ा अभिमान था। उसके दोस्त कम थे। किट्टी को उसका गहरा दोस्त होने के कारण यह बात बताने को वह बहुत आतुर था। एक दिन वह अपने को रोक न पाया और उसने उसे बताया 'मेरा विवाह अगले साल हो जायेगा। पादरी की लड़की के साथ निश्चित हो चुका है। वह बहुत सुंदर है। एक दिन पादरी के घर चलें तो तुम्हारा उससे परिचय करा दूंगा' कहकर आमंत्रित किया। किट्टी को भी उस सुंदरी को देखने की बड़ी इच्छा तो थी परंतु अपरिचित पादरी के घर जाने

में उसे संकोच हुआ। इसके अतिरिक्त किट्टी ने बहुत-सी बातों की छूतछात छोड़ दी थी परंतु ईसाई के घर में खाने-पीने के बारे में उसे बड़ा डर लगता था। जार्ज के घर जाने पर वह बहुत आग्रह करने पर ही सिर्फ चाय लिया करता था। इस बार भी दो तीन दफा वह बहाना करके बचा, पर जार्ज ने एक और रास्ता ढूंढ़ निकाला।

एक दिन दोनों सिनेमा गये। वहां सारम्मा इन लोगों की राह देखती हुई औरतों वाली सीट पर बैठी थी। इन लोगों को देखकर उठकर पास आयी। जार्ज ने पूछा, "बहुत देर तक इंतजार करनी पड़ी।" उस पर वह बोली 'नहीं तो।' तब जार्ज ने किट्टी से उसका परिचय कराया। 'ये कृष्णा जी कुलकर्णी मेरे कोलीग हैं, ये सारा डिसूजा मेरी मंगेतर है।' किट्टी को बहुत लज्जा आयी। उसे लगा मानो धरती उसे निगलने को तैयार है। तीनों चाय की दुकान में गये और चाय बिस्कुट का सेवन कियां। सारा से जार्ज अब तक अपने दोस्त के बारे में बता चुका था। सारा के पास आने पर जार्ज की समझ में न आया कि वह क्या बातें करे। पर उसने एक रास्ता निकाला। सारम्मा का सा सारा ध्यान जार्ज के इस शरमीले दोस्त पर लगा था। जार्ज को अभी सारा के बारे में बहुत-सी बातें किट्टी को बतानी थी। उसने उसके पिता के बारे में, उसकी पाठशाला में होशियारी के बारे में, उसकी हाइस कीपिंग और एंब्रायडरी की रुचि के बारे में, सब विस्तार से बताया। उसने उसके हाथ में पहनायी हुई सगाई की अंगूठी भी दिखाते हुए बताया कि उसने कैसे वह नग प्राप्त किया। कैसे स्वयं उसका डिजायन छांटा, कहां बनवाई आदि सब वर्णन किया। बीच-बीच में सारा चुपचाप किट्टी की प्लेट में बिस्कुट खिसकाती जा रही थी। उसके देने का सम्मान रखने को किट्टी ने एकाध बिस्कुट ले लिया।

किट्टी को सारा में उतना सौंदर्य दिखायी न दिया जितना जार्ज ने बताया था। यह ठीक था कि स्वास्थ्य और उल्लास के कारण उसके मुख पर एक कांति थी। लंबी होने के कारण उसके मुंह पर अब भी बचपना दिखायी देता था। उसने उस दिन पीले रंग का फ्राक पहन रखा था। सिर में लाल रिबन बांधा था और दसेक पिन आड़े तिरछे बालों में लगा रखे थे। उसने केवल पूछी हुई बातों का ही उत्तर दिया और बाकी समय में जार्ज की बातों पर सम्मति सूचक मुस्क-

राहट मुख पर लिये बैठी रही।

सिनेमा जाने के लिए सारा तैयार न हुई। उसके पिता को कहीं दूसरे शहर में परीक्षाओं के सिलसिले में जाना था इसलिए उसे जल्दी ही रात का खाना पकाना था। वही घर की मालकिन थी। पादरी की पत्नी को गुजरे छह वर्ष हो गये थे। विवाह के बाद से जार्ज पादरी के साथ ही रहने वाला था। सारा को उसी समय घर भेजने की इच्छा न होने के कारण जार्ज उसे शापिंग कराने मार्केट ले गया। अब किट्टी असमंजस में पड़ गया।

इस समय उन्हें छोड़कर चल देना ठीक नहीं लगा। उनके साथ जाने में उसे शरम आती थी। इसलिए कोई एक गज का फासला रख कर वह उनके पीछे-पीछे चला। जार्ज और सारा को यह समझ में न आया कि वे आपस में क्या बातें करें। किट्टी को बातों में खींचना और भी मुश्किल था। इस प्रकार रास्ते में ऐसा लगा मानो एक मूक अभिनय चल रहा हो।

दुकान से सारा के लिए रिबन, रुमाल, लेस और कंघी आदि छोटी-मोटी चीजें खरीदी गयी। उन सबको एक गत्ते के डिब्बे में डाल कर रिबन से बंधवा कर जार्ज उसे घर तक पहुंचाने चल पड़ा। अब इस जलूस के पीछे जाना ठीक नहीं यह सोचकर किट्टी भी सब्जी खरीदने का बहाना बना कर उनसे अलग हो गया।

उस दिन निद्रा में उसने अनेक स्वप्न देखे, रत्ना को उसने उसी तरह सारे शहर में घुमाया, सिनेमा गया, फूल पहनाये, दुकान में चूड़ियां पहनवायी आदि-आदि। इस सारा की सुंदरता पर मुग्ध जार्ज यदि रत्ना को देख पाये तो पता नहीं क्या कहेगा? ऐसे मूर्खतापूर्ण विचार भी उसके मन में उठे। नींद आते-आते बारह बज गये।

सुंदरता शब्द का प्रयोग जार्ज ने जिस अर्थ में किया था, उसे समझने के लिए किट्टी को अभी काफी समय की आवश्यकता थी।

14. किट्टी का प्रणय

राघप्पा का घर किट्टी ही की कचहरी के पास पड़ता था। राघप्पा ने किट्टी को घर आकर चाय नाश्ते का स्थायी निमंत्रण दे रखा था, परंतु उस पर अमल नहीं हुआ था। इसी से दीवाली के आते ही नरक चतुर्दशी के दिन नाश्ते के लिए आग्रहपूर्वक निमंत्रण दिया। उस दिन किट्टी के सिवा किसी और को आमंत्रित नहीं किया था, परंतु आसपास की बारह तेरह लड़कियों का दल रत्ना के मंगेतर को देखने के लिए आ डटा था। इस स्त्री-राज्य में किट्टी को कई सुखद अनुभव हुए। उन लड़कियों ने उससे ऐसा व्यवहार किया मानो रत्ना के विवाह की बात पक्की हो गयी हो। उन सब में एक स्वस्थमर्दानी-सी लंबी और प्रगलभा के हाथों किट्टी को बहुत तंग होना पड़ा। जब वह बैठक में बैठा था तब यह कन्या सेना सहित द्वार पर जम कर खड़ी होकर इसकी ओर आंखें फाड़ कर देखती हुई एक दूसरी को चिकोटियां काटती हुई इशारे कर रही थी। प्रगलभा गोदावरी एक कदम और आगे बढ़ी। अपनी असमान्य लंबी और मजबूत बांहों से रत्ना को बांहों से पकड़ कर खेंचती हुई बैठक की दहलीज पर ले आयी, और बोली, "इसने आपको ठीक से देखा नहीं, इसलिए आप गुस्सा न करो, इसे मैं इसीलिए खींच लायी हूं।" इस खींचातानी और हंसी मजाक से रत्ना के गाल लाल हो गये। आंखें चमक उठीं। आंसू की एक ही बूंद आंख की कोर पर आकर अटक कर छलकने को तैयार थी। वह किट्टी की ओर चंचलता से एक बार दृष्टि डाल कर 'छोड़ो छोड़ो' कहती बांह झटक कर भाग खड़ी हुई। सोलह वर्ष की हो जाने पर भी इस प्रगलभा गोदावरी का विवाह नहीं हुआ था, लेकिन इस बात की उसे कोई चिंता न थी। उसने अभी अपना बचपना छोड़ा न था। दूसरे के शादी ब्याह में उसका नटखटपन और भी बढ़ जाता था।

साढ़े आठ बज जाने पर भी किट्टी के लिए ही तैयार की गयी आरती अभी हो नहीं पायी थी। राघप्पा के आते ही आरती का काम शुरू हुआ। "तू इधर आ तेरे ही हाथ से आरती उतरवाऊंगी" कहकर गोदावरी ने गंभीर प्रतिज्ञा करके लजा कर भागती हुई रत्ना का पीछा किया।

रत्ना ने इनकार किया, गोदावरी ने चिकोटियां काटीं। अंदर मां ने भी बेटी का पक्ष न लेकर गुस्से से कहा "जा ना। सहेलियां बुला रही हैं, तू तो घर की लड़की है।" लाचार होकर रत्ना आरती लेकर आयी। गोदावरी भी साथ थी। आरती का गीत गाने की समस्या उठते ही गोदावरी ने कन्या सेना को कड़ी आज्ञा सुनायी "ऐ तुम में से कोई मत गाना, रत्ना ही गायेगी।" सब तरफ चुप्पी छा गयी। यह चुप्पी मेरे गाने के लिये ही है यह सोचकर रत्ना को गाना ही पड़ा। उसने महबूब से सीखा 'कृष्ण नीनू बेगने बारो।' गाना गया। महबूब की शिक्षण पद्धति के अनुसार अथवा मूल पद्धति के अनुसार 'कृष्ण' शब्द का पूरा प्रयोग केवल पल्लवी में होता है, शेष में 'णा' रह जाता है। पल्लवी उठाते ही गीत मुझे ही संबोधित करता है सोचकर किट्टी ने अपना मुंह नीचा कर लिया। सहेलियों ने उसका अर्थ लगाया और खिलखिला कर हंस पड़ीं। रत्ना अनजाने में पहले गाती गयी। दूसरा पद दूसरी बार गाते हुए यह बात समझते ही घबरा कर शर्म से उसका मुंह लाल हो गया और कांपती हुई आगे बढ़ी, पर इस बार पल्लवी भी न गा सकी। 'कृष्ण' का ककार भी पूरा न बोल सकी और हंसते हुए मुंह फेर लिया। सारा स्त्री-समाज हंसते-हंसते लोट पोट हो गया।

इस समय किट्टी शर्म से आंखें चुरा कर बैठक के दूसरे कोने की ओर देखने लगा। उधर भी मुस्कराता हर्षातिरेक से आंसू भरा एक मुख इसी और देखता दिखायी दिया। वह थी चंपक्का।

नाश्ते के लिए बैठने पर गोदावरी ने मिर्च वाली गुंझियां और दूसरी प्रकार की गुंझियां मिलाकर किट्टी को परोसीं। हास्यप्रसंगों को उपस्थित करने में तनिक भी कंजूसी न करने वाले किट्टी ने एक और अवसर दिया। उसे लगा 'बाप रे क्यों मैं इन लड़कियों के बीच में आ फंसा।'

नाश्ते के बाद, राघप्पा किट्टी से "यहीं खाना खाकर जाना, मैं अभी आया।" कहकर पान सुपारी लेकर कहीं काम पर चला गया। इस स्थिति में अपनी होश भुला हुआ किट्टी एकदम इनकार न कर पाने के कारण चुप रहा। उधर एक और आशा मन में थी। संभवतः रत्ना दिख जाय। रत्ना फिर शर्माती हुई दो बीड़े पान रखकर चली गयी। उनमें से किट्टी ने बड़ा बीड़ा उठाया। उसमें भी मिर्च थी। स्त्री-समाज अंतिम बार जी भर कर हंसती हुई

अपने-अपने घर चली गयी। अब राघप्पा की प्रतीक्षा में किट्टी को अकेले बैठना पड़ा।

बैठक में एक समाचार पत्र तक न था। आधा घंटा अकेले रहने पर किट्टी का उत्साह आधा उतर गया। आंते कुलबुलाने लगी। घर और मां की याद आने लगी।

उस दिन प्रात: गंगव्वा ने किट्टी को पांच बजे उठाया था। पंद्रह वर्षों से सहेजकर रखी इतर की शीशी में से दो बूंद तेल की कटोरी में मिला दी गयी थी। उस दीवाली के दिन घर में किट्टी की आरती उतरवाने की उसे बड़ी उमंग थी। स्वामीराय के निधन वाले वर्ष में घर में शोक होने के कारण उसने किट्टी को दीवाली की आरती के लिए देसाई के घर भेज दिया था। वही परिपाटी अब तक चली आ रही थी। इस बार भी देसाईजी के निमंत्रण का मान तो रखना ही था। 'नौकरी आते ही इन्हें घमंड हो गया,' उन्हें ऐसा कहने का अवसर नहीं देना चाहिये। वहां आरती करने जाना ही चाहिये, परंतु उसकी यह भी इच्छा थी कि घर में उससे पहले चुपचाप आरती हो जाय। इसीलिए उसने पड़ोस के काशी की मां और उसके छह वर्ष के बेटे और उसके पति को साढ़े पांच बजे ही नाश्ते के लिए बुला लिया था। वे आये। उन्होंने गीत भी गाये। तेल और कुंकुम लगाया और किट्टी की आरती की। उस दिन गंगव्वा ने गरीब काशी की मां को किट्टी के हाथों एक रुपया आरती की थाली में डलवाया। पंद्रह वर्ष के बाद घर में यह पहली आरती थी। गंगव्वा की आंखों से आंसू बहे चले जा रहे थे। सबके दिल भर आये। नाश्ते के समय काशी की मां ने बहुत ही तसल्ली दी परंतु गंगव्वा अपने को रोक न सकी और रसोई की चौखट पकड़ कर जोर से रो पड़ी। उसी के समान दुखी काशी की मां भी पल्ले की ओट में रो पड़ी। काशी की मां का अधपगला पति 'रोओ मत मां' कहकर तसल्ली देने लगा। किट्टी का भी दिल भर आया परंतु आंसू रोककर चुप रह गया।

इसके बाद देसाईजी के घर सदा की भांति आरती हुई। इस प्रसंग को किट्टी वहां आधा भूल गया। शाम को राघप्पा के घर की धमाचौकड़ी में एकदम भूल गया। अब आधा घंटा अकेले बैठने में सुबह की सब बातें किट्टी की आंखों के सामने नाचने लगीं। अंदर ही अंदर उसको बेचैनी लगने लगी। घर में भी

त्यौहार है। मां रास्ता देख रही होगी। खाना बनाकर बैठी होगी। किट्टी अपने को रोक न पाया। उसे लगा भीतर जाकर चंपक्का से कह दे 'घर में भी त्यौहार है, खाना न खा पाऊंगा।' वह तेजी से चंपक्का के कमरे में गया।

कमरे में चंपक्का नहीं थी। रत्ना अकेली एक बड़ा शीशा दीवार से टिका कर अपने हलके भूरे बालों के गुच्छों को अपनी उंगलियों में कभी दायीं ओर कभी बायीं ओर घुमाती, अपने बहुविध सौंदर्य में आसक्त स्वयं ही आनंदित होती—सृष्टिकर्ता की भांति प्रयोग करती हुई बैठी थी। उसके हल्के भूरे घने केश अत्यंत आकर्षक थे। उसने अपने आपको एक बार मुस्करा कर देखा और एक बार तिरछी नजर से देखा।

इस सौंदर्य-सेवा को देखने का धैर्य किट्टी में न था, इसलिए वह हल्का-सा खांसा। रत्ना ने मुड़कर देखा और हड़बड़ा कर बालों को लपेट कर एक ओर हो गयी। किट्टी ने संकोच से कहा——

"मैं खाने के लिए घर जाऊंगा।"

कितनी भी शर्मीली लड़की क्यों न हो, भोजन के लिए आग्रह किये बिना कौन चुप रहेगी?

"खाना खाकर जाइये।"

"बड़े अधिकार से बोल रही हो।" किट्टी ने व्यंग्य से कहा। पंद्रह वर्षीय उस सरल लड़की को यह व्यंग्य समझ में न आया।

"हमारे घर में ही हमें खाना खाने को कहने का अधिकार नहीं क्या?" परंतु अपनी बात को पूरा समझाये बिना किट्टी को चैन न आया। "तुम्हारी शादी मुझसे होने वाली है तुम्हें पता है?"

"वह सब वे लोग जाने।" नीरस सी रत्ना बोली।

"पान के बीड़े में मिर्चे खिलाने वाली के साथ शादी कैसे होगी।"

"मैंने नहीं डाली। गोदावरी ने डाली होगी। मुझे पता ही नहीं था।"

"किसी ने भी डाली हों। मुंह तो जल गया।" कहकर किट्टी उसके लाल होठों की ओर ताकने लगा।

"इसलिए तो खाना खाकर जाने को कह रही हूं। करि कडुबु[1] बनाया है।"

---
[1]चावल के आटे का तिल भरा एक मीठा पकवान।

"तुम्हारे पिताजी ने तो शादी करने को हां कर दी है और तुमने ना कर दी तो ?"

रत्ना को अब उस बात का व्यंग्य समझ में आया। थोड़ा सोच कर बोली—

"मेरी बात छोड़िये, आपकी माता जी क्या कहती हैं पहले पूछ लीजिये, वही मुख्य हैं आपके लिए ?"

मां की बात यहां उठने की संभावना ही किट्टी को न थी। उसका मुंह उतर गया। अपनी रसिक बातों को नीरस बना कर गद्य के स्तर पर ले आने वाली इस काव्य-प्रतिभा की बातों की तह तक वह पहुंच न सका।

सौभाग्यवश चंपक्का हिचकियां लेती वहां आ पहुंची तो यह वार्तालाप वहीं रुक गया। किट्टी चंपक्का से बोला "आज त्यौहार है, घर ही जाऊंगा खाने के लिए।"

"क्यों ? यह घर नहीं है क्या ?" चंपक्का ने पूछा।

"हां, है। ऐसी बात नहीं। मां रास्ता देखती होगी। फिर आऊंगा।"

"नहीं खाना बन चुका है, उनके आते ही लग जायेगा।"

इतने में राघप्पा आन पहुंचा। उससे चंपक्का ने किट्टी की बात कही। किट्टी को बोलने का मौका न देकर राघप्पा छिः ! छिः ! किटण्णा ना मैं पराया हूं न तुम्हारी मां। तुम्हारी मां और मुझमें अंतर क्या है ? दोनों ही घर तुम्हारे हैं। कभी कभार तो आये हो खाना खाकर ही जाना होगा। कई बार चाय पर बुलाया उसके लिए भी नहीं आये। फिर कब आओगे। क्या भरोसा ? "चलो बैठो।"

किट्टी कोई और रास्ता न देखकर खाने के लिए बैठ गया। राघप्पा ने भोजन करते हुए कई मजेदार गप्पें सुनायीं। किट्टी को उनमें कोई रस न आया। भोजन समाप्त होते ही तेजी से घर की ओर चल पड़ा।

उसके घर छोड़ते ही राघप्पा पत्नी की ओर घूमकर मुस्कराता हुआ बोला, "आज मेरी चोट जाकर गंगा तक पहुंचेगी।" यह सुनकर पत्नी निर्विकार भाव से चुप रही।

किट्टी के घर पहुंचते-पहुंचते एक बज गया था। गंगव्वा भी कडुबु तैयार करके

रास्ता देखती, कई बार घर के पास के चौक तक जा जाकर थक कर बैठी थी। किट्टी के हड़बड़ाकर आते ही वह बोली, "इतनी देर। किट्टण्णा खाना ठंडा होकर सूख कर लकड़ी हो गया।"

"नहीं। मैं खाना खा आया। एक मित्र ने छोड़ा ही नहीं। जबर्दस्ती खाना खिला कर भेजा। तुम खा लो मां।"

इस पर गंगव्वा दुख से बोली "अरे। इतना सब बनाकर रखा था कि किट्टण्णा आता होगा। अभी आया... अभी आया... सोचकर रास्ता देखती थी, तू खाना खाकर आया है? ...क्यों किसने खाने को बुलाया था? उन्हें क्या पता नहीं कि दूसरों के घर में भी त्यौहार है। बड़े अच्छे हैं तुम्हारे दोस्त (कुछ ख्याल आते ही) किट्टी सच बोल? कहां गया था? राघू के घर गया था ना?"

अब तक मां के लिये जो सहानुभूति थी। वह अंतिम बात से जाती रही।

रुखे स्वर में बोला "हां"।

"अच्छा! जो होता है होने दो। स्त्री का जन्म ही भगवान ने रोने के लिए बनाया है। अच्छा भुगतूंगी।" कहकर भीतर जाकर बिना कुछ कहे चावल परोसे। तीव्र संताप से सिर घूम रहा था। दो कौर निगलने के लिए चार गिलास पानी पीना पड़ा। और दो कौर खाते-खाते उठकर मोरी पर उलटी कर दी, जो कुछ खाया सब निकल गया। सारा मुंह कड़वा हो गया।

मां के विचारशून्य दुख से चिढ़ा हुआ किट्टी मां के खाना बीच ही में छोड़कर उठने से दुखी हुआ। अब तक वह चुप्पी साधे था, पर अब उठकर भीतर आया और आग्रहपूर्वक बोला, "मां तुम एक ही वार खाती हो फिर से खा लो न। रात को खाओगी नहीं।"[1]

किट्टी के मुख से ऐसी बात दो वर्ष में पहली बार निकली थी। इतने में ही उसका दिल पिघल उठा।

"यह कैसे हो सकता है भैया! हमें तो एक ही वार खाना है। भूख लगी तो रात को एक मुट्ठी चूड़ा खा लूंगी।" कहकर जूठे बरतन मांजने उठ बैठी।

राख की गर्मी में रखा कडुबु से भरा पीतल का डिब्बा उसे चिढ़ा रहा था।

---

[1]दक्षिण में विधवायें एक ही समय खाना खाती हैं।

15. देसाईजी का प्रयास

गंगव्वा ने इस बार देसाईजी को एक बड़ा दायित्व सौंप दिया। उसने जो कुछ हुआ था उसे आदि से अंत तक सुनाया। त्यौहार के दिन किट्टी को उसके घर में भोजन करने न देकर राघप्पा ने उसे एक अंदरूनी चोट पहुंचाई थी। पर जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। उससे समय पर चेतावनी मिल गयी। उसने सोचा कि बात हाथ से छूटने से पहले किट्टी के लिए दूसरे स्थान पर कन्या ढूंढ़ लेनी चाहिए।

"मैं सोच रही थी कि नौकरी लगे अभी चार दिन हुए, जरा स्थिर हो जाय तो शादी करें। पर गोपण्णा, अब रंग-ढंग देखने से ऐसा लगता है कि राघू की योजना कामयाब होती जा रही है। वह कुछ खिला-पिला भी सकता है। भैय्या, सच तो यह है कि मुझे डर लगता है। मैं सोच रही थी कि किट्टी मेरा अपना लड़का है... पर अब जाने दो। अब किसी प्रकार उसके लिए एक कन्या की खोज करो। कुछ भी हो, एक बार बात पक्की करके परिस्थिति सुधरने पर विवाह कर देंगे।"

देसाईजी के पास किट्टी के लिए अनेक रिश्ते आये थे। पर गंगव्वा ने बात नहीं उठाई थी। इसीलिए वे चुप थे। उनमें उनके एक गरीब दोस्त दुंदूर शिवप्पा की पंद्रह वर्ष की लड़की उन्हें जंची थी। थोड़ी काली होने पर भी लड़की का लड़की का नखशिख सुंदर और स्वास्थ्य भी अच्छा था। लड़की घर के काम-काज में होशियार थी। गंगव्वा को सुख देने वाली लड़की थी। देसाईजी ने उसे देखते ही सोचा था कि यदि हो सके तो संबंध करा ही देना चाहिये। इससे गरीब दोस्त का भी उपकार हो जायेगा। देसाईजी ने गंगव्वा को शिवप्पा की बेटी के बारे में विस्तार से बताया। यह सुनकर गंगव्वा की लार टपकने लगी। परंतु दुंदूर शिवप्पा कट्टर और कर्मठ ब्राह्मण था। गरीब होने पर दरिद्र न था। साथ ही वह उदार व्यक्ति था। घर में अग्निहोत्र करता और स्वयं वेदांती भी था। गंगव्वा यह सब सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। देसाईजी के पास रखी जन्मपत्री मिलाने पर ठीक से जंच गयी।

गंगव्वा ने सामने खड़ी होकर देसाईजी से दुंदूर शिवप्पा को कन्या दिखाने के लिए सपरिवार आने के लिए पत्र लिखवाया।

रविवार के दिन प्रातःकाल से गंगव्वा देसाईजी के घर कई चक्कर काट आयी। इससे अनजान किट्टी को यह रहस्य समझ में न आया परंतु दस बजे के करीब देसाईजी के यहां से किट्टी को बुलावा आया। देसाई के घर से बुलावा आने पर सदा झपटकर किट्टी के पास आने वाली मां आज अनजान सी रसोई में जाकर कुछ उठा पटक करने लगी। देसाईजी के घर आना-जाना किट्टी से कुछ छूट सा गया था। इन दिनों उनके बुलावे के बिना वह उनके घर गया ही न था। दीवाली के दिन भी प्रतिवर्ष की भांति वह आरती के लिए उनके घर गया तो था पर देसाईजी ने उससे कोई विशेष बात नहीं की। वसंतराव की बात न उठ जाय इस डर से इन दिनों देसाईजी दूसरों से कम बात किया करते थे। इस समय उन्होंने क्यों बुलाया, यह सोचता हुआ किट्टी चप्पल पहन कर नंगे सिर ही उनके घर की ओर चल दिया। इतने में गंगव्वा रसोईघर से दौड़कर बाहर आयी और बोली, "क्यों किट्टी देसाईजी से मिलने के लिए टोपी पहनकर क्यों नहीं जाते ?"

शिवप्पा का पूजापाठ अभी निपटा नहीं था। बैठक में देसाईजी ने अकेले ही किट्टी का गंभीरता से आदरपूर्वक स्वागत किया। इधर-उधर की बातें करके बाद में विषय पर आ गये। "दुंद्रूर शिवप्पा नाम का मेरा एक पुराना मित्र है। अच्छे घराने का। लड़की भी अच्छी है। उसका रिश्ता तुमसे कराने की इच्छा मुझे भी बहुत दिनों से ... है।

किट्टी बीच में ही बोला, "अभी मेरा शादी करने का विचार है ही नहीं।"

"तुम लोगों का तो कभी रहता ही नहीं। शादी के बारे में तुम लोगों को सोचना भी नहीं चाहिये। वह बड़ों की बात है। लड़की देखकर पसंद करने का काम तुम लोगों का होता है।"

"पर गोपण्णा जी ! जब तक नौकरी पक्की न हो जाय तब तक शादी न करने का मेरा विचार...।"

"हां यह तो ठीक है। शादी करनी हो तो सब बातें सोचनी ही पड़ती हैं पर लड़की देखकर बात पक्की कर छोड़ने में क्या बाधा है ? नौकरी तो कुछ दिनों में पक्की हो ही जायेगी।"

"अभी देखने से लाभ ?"

किट्टी ने पहली बार देसाईजी से इस तरह से बातें की थी। उसके विचार

इतने दृढ़ भी हो सकते हैं इसका अनुभव अभी तक देसाईजी को न था। वह थोड़े आक्रोश से बोले—

"तुम नहीं चाहते तो न देखो। मैंने सोचा था कि बेचारा ब्राह्मण रेल का किराया खर्च करके आया। देखने की बात हो जाती तो एक काम निपट जाता। अब आगे तुम लोगों की मर्जी।"

देसाईजी के असंतोष के सामने किट्टी को मुंह खोलने का साहस न हुआ पर फिर भी अपने में बड़बड़ाता सा बोला, "आप कहते हैं तो देख लूंगा।"

फिलहाल काम चलने दो यह सोच कर देसाईजी ने तसल्ली की सांस ली।

इतने में पूजापाठ समाप्त करके विभूति मंडित शिवप्पा नंगे शरीर बाहर आकर बैठक में बिना दरी वाले कोने में पांव के बल दीवार से पीठ टिका कर बैठ गया। देसाईजी ने पनडिब्बे से दो पान, सुपारी, और तंबाकू की डिबियां उनके कोने की ओर खिसका दीं जहां वे छूतछात से डरे बैठे थे। हाथ में पूजा की अंगूठी, माथे पर त्रिपुंड, गले में रुद्राक्ष कसा हुआ ठिगना शरीर। यह सब देखकर किट्टी में उनके प्रति आदर भाव तो आया पर उन्हें ससुर के रूप में स्वीकार करने के लिए उनमें कई खामियां दिखायी दीं। इस त्रिपुंडधारी का तहसीलदार से परिचय संभव नहीं। बहुत हुआ तो उनके कुल देवता तक उनका परिचय होगा। इस चोटी और लंगोटीधारी कृष्णकाय के साथ राह में निकलना मुश्किल होगा।... ये ही ऐसे हैं तो इनकी बेटी कैसी होगी? ये कहां और मानचेस्टर की धोती पहनने वाले गौर वर्ण छह फुटे राघप्पा कहां? आदि।

देसाईजी ने संक्षिप्त परिचय करा दिया। शिवप्पा को इधर-उधर की चिकनी-चुपड़ी बातों में रुचि न थी। सीधा अपने विषय पर आ गया। वह बोला, "देखिये अभी किसीको खाना खिलाने के लिए कह दो तो अकेली तैयार कर देगी। यह एक बात में बड़े अभिमान से कह सकता हूं। बाकी आप लोग जानें।" और कुछ कहे बिना ही ताली बजाकर "कृष्णा इधर तो आ बेटी!" पुकारा।

अपनी मां और भाई-बहिनों के पीछे-पीछे कृष्णा आयी। शिवप्पा को एक और बात पर बड़ा अभिमान था। वह बोला, "देखिये हमारे घर के सभी लोग काले हैं मैंने सभी के नाम उनके मुताबिक ही रखे हैं। यह कृष्णा है, उससे छोटा कालिंग है। उससे छोटी श्यामला है और उससे यह गोदी का बच्चा घनश्याम

है। कृष्णा ही इन सब में थोड़ी कम काली है।" उसी क्रम में शिवप्पा के बच्चे दरी पर बैठ गये। घनश्याम भी उसका नाम लेते ही मां की गोदी से पिता के पास जाने को हाथ बढ़ाने लगा। परंतु पिता के छूतछात के डर से श्यामला ने उसे उठा लिया। स्त्रियों का छोटा-सा झुंड दरवाजे के पीछे से झांक रहा था। उनकी अगुवा थी वेणुबाई। कृष्णा कुमारी भी एक दीवार के पास पांव के बल मुंह नीचा करके बैठ गयी।

वेणुबाई अपनी जगह से ही बोली, "देखो भैया तुम तो कृष्ण हो यह कृष्णा है हम सबको यह जोड़ी बड़ी पसंद आयी है। तुम्हारी मां सुबह ही देखकर खुशी-खुशी गयी है।" इस पर किट्टी ने कोई उत्तर न दिया।

सब और चुप्पी छा गयी। देसाईजी ने ही एक-दो प्रश्न पूछने की रस्म अदा की।

तुम्हारा क्या नाम है, कहां तक पढ़ी हो, गाना आता है आदि-आदि। उसने एक भजन सस्वर गाया। आवाज़ बहुत मीठी न होने पर भी स्वरबद्ध थी। देसाईजी ने और आगे न पूछ कर कृष्णा को भीतर भेज दिया। सबने सोचा काम ठीक ही हो गया। शिवप्पा ने आगे की बात किट्टी को सुना कर देसाईजी से कही, "देखिये अपनी योग्यता के अनुसार सब करूंगा और एक हजार रुपये वरदक्षिणामें दूंगा ...।"

"ठीक है पर मेरा विचार अभी विवाह करने का नहीं है।" किट्टी ने यह वाक्य इतने धीरे कहा कि केवल देसाईजी ही सुन पाये। इस वातावरण में बात आगे बढ़ाना उन्हें उचित न लगा। दरवाज़े के पास खड़ी गंगव्वा को इशारा करके नाश्ता परोसवा कर उस दिन का कार्यक्रम समाप्त किया। इसके बाद किट्टी को घर जाने की आज्ञा मिल गयी।

किट्टी घड़घड़ाता हुआ हुआ घर आते ही ताला खोल कर अपनी कुर्सी पर बैठ गया। उसे लगा कि यह सब उसकी मां और देसाईजी का मिल-जुल कर किया षड्यंत्र है। मां तो मूर्ख ठहरी पर देसाईजी को भी बात समझ में नहीं आती क्या? उन्होंने कभी एक बार उपकार कर दिया तो क्या मुझे शादी के मामले में भी चुप रहना होगा? तुरंत सोच-विचार कर एक पत्र लिखकर देसाईजी को भेजने को सोचा। काशी की मां की बेटी के हाथ में देकर देसाईजी के हाथ में ही देने को कहकर भेज दिया।

श्रीमान्,

आदरणीय गोपण्ण जी की सेवा में चि. कृष्ण जी का सांष्टांग नमस्कार। आपने मेरे विवाह कराने का जो विचार प्रकट किया है, उसके लिए मैं अत्यंत आभारी हूं। परंतु मुझे खेद है कि इसमें आपका परिश्रम व्यर्थ जायेगा। अतः कृपया आप इसमें आगे अपना परिश्रम फिलहाल बंद कर दें। जब मुझे विवाह करने की इच्छा होगी तब मैं आपको बताऊंगा।

आपका नम्र बालक

कृष्ण जी

विशेष सूचना——इस बारे में मैं आपसे स्वतः मिलूंगा।

कृष्ण जी

पत्र के रूप को देख कर देसाईजी ने अपने आपको अपमानित महसूस किया। उसे किसीको भी न दिखा कर अपनी तिजोरी में संभाल कर रख दिया मानो कुछ हुआ ही न हो। अकेले शिवप्पा को घर में दो दिन ठहरा कर उससे ग्रह शांति करायी। गांव जाते समय शिवप्पा ने अर्ध-संशय से शादी की बात फिर उठायी तब देसाई बोले, "अरे छोड़ो भी, इस बहाने तुम एक बार मेरे घर तो आ सके, यही संतोष की बात है। वैसे बुलाता तो तुम आते क्या ? अपना पूजा-पाठ छोड़ कर ?" इतनी ही ऊपर-ऊपर से बातें कह कर भेज दिया। उन्होंने गंगव्वा से भी इस बारे में अधिक बात नहीं की।

गंगव्वा ने किट्टी को दो-तीन दिन घर में खूब तंग किया। 'इस तरह चार साल और बीत गये तो कोई लड़की न मिलेगी तुझे।' कहकर उसने उसे डराने की कोशिश की। इस खिटखिट से बचने के लिए किट्टी रात को देर से घर आने लगा। सब की बातों का उसका वही दो टूक जवाब था——"अभी मेरा शादी का विचार नहीं है, नौकरी पक्की हो जाय तो देखूंगा।"

16. देसाईजी का पुनः प्रयास

किट्टी बहुत परेशान रहने लगा। राघप्पा ने एक बार मां के सामने शादी की बात उठाने के बाद पुनः बात उठायी ही नहीं परंतु अप्रत्यक्ष जाल उसके चारों ओर फैला दिये थे। किट्टी जब कभी भूले-चूके राघप्पा की गली से गुजरता तो पास-पड़ोस की स्त्रियां उसकी और उंगली दिखा कर कहती 'यह रत्ना का वर है।' दीवाली में इतना सब होने पर भी स्वयं राघप्पा ने इस बारे में एक शब्द भी नहीं कहा था। दिन बीतने लगे। राघप्पा, तहसीलदार से जान-पहचान जिलेदार से दोस्ती, जागीरदार साहब के दत्तक लेने की बात, इन्हीं बातों की ही डींग हांकता, रत्ना की बात ही न करता। रत्ना ने भी दीवाली के उस प्रसंग के बाद, किशोरावस्था के पार कर लेने के कारण या मां की आज्ञा के कारण, किट्टी के सामने पुनः खड़े होकर बात नहीं की। इस प्रकार प्रणयलोप हो जाने के कारण किट्टी दुखी हो गया। रत्ना दिन प्रतिदिन सुंदर होती जा रही थी। आज की रत्ना कल दूसरी-सी दिखती। केवल वेषभूषा से ही नहीं शरीर के प्रत्येक अंग से। उस दिन किट्टी से बात करते समय जो साहस था वह हवा में उड़ गया था। वह उसे देखते ही लज्जा से पर्दे के पीछे छिप जाती। इसमें ही किट्टी को बहुत से छोटे-मोटे परिवर्तन नजर आये। उसके ओठों पर जो पहले बचपन की सफेदी थी वह जाकर अब पके फल के रसीलेपन-सी दिखने लगी थी। आंखों में एक नयी चमक आ गयी थी। गाल और गर्दन पर हाथी दांत जैसी शुभ्रता आ गयी थी। आंखों से दूर रहने पर भी वह किट्टी के मन में स्पष्ट दिखने लगी थी। बहुत दिन से किट्टी का बेचैन मन बहाने खोज रहा था पर उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का साहस उसमें न था। देसाईजी के घर में लड़की दिखाने की जो घटना हुई थी उससे उसे एक बहाना मिल गया। एक बार रास्ते में भेंट होने पर किट्टी ने राघप्पा से कहा--

"देसाईजी एक लड़की से शादी का आग्रह कर रहे हैं।"

"कौन देसाई ?" राघप्पा ने मुख्य प्रश्न को एक तरफ करते हुए पूछा।

"हमारे घर के पास वाले वहादुर देसाईजी, सफेदी वाले घर के मालिक।"

"तो यह बात है ? ..."

वह मौन रहा। फिर बोला—

"अभी मेरा विवाह का विचार नहीं है। यह मैंने उनसे कह दिया है।"

"तो फिर कब करने का विचार है?"

"नहीं, नहीं, उनसे ऐसे कहा है किट्टी ने शरमाते हुए कहा।"

"तो मैं...।" पता नहीं राघप्पा आगे क्या कहना चाहता था, परंतु अपने ऊपर संयम वाले किट्टी को मानो इस अर्ध उच्चारण से बात करने का अवसर दे दिया।

"नहीं-नहीं आपको चिंता करने का कोई कारण नहीं। मैंने सोच लिया है कि यदि वे दुबारा जोर दें तो मैं कह दूंगा कि आपकी बेटी के अलावा किसी दूसरी से शादी नहीं करूंगा। परंतु उन्हें बुजुर्ग समझकर चुप रह गया।"

राघप्पा इतने दिन इन्हीं बातों की प्रतीक्षा कर रहा था। आज उसके किये उपाय की कोपल फूट पड़ी। उसके मुख पर खुशी की मुस्कान नाच उठी।

राघप्पा ने पूछा, "यह बात पक्की है ना?"

"क्यों आपको संदेह था?"

"नहीं गंगव्वा का इस बारे में क्या विचार है।"

"इस बारे में भी मैंने सोच लिया है। मां देसाईजी की बात नहीं काटती है। खास बात नहीं काटती है। खास बात देसाईजी को मनाने की है। उन्होंने अगर मान लिया तो मां ने भी मान लिया समझिये।"

राघप्पा ने कुछ देर तक गंभीरता से सोचा। बाद में उससे देसाईजी का अता-पता, स्वभाव, उनके मित्र आदि के बारे में पूरी-पूरी बातें जानकर, वह आगे के कार्य के लिए तैयार हुआ।

राघप्पा की अगली समस्या बहुत नाजुक थी। उससे देसाईजी का प्रत्यक्ष परिचय न था। देसाईजी के जान-पहचान वाले किसीको ले जाया जा सकता है। अकेला भी जा सकता था पर उसे इस बात का भी डर था कि गंगव्वा ने उसके बारे में उनसे काफी कुछ कहा होगा। यदि किसीको साथ ले जाय तो संभव है कि गंगव्वा के साथ हुई सभी पुरानी बातें प्रकट हो जायेंगी और उसकी इज्ज़त मिट्टी में मिल मिल जायेगी। इस प्रकार बहुत सोचविचार के बाद उसने अकेले ही

जाने का निश्चय किया। किट्टी के आफिस के समय को ध्यान में रख कर एक दोपहर तीन के करीब उसने देसाईजी का दरवाज़ा खटखटाया।

देसाईजी लगभग उसी समय नींद से उठकर हाथ-मुंह धोकर समाचार-पत्र को दुबारा देखने लगे थे। उन्होंने उठकर द्वार खोला और कहा, "आइये, आप कौन हैं ?" राघप्पा ने कोई जवाब दिये बिना उन्हें दंडवत नमस्कार किया। यह सब नाटकीय-सा दिखने पर भी उन्हें पांव छुवाने का बहुत अनभव था। गांव के किसान ही नहीं, नौकरी के लिए सहायता और कर्ज मांगने के लिए आने वाले सु-संस्कृत भाग्यहीन भी उन्हें अकसर दंडवत किया करते थे। उन्होंने एकदम झुककर राघप्पा को उठाते हुए "अरे, इस प्रकार हरएक के पांव नहीं पड़ा करते" अपने कमरे में ले गये। राघप्पा सिसकियां लेने का सा नाटक करते हुए बोला—

"राय साहब मुझे संकट से उबारने की शक्ति केवल आप में ही है, इसीलिए आपकी शरण आया हूं।"

"मेरा नाम बिदगोळ राघप्पा है। आपकी पड़ोसन गंगव्वा मेरी बहिन है। (देसाई का मुंह बिचकाना देखकर अनदेखा करते हुए राघप्पा ने अपनी बात जारी रखी) उसका और मेरा मनमुटाव हुए दस वर्ष बीत गये हैं पर भगवान का खेल देखिये मुझे अपनी बहिन से फिर मिलने के लिए आप जैसे बड़ों के पांव पकड़ने का मौका मिला। जब तक बिदगोळ में था तब तक कभी सपने में भी न सोचा था कि ऐसी स्थिति आयेगी। गांव छोड़ बच्चों को दो अक्षर सिखाने को यहां लाया तो यह सिर पड़ा" यह कहकर उसने लंबी सांस ली।

देसाईजी की आंखों से परदा हटा। वे समझ गये कि बात क्या है। साधारण सी दुनियावी बात के लिए इतने नाटक की आवश्यकता न थी। अंतिम परिणाम को ध्यान में रखकर जहां तक हो सके वे सब कुछ सुनने को तैयार हो गये। इस कारण इस नाटक को सह गये।

"क्यों ? अब क्या हुआ ?"

"यहां आने के बाद अकस्मात मेरी अपने किटण्णा से भेंट हो गयी। खून का रिश्ता है कितना भी क्यों न हो मन कैसे मान सकता है, देखिये। गंगव्वा तो औरत है, अपनी अकड़ छोड़ती नहीं। लड़के के साथ तो कम से कम पहले का सा रिश्ता चले यह सोचकर किटण्णा को तीन चार बार नाश्ते के लिए घर ले गया।

यह पता था कि गंगव्वा नाराज होगी फिर भी ले ही गया क्योंकि मेरे निपूते के घर लड़का नहीं है। किटण्णा के देखते ही मन में कुछ होने लगता है। पर करने कुछ गया था हो कुछ गया। क्या हो गया अब बताने से फायदा नहीं ? गंगव्वा भला, क्यों छोड़ देगी ? पर आप जैसे महानुभाव तो कहेंगे जो भी हुआ अच्छा ही हुआ। यह किटण्णा मेरी बड़ी लड़की रत्ना से शादी करने के लिए पीछे पड़ा है। ... यह बात नहीं कि उसे बेटी देने की मेरी इच्छा न थी देसाईजी। परंतु मुझे सपने में भी गुमान न था कि किटण्णा ऐसा हठ पकड़ लेगा। यह तो हुई किटण्णा की बात। इधर यह बात बाहर गली में फैल गयी है और मेरी रत्ना को उसकी सहेलियां 'यह तेरा पति है' कहकर मजाक उड़ाती हैं। यह बात बार-बार उसके दिमाग में ठूंस दी गयी है।

वैसे देखा जाय तो सब लोगों को बड़ी खुशी से इस विवाह की बात को मान लेना चाहिये। खून का रिश्ता है राव साहब। लेकिन गंगव्वा को मेरे बारे में संदेह है। क्यों ? मुझे कुछ भी पता नहीं। हमारी गंगव्वा वैसे इतनी कठोर नहीं है राव साहब। वह कितनी उदार मन वाली है यह बात मुझसे छिपी नहीं है। मेरी शादी में बड़े उत्साह से खाने-पीने का इंतजाम किया, ब्राह्मणों को दक्षिणा देने के समय स्वयं उसने अपने हाथ से दो रुपये और दक्षिणा हरएक को दी। ... पर भाग्य ही खराब है। उसका भी खराब है हमारा भी। उसके दिन बिगड़ जाने के बाद उसे सब पर एक प्रकार का विचित्र शक सा बैठ गया है कि इन्हीं लोगों के कारण मेरा घर बिगड़ गया। इसे मैं उसकी गलती नहीं मानता। बड़ी-बड़ी मूंछों वाले तक पैसा खोकर पागल हो जाते हैं, वह तो ठहरी, असहाय औरत जात। छह महीने में ही पैसा गया, संपत्ति गयी, पति गया तो उसकी क्या गलती है। आप जैसे बड़े उसे तसल्ली देने को उसके पास थे। रिश्तेदार तो उसे जंचे नहीं। खैर भाग्य के आगे किसकी चलती है।

अब मेरा ही हाल देख लीजिये। इधर किट्टी मेरी जान खा रहा था। ऊपर से उसने बताया कि आपने उसे एक लड़की दिखाई। यह ठीक है कि आप जैसे बुजुर्ग उसकी भलाई के लिए सोचते हैं। यही सोचकर मैं अपनी सगी बहिन के पास नहीं गया, आपके पास आया। उधर वह पगली लड़की रत्ना... अब तक तो ठीक है पर आजकल की लड़कियां नाटक सिनेमा देख-देखकर एक नमूना बनी रहती

हैं। कल अगर गंगव्वा के कारण या और किसी कारण यह विवाह करने से इंकार कर दे तो रत्ना अपनी सहेलियों के बीच कैसे जिंदा रहेगी। चार आदमियों को कैसे मुंह दिखा सकेगी। ... इस पर स्त्री का कोमल मन, छोटी उमर, उतावला स्वभाव, बड़ी आफत है। ऐसा नाजुक मौका आन पड़ा है कि भगवान ही बचाये...।

राव साहब ! यह बात भी महत्व की नहीं है। इन सबको मैं किसी तरह निभा ही लूंगा। खास बात यह कि आप एक देख लीजिये... वैसे किट्टी की जिम्मेदारी आपने ली है इसलिए अपनी बेटी एक बार आपको दिखाऊंगा। आप जैसे चाहें उसे जांचिये। आपके मन को तसल्ली होने पर ही आप इस संबंध के लिए 'हां' कहिये। एक बात और भी है। खून का रिश्ता खून का ही है। गंगव्वा, चाहे मेरे लिए जितना भी जहर उगले परंतु किट्टी को देखते ही मेरा दिल भर आता है। मेरी आंतें खिचने लगी।... मेरी रत्ना तो रत्न के समान ही है यह बात नहीं कि मैं ही...।"

इस समय तक राघप्पा की नजर दरवाजे के पास खड़ी सारी बातें सुन रही वेणुबाई पर पड़ी। राघप्पा ने एक क्षण के लिए बात रोक कर एक बार इधर और एक बार उधर देखा फिर अपनी बात जारी रखी। वेणुबाई अपने पति को उस बातूनी की बातें मुंह बाये सुनते देखकर सह न पायी। वह बीच में ही बोल पड़ी—

"हमें क्या है जी, छोड़िये, किट्टी किसी को भी ब्याहे, हमें क्या लेना देना है, पर बेचारी गंगव्वा ने बड़ा दुख देखा है। बेटे का नाम लेते ही जान देती है। उसने जो दुख उठाये हैं वह हमने अपनी आंखों से देखे हैं। इतना साहस करके यहां तक पहुंचाया। उसे थोड़ा सुख मिले यही हमारी इच्छा है।"

यह बात देसाईजी के मन को ठीक लगी, जहां तक हो सके उस काम में हाथ न डालने के विचार से वेणुबाई का अंतिम शब्द 'हमारी इच्छा' उन्हें पसंद न आया। वे बोले "हमारी न कोई इच्छा है न स्वार्थ।"

"वैसे कोई पूछे, गंगव्वा हमारी क्या लगती है और कृष्ण भी क्या लगता है ? फिर इस मामले में हम पहले हाथ ही डालना नहीं चाहते हैं। आप गंगव्वा से मिल कर मनवा लीजिये। चाहें तो विवाह में हम आशीर्वाद देने को अवश्य चले आयेंगे।"

"राव साहब ! वास्तव में उस लड़के का भला करने वाले आप ही हैं। यदि आप न होते तो बेचारी गरीब गंगव्वा क्या कर सकती थी।" देसाईजी बीच में उठकर बाहर चले गये। राघप्पा ने वेणुबाई से बात जारी रखी। "आप लोगों ने उस लड़के के लिए क्या-क्या किया है। यह वह लड़का स्वयं ही बता चुका है। बाकी लोग भी कहते हैं, सारी दुनिया ही कहती है। वह लड़का तो आप पर भरोसा रखे हुए है।" देसाईजी अब अपने को रोक न सके। उठकर उन्होंने तिजोरी खोली और किट्टी का भेजा पत्र बाहर निकाल कर राघप्पा की बात समाप्त होते ही उसकी नाक के तले धर दिया।

चिट्ठी को देखकर राघप्पा तनिक हिचकिचाया, परंतु फुटनोट देख उसे एक सहारा मिला। वह फिर बोला "हां हां किट्टण्णा कह रहा था देसाईजी मेरे लिए लड़की देखने का कष्ट कर रहे हैं, पर मेरा मन रत्ना की ओर खिंच रहा है। उनसे यह बताने का साहस नहीं है। फिर साहस करके उनसे इस विषय में आशीर्वाद ले ही लूंगा।" आपके लिए इतना आदर और डर दोनों ही हैं उसमें।

बच्चों की तरह बहलाने के इस ढंग से देसाईजी परिचित थे। परंतु परिणाम की ओर ध्यान देकर उन्होंने अपने क्रोध को पी लिया।

वे बोले : "इस पत्र का मतलब कुछ भी हो... पर गंगव्वा सुखी हो यही सब की तरह मैं भी चाहता हूं।"

"क्यों न होगी, रावसाहब। भगवान मुझ से झूठ न बुलवाये। मैं गंगव्वा से कैसे व्यवहार रखूंगा यह आप लोग देखेंगे। उसके उपकारों का बोझ मुझ पर बहुत है। क्या किया जाय कोई रास्ता न होने से चुप हूं। एक बात सिर्फ आप से कहता हूं... मेरी सिर्फ दो लड़कियां हैं। बड़ी को किट्टी को देकर गंगव्वा को पास लाना चाहता हूं। यह मेरा पहला इरादा है। दूसरी को अभी बड़ी होने में पांच छह वर्ष हैं। उसकी दो चार हजार खर्च करके अच्छी जगह शादी कर देने का मेरा दूसरा इरादा है। तीसरी बात यह है कि किट्टण्णा को दत्तक ले लूं... यह मेरी आंतरिक इच्छा है।... यह सच है गंगव्वा का एक ही लड़का है पर 'द्वायमुषायण' दत्तक हो सकता है। बहुत से लोगों का मैंने ऐसा दत्तक कराया है। मैं भगवान को साक्षी रखकर कह रहा हूं जरा भी धोखा नहीं दूंगा। अपने ही खून को मैं कैसे धोखा दे सकता हूं ? ... मेरी 1000 रुपये सालाना की आमदनी है। इन शादियों में थोड़ी

बहुत जमीन हाथ से निकल भी जाय तो भी कम-से-कम सात-आठ सौ की आमदनी तो रहेगी ही। इतना किट्टण्णा के सिपुर्द करके भगवान का नाम लेकर चार दिन जिएं और किट्टण्णा के बच्चों को खिलाकर आंखें मूंद लें यही मेरी और मेरी पत्नी की इच्छा है।...अच्छे स्वभाव का लड़का है। अपना ही तो है ना। मरने पर इसके हाथों हमें पिंड मिलेगा इस बात का हमें भरोसा है। यह मेरी आंतरिक बातें हैं। आपके सामने दिल खोलकर कह दी हैं। इधर छुरी है और उधर खरबूजा। आप चाहे जो कीजिये सब आप के हाथ में है।" तटस्थ मौन छा गया, यह देख राघप्पा अंतिम बाधा को हटा देने को उद्यत हुआ।

"अब आप यदि यह कहें कि यह सब बातें तुम्हीं अपनी बहिन से कहो तो मैं यही उत्तर दूंगा...यह कहने के बदले आप यहीं क्यों नहीं कह देते कि राघप्पा, तुम भले आदमी नहीं हो, तुम्हारी बेटी हमें पसंद नहीं, तुम लुप्तपिंड होकर मरो...। यह सब कह मुझे घर से बाहर कर दीजिये। इसमें भी मैं खुश हूं पर आप कहो कि जाकर अपनी बहिन को समझा ले तो वह मुझसे न होगा। वह आप जैसे बड़ों का काम है। क्यों भाई-बहिनों में झगड़े नहीं होते हैं क्या ? और आप जैसे बुजुर्ग बीच में पड़कर उन्हें निबटाते नहीं ? ... इतने आदमियों का भला करने वाला यदि मुझे खाली हाथ भेजे तो मैं इसे अपना दुर्भाग्य ही कहूंगा ?"

राघप्पा के तर्कों के चक्कर में पड़कर देसाईजी छटपटा उठे। उन्हें लगा जैसे उन्हीं की परीक्षा का समय आ गया है। दुंदूर शिवप्पा की लड़की होती तो बात ही कुछ और होती। अब एक पक्ष की ओर निर्णय देना होगा। इसमें नजर किट्टी की भलाई पर रखनी होगी। यदि किट्टी ने मूर्खता की है तो मुझे अपना विवेक नहीं खोना चाहिये। यह काम मुझ से हो पायेगा। लोग क्यों आकर मेरी जान खाते हैं। मेरी अपनी ही मुसीबतें काफी हैं ? यह सोचकर मन-ही-मन झुंझलाते हुए वे अंतिम काम के लिए तैयार हुए। गंगव्वा को बुलाने के लिए भरमा को भेज दिया।

17. गंगव्वा राघप्पा

भरमा से जो कुछ सूचना मिली उससे यह अनुमान लगा कर कि राघप्पा ही आया होगा, गंगव्वा तेजी से चलकर सीधी देसाईजी के कमरे के पास आयी और बाहर ही दीवार से टिक कर बैठ गयी। वेणुबाई ने कहा "गंगव्वा, भीतर आ जाओ।" वह वहीं बैठी रही। तब राघप्पा ने ही मुंह खोला, "गंगव्वा भीतर आओ। बाहर क्यों बैठ गयीं जवान लड़कियों की तरह ?"

"मैं यहीं ठीक हूं, भैया। जिसे जहां रहना चाहिये, वह वहीं रहे तो ठीक रहता है।" राघप्पा की चालाकी भरी बातें गंगव्वा की सीधी चोटों से हार जाती थीं। विश्व-विजेता राघप्पा को पता नहीं क्यों बहिन से कुछ डर-सा लगता था। अब तो जैसे खाई में खड़े होकर लड़ने वाले सिपाही की अपेक्षा टीले की ओट में खड़े सिपाही का वार अधिक घातक होता है, उसी तरह गंगव्वा का वार मानो दीवार की ओट में होने से अधिक गहरा लगा। देसाईजी की बात का उल्लंघन करके वह जहां थी, वहीं बैठी रही। सामने आकर बैठने को भी तैयार न हुई। उसे एक और भी डर था। छोटे भाई के सामने बैठने पर अगर कहीं उसे देखकर मन पिघल उठा तो क्या होगा। उसकी रंगीन बातों के जाल में अब वह नहीं फंसेगी। यही निश्चय करके वह घर से आयी थी। इसलिए उसे दीवार की ओट ही ठीक जंची।

देसाईजी ने औपचारिक प्रस्ताव किया। "गंगव्वा, तुम्हारे छोटे भाई से हमारा पूरा परिचय नहीं है पर इस एक घंटे में हमने इधर-उधर की और घर बार की बहुत बातें की हैं। उनका विचार है कि उनकी बेटी कृष्ण को ब्याही जाये। परसों शिवप्पा की बेटी कृष्ण को दिखायी थी। वह बात सुनकर ये यहां आये हैं। हम तुम्हारी राय जाने बिना कुछ नहीं कह सकते। इसीलिए बुलवाया है।"

राघप्पा बीच में ही बोल पड़ा "छि: छि: बिना गंगव्वा के आशीर्वाद के यह कैसे संभव हो सकता है।"

गंगव्वा तीखेपन से बोली, "मेरे आशीर्वाद की क्या आवश्यकता है। तुमने

तो अपना वरदहस्त उस पर रख ही दिया है।"

"वह बात छोड़ो गंगव्वा। चाहे जो भी हो आप लोग सगे भाई-बहिन हैं। आज झगड़ा करेंगे, कल फिर एक होकर हमीं से कहेंगे...। अब तुम लोग अपने मनमुटाव को भूल जाओ। असली बात पर आओ। तुम लड़की देखना चाहती हो क्या ?"

"गोपण्णा, बेकार की बातें क्यों करते हो ? मैं न उस लड़की को देखना चाहती हूं, न उसके बाप को। और उसको भी नहीं। इन लोगों को देख-देख कर तो मैं थक गयी हूं। सोचती हूं कब मेरी आंखें बंद हों।"

देसाईजी ने मुंह नीचा कर लिया। मेरे बोलने का समय आ गया है, यह सोचकर राघप्पा उठ खड़ा हुआ और दुपट्टा ठीक करता हुआ बोला—

"गंगव्वा, जो हो गया सो हो गया। बीती बातें भूल जाओ और मुझे अपना छोटा भाई समझकर जरा मेरी ओर देखो। कितने दिन गुस्सा करोगी ? बिना कारण का यह द्वेष क्यों ? पत्थर भी पिघल जाता है, देखो।"

"हां भैया राघू, मेरा ही दिल पत्थर का है। तुम्हारी दौलत देखकर, तुम्हारा वैभव देखकर, तुम्हारी रंडियों को देखकर मेरा मन पिघला ही नहीं। मैंने इतने दिन कष्ट उठाकर किट्टी को पाला-पोसा, इतना बड़ा किया। मैंने, अकेली ने, न कोई आगे न कोई पीछे। किसी के पांव पकड़े किसी की नौकरी की, किसी को संकोच में डाला और किसी से आग्रह करके क्या-क्या नहीं किया। तब तुम्हें कभी मेरी याद आयी ? भाई की सी कोई बात की तुमने। कभी पूछा क्यों बहन कैसी हो ? तुम्हारे घर में खाने-पीने को कुछ है कि नहीं ? एक दिन भी... अब उसकी नौकरी लगने के बाद मेरी याद आयी है। तब तेरे दिल में दया नहीं थी ?"

"गंगव्वा, तुमने शिकारी कुत्ते की तरह हमें घर के पास तक तो फटकने नहीं दिया। जूठी पत्तलों तक को तो देखने नहीं दिया। तुमने हमें अछूतों की तरह दूर रखा...।"

"अरे भैया, तुम क्यों अछूत बनो, अछूत तो हम हैं, जिन्होंने अपना पैसा गंवा दिया। पैसा होता है तो सभी अपने होते हैं, पैसा नहीं रहता तो कोई पास भी नहीं फटकता। यही दुनिया की रीत है।"

"मुझे दूसरों का पैसा काट खाने को आता है तुम चाहे मानो या न मानो। यही मेरा सिद्धांत है।"

बात सुनते ही गंगव्वा तिलमिला उठी। अब तक बातचीत आरोप-प्रत्यारोप तक सीमित थी। अब गंगव्वा एकदम गुस्से से कठोर हो गयी और दीवार के पास से उठकर द्वार पर बैठकर चिल्ला पड़ी।

"दूसरों का पैसा। तेरे पास पैसा था ही कब ? मुझे पता नहीं क्या...? सारे खेत गिरवी पड़े थे। हमारे बरबाद हो जाने के बाद तेरी जमीनें तेरे हाथ आयी। अरे छोड़ भी ये डींगे।"

"गंगव्वा ऐसी बातें क्यों करती हो ? तुम्हारा पैसा क्या हमने चुरा लिया या लूट लिया ? एक-एक बात को लो। तुम्हारी बरबादी से मुझे दुख नहीं हुआ तुम यही कहना चाहती हो न ?"

"मुझे बरबाद करने वाला तू ही है। हमसे जमानत दिलाने वाला तू ही है। उस हरामखोर वेंका को घर से भगाने वाला भी तू ही है। उस समय क्या तुझे पता था कि बहिन के गले में ही फांसी पड़ेगी ? तेरे कारण ही मेरे घर का सोना मिट्टी में मिल गया। मेरे पति को तूने ही निगल लिया। 'भैया रे।' दुनिया में हिस्सेदार तो रहते हैं। पर तेरे जैसे आदमी दिया जला कर ढूंढने पर भी नहीं मिलेंगे।"

"जरा ठहरो, गंगव्वा। पता नहीं अब फिर कभी हम मिलें या न मिलें। मुझे भी ऐसी बातें सुनते-सुनते बहुत दिन हो गये। अब देसाईजी भी साक्षी हैं। तुम्हारी हर बात का मेरे पास जवाब है। एक बार दोनों के मन की बातें साफ-साफ सामने आ जायं। इन्हें मन में जमा कर सड़ाने की जरूरत नहीं है। पहली बात गंगव्वा ! क्या वेंकाटी की जमानत देने से इनकार किया था ? मैंने अपने को पीछे रखकर स्वामीराय को आगे किया था क्या ? नहीं, जो आगे हुआ वह भगवान के हाथ की बात थी। इसमें मेरी क्या गलती है ? मैं जमानत देने के लिए स्वयं आगे बढ़ा था पर वकील ने कहा तुम्हारे खेत गिरवी पड़े हैं, तुम जमानत नहीं दे सकते। इस पर स्वामीराय एक बहादुर की तरह बोले, तुम क्यों चिंता करते हो ? मैं जमानत देता हूं, वह बात तुम्हें याद नहीं है ? कुटुंब की प्रतिष्ठा के लिए उस पगले की जमानत देने के लिए आगे

आया वह भला आदमी। वह तो प्रातः स्मरणीय है। वे होते तो तुम भले लाखों का नुकसान उठाती. पर हमारे ऊपर इस प्रकार जहर न उगलती। अब जाने दो बीती बातों से क्या लाभ ? मैं तो भगवान को ही कोसता हूं। मेरा भाग्य ही खराब था।"

"भैया रे, ये औरतों की सी बातें छोड़ो... इसी तरह की बातों से तुम कितनों को निगल गये और डकार भी नहीं ली। सारा गांव यह बात कहता है, मैं क्या कहूं ? ऐसी बातों में मैं आने वाली नहीं हूं।"

"जरा ठहरो, मेरी बात पूरी होने दो। आज साफ-साफ बातें हो जायें। जो कुछ मुझे कहना है वह सब तुम्हें सुना ही दूंगा। बाद में तुम चाहो तो भाई कहो, चाहे छोड़ दो। तुम्हें यह भ्रम है कि तुम लोगों को डुबोने के लिए मैंने वेंकाटी को भगा दिया। उसे भगाकर मुझे क्या मिलना था ? ... मैं उसे क्यों भगाता वह तो आधा पागल था। पता नहीं किसके पाप से वह पागल हुआ। यह सच है कि उस रात वह मेरे घर में सोया था पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं चौबीस घंटे उसकी निगरानी करता। या उसकी बांह में रस्सी डाल खंभे से बांधकर रखता ? ... रात के दस बजे थे। थोड़ा सा खाना खाया। फिर बोला, 'थोड़ा घूम आता हूं।' फिर लौटा ही नहीं, चला ही गया। आगे क्या हुआ मालूम है ? उसे खोजने के लिए स्वामीराय ने सौ रुपये देकर पूना भेजा। तुम्हारे पति देव को तो यह संशय नहीं था कि वेंकाटी को मैंने भगाया। तुम्हारे दिमाग में यह बात क्यों ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। स्वामीराय ने हमारे भाई का मान रखा। वैसे कहा जाय तो गंगव्वा, वेंकाटी मेरा भी भाई है और तुम्हारा भी। अगर मैं कहूं कि स्वामीराय ने तुम्हारे भाई होने के नाते ही जमानत दी, तो ? क्या स्वामीराय मेरा दुश्मन था ? मेरी आंखों के सामने ही स्वामीराय ने जमानत के कागजों पर सही की। तो क्या मुझे यह पता नहीं था कि वेंकाटी को भगाने से वह फंस जायेगा ? ... यदि उसे कुछ हुआ तो मेरी बहन के प्राण चले जायेंगे यह मुझे पता नहीं था ?"

गंगव्वा इन बातों को इतने विस्तार से नहीं जानती थी। उसके जीवन की स्मृतियों में यह अंश बहुत ही दुख भरा था। वेंकाटी के भाग जाने के बाद उसको ढूंढ़ने के लिए लोग कई जगहों पर घूम आये। वह न मिला तो एक मास के

भीतर ही लोग राघप्पा पर शक करने लगे। राघप्पा के जीवन के बारे में घर से बाहर अनेक बातें कही जाती थीं। पर घर में एकता थी इसलिए उन सब बातों की प्रतिध्वनि घर में सुनायी नहीं दी। घर उजड़ गया तो द्वेष और संशय का वातावरण पैदा हुआ। लोगों की बातें गंगव्वा के कानों में पहुंचीं। बहुत-सी बातें सुनकर गंगव्वा के मन में यह बात घर कर गयी कि वेंकाटी को भगाने वाला वही है और इस बात पर उसने बिना किसी आधार के ही विश्वास कर लिया। छह-सात महीने बाद जब उसका पति गुजर गया तो उसका यह विश्वास और भी गहरा हो गया। एक माने में गंगव्वा ने राघप्पा तथा उसकी पत्नी और बच्चों के नाम पर तर्पण कर दिया था।

यह सब बातें स्पष्ट हुई तो वह निरुत्तर रह गयी। तर्क का बल न रहने पर द्वेष दुख के रूप में पिघल आया। अब वह अधिक वाद-विवाद में असमर्थ हो गयी। पुरानी यादों के उभर आने से उसने आंसू बहाते हुए इतना ही कहा—

"तुमने उन्हें खाकर ही दम लिया।"

राघप्पा ने बात ही खतम नहीं होने दी। एक और बात अभी कहनी रह गयी। वह बहुत दिन से कहना चाहता था।

"गंगव्वा! तुम्हारी बातों पर मुझे गुस्सा नहीं आता क्योंकि इसके बारे में मैंने भी बहुत सोचा है। उसके दोहराने से कोई लाभ नहीं, पर बात उठी है इसलिए साफ-साफ कहे देता हूं। यह सही है कि स्वामीराय का सबसे बड़ा दुख तुम्हें ही है पर मैं अपने बारे में भी कुछ कहता हूं। तुम तो घर की लड़की थी, इसलिए वेंकाटी की जमानत मुझे ही देनी चाहिए थी। वह भागा भी मेरे घर से। उसके भागने से ही मेरी बहन का घर उजड़ गया। अतः किसी न किसी रूप में मैं बहन का कर्ज़ चुकाना चाहता था। तभी इतने में अकस्मात् स्वामीराय चल बसे। उसे मारने वाला मैं हूं—इसी पश्चाताप में मैं गली-गली भटका। हे भगवान मेरी जान ले लो, पर उसे वापस कर दो। ये सब बातें तुम्हें मालूम होतीं—खैर जाने दो, तुम्हें पता भी कैसे चलता? तुम्हारा असहनीय दुख ही तुम्हारे लिए बहुत था। उसमें तुम्हारा क्या दोष! पर देसाईजी मेरा कहना इतना ही है—हमें जानने वाले भी हैं। कम से कम हमें दुख देने वाले भगवान तो जानते हैं।"

अंत में अपनी बातों का जोश बढ़ता गया तो राघप्पा की आवाज़ ऊंची होती

गयी। उसे भी उन दिनों की याद हो आयी। वे घटनाएं दुख भरी थी और किसीके भी दिल को हिला डालने के लिए काफी थीं। वह स्वयं भी उनमें खो गया। उसकी बात खत्म हुई तो बाहर बैठी गंगव्वा के रोने की आवाज़ सबको सुनायी दी। देसाईजी झट से उठकर बाहर आये। राघप्पा भी अपनी भीगी पलकें पोंछता हुआ बाहर आया। देसाईजी के आते ही अब तक अपनी रुलायी को दबाने की कोशिश करने वाली गंगव्वा सिर पर ढका पल्लू ठुड्डी तक खींच कर ज़ोर-ज़ोर से फूट-फूट कर रोने-बिलखने लगी। उस दृश्य को देख कर राघप्पा भी द्रवित हो उठा। उसकी आंखों में भी आंसू उमड़ आये। उसके पुरुष स्वभाव में भी अनायास दुर्बलता आ गयी। दो-तीन बार उसकी भी सिसकी निकली। इस प्रकार रोने-धोने के दो मिनट में ही राघप्पा की व्यवहार बुद्धि पुनः एकदम जाग उठी। 'कैसा अच्छा अवसर है' सोच कर उसने फिर अपना नाटक शुरू कर दिया। वह धप् से जमीन पर पांव के बल बैठ गया और दुपट्टा धरती पर बिछा कर बोला—"गंगव्वा, मेरी जो भी गलती रही हो, माफ कर दो। जो हो गया वह सब भूल जाओ। एक बार छोटे भैया कह कर बुलाओ।"

पुरानी बातों में खोयी गंगव्वा भाई की बातों पर कुछ द्रवित हो चली परंतु राघप्पा की इस नयी चाल से फिर वर्तमान में लौट आयी। अपने भाई की इन लीलाओं से वह परिचित थी। अतः उसका भी विवेक एकदम लौट आया और उसने अपनी भावनाओं को दबा लिया। एक ही क्षण में वह अपना रोदन, कंपकंपी, स्त्री का भर्राया स्वर सब दबा कर चट से उठ बैठी और बिना बोले तेज़ी से दरवाज़ा पार कर अपने घर की ओर चल पड़ी।

देसाईजी से पुनः एक बार मुख्य विषयों पर गंगव्वा से बातचीत करने का आश्वासन प्राप्त करके राघप्पा भी वहां से खिसक गया। उस दिन देसाईजी की मूक उपस्थिति से उसे आधी सफलता मिली। उसने अनुभव किया कि बातें करने में चतुर होने पर भी देसाईजी की अध्यक्षता के बिना वह जीत नहीं सकता। पहले एक बार अकेले जाकर बुद्धू की तरह मात खाकर लौटा नहीं था क्या ?

गंगव्वा ने इनमें से किसी बात की चर्चा किट्टी के सामने नहीं की, पर जो हुआ वह सब किट्टी को पता चल गया। राघप्पा दफ्तर बंद होने के समय तांगा लेकर

गया और आधे रास्ते में ही किट्टी से मिलकर सब खास-खास बातें उसे बता दीं और उसने उसे यह भी समझाया कि यदि देसाईजी और गंगव्वा पूछें तो कह देना कि "अगर राघप्पा की लड़की से शादी नहीं होगी तो मुझे शादी ही नहीं करनी।" यदि किट्टी ऐसा न कहेगा तो उसकी बात में दम ही नहीं रह जायेगा। तब यह शादी होना ही असंभव है।

दूसरे दिन सुबह सवेरे गंगव्वा को फिर बुलावा आया। देसाईजी ने कल के भावुकता भरे वातावरण को कम करने के लिए सीधे-सादे ढंग से गंगव्वा से जो कुछ कहना था एकदम कहा—"गंगव्वा ऐसी बातों में तुम्हें हम जैसों को बीच में नहीं डालना चाहिए। इतना सब हमारे सामने हो जाने के बाद हम एक बात तुमसे कहते हैं। तुम्हें सही लगे तो सोचो। तुम्हारा अपने भाई से झगड़ा क्यों हुआ। कैसे हुआ और कितना हुआ इन बातों का हमसे कोई सरोकार नहीं। हमारे जैसे बीच में पड़ने वालों का काम तो केवल इतना ही देखना-सोचना है कि कृष्ण का भला कैसे हो और उसके साथ तुम्हारा जीवन कैसे सुखी हो। यदि तुम्हें ठीक न लगे और तुम इसे न मानो तो भी हमें कोई दुःख नहीं... तुम्हारे राघप्पा के पुत्र नहीं यह सच है क्या ?" गंगव्वा ने सिर हिलाकर हामी भरी। देसाई ने बात आगे बढ़ाई—"तो ऐसा लगता कि वह किट्टी को अपनी लड़की देकर उसे दत्तक ले लेना चाहता है। वैसे द्वामुषायण दत्तक लिया जाता है। वह कह रहा था कि साधारण रूप से साल भर में सात आठ सौ रुपये देने वाली जमीन है। वह हम पूछताछ कर सब पता लगा लेंगे—वह तो आगे की बात है।

दूसरी बात राघप्पा कैसा आदमी है, यह मेरे लिए मुख्य बात नहीं है। उसकी बेटी कैसी है यह मुख्य बात है। उसके बारे में पूछताछ करेंगे। पर एक बात है बच्चों के बड़े हो जाने के बाद हम उन्हें अपनी मर्जी के मुताबिक चलाना चाहें तो यह नहीं हो सकता, गंगव्वा। आजकल बच्चों के मामले में हमें उतना अधिकार नहीं रहा। सुना है कृष्ण ने इस लड़की से शादी करने की हठ ठानी है। उसने तुमसे कुछ कहा है क्या ?"

"छीः, छीः यह सब राघू की बकवास होगी।"

"जो भी हो, हम कृष्ण को बुलाकर सही बात का पता लगाये लेते हैं। पर मुझे यह जरूरी नहीं लगता।" यह कहते हुए देसाई ने किट्टी की लिखी चिट्ठी चश्मे

के केस में से निकाली और पढ़कर सुनाई। गंगव्वा फटी-फटी आंखों से देखती हुई असहाय-सी चुपचाप बैठी रही। इस पत्र के लिए मेरे बेटे को माफ कर दें यह बात देसाईजी से कहने के लिए उसकी जबान पर आई पर कहने को मन न हुआ।

देसाईजी ने बात आगे बढ़ाई।

"जो भी हो, यदि राघप्पा की बात ठीक है तो इस बारे में हमें बहुत आजादी नहीं रही। लड़की यदि साधारण रूप से ठीक है और घर के काम-काज करके गृहस्थी चला सकती है तो मेरे विचार में तुम्हारा बिना तकरार के हां कह देना तुम्हारे लिए ठीक रहेगा। वरना कल को यदि कृष्ण कह दे कि वह न तुम्हारी सुनेगा और न मेरी। अपने मन की ही करेगा—तो तुम्हारे लिए भी मुश्किल हो जायेगी कि नहीं ? बात इतनी ही नहीं, कृष्ण; अब तेल मलकर नहलाकर पालने में सुलाने लायक बच्चा नहीं है। यह बात सोच रखो। हम चाहें जो भी हों, हैं तो पराये ही। कष्ट उठाने वाली तुम हो। इसीलिए अच्छी तरह सोचो।

अब और व्यावहारिक बातें भी लो... वह थोड़ा बहुत वरदक्षिणा भी क्यों न दे ? वैसे तो दत्तक लेना चाहता है।"

"जो भी हो गोपण्णा तुम्हारा कहना मुझे ठीक ही लगता है पर इस राघू की बातों पर विश्वास नहीं होता।"

"तुम्हें किस बात का विश्वास नहीं है सो बताओ। उसके लिए कोई रास्ता खोजा जा सकता है। जो जो बातें मैंने कहीं उनसे तुम सहमत हो या नहीं ?"

"आज तो इसे दत्तक लेने को कह रहा है, कल किसी और को ले ले तो ? वह किसी बात पर टिकता थोड़े ही है। वह दूसरों के लिए मुसीबत खड़ी करने वाला आदमी है।"

"वह खड़ी कर सकता है ? ... अच्छा, करने दो। हमने कोई चूड़ियां नहीं पहन रखीं। शादी के निश्चय के समय दत्तात्रेय के मंदिर में चार आदमियों के सामने वादा ले लूंगा। यदि वह अपनी बात पूरी नहीं करेगा तो हमारे गांव में उसे ठीक करने वाले भी हैं। खंभे से बंधवा कर चाबुक लगवाऊंगा। उसने अपने को समझ क्या रखा है ?" देसाईजी ने आवेश में कहा।

गंगव्वा की समझ में न आया कि अब आगे क्या कहे। वह पर्याप्त कमजोर पड़ चुकी थी। और थोड़ी देर चुप रहने के बाद संकोच करते हुए बोली, "तुम

कुछ भी कहो, गोपण्णा। मेरा यह डर नहीं जाता कि यह सब कर लेने के बाद वह किटण्णा को अपने चंगुल में फंसा लेगा।"

"इधर देखो गंगव्वा, तुम्हारा बेटा कोई बच्चा नहीं है। यह शादी हो जाये तो भी, न हो तो भी यदि किट्टी यह इरादा कर ले कि मैं राघप्पा के कहे मुताबिक ही चलूंगा तो क्या हम उसे रोक सकते हैं? तुम जरा सोचो। मुझे लगता है कृष्ण, स्वयं जल्दी शादी करना चाहता है। अब उसके सामने एक शर्त रखनी पड़ेगी। शादी के बाद या दत्तक लेने के बाद कृष्ण राघप्पा के घर में नहीं रहेगा। अपने घर में अपनी मां और पत्नी के साथ रहेगा। उससे इस प्रकार का वादा ले लेंगे। वह ईमानदार लड़का है, अपने पांवों पर खड़ा है। यदि तुम इस विवाह की बात मान जाओ तो तुम्हारा मान रह जायेगा. प्रतिष्ठा बनी रहेगी। वह खुशी करेगा, कसम नहीं तोड़ेगा। नहीं तो अपना-अपना किया सभी भुगतते हैं। हमें अपनी ओर से सब काम सरल कर देना है।"

अंत में देसाईजी का प्रयास सफल रहा। गंगव्वा को अपने मैके के भूमि जायदाद और घर आदि देखे कई वर्ष बीत गये थे। अपनी जन्मभूमि, बचपन में जिस मिट्टी में खेली वह मिट्टी, जिस खेत का उपजा अन्न खाया था वह खेत, सब याद करके उसका मन भर आया। एक प्रकार की आंतरिक प्रसन्नता हुई। उसे लगा वह जिन बातों का संदेह कर रही थी, उनकी जड़ें कमजोर हो गयी हैं।

देसाईजी को इतने से ही तसल्ली न हुई। गंगव्वा के मानसिक द्वंद्व के लिए भी उन्होंने एक रास्ता निकाला।

"तुम सोच सकती हो इतने दिनों के वैर-भाव को कैसे छोड़ा जाय? उसे छोड़ देना ही चाहिये, उसमें ऐसा कोई बंधन नहीं है। तुम्हारी बहू के घर आ जाने पर तुम्हें उस पर स्नेह रखना चाहिये। यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। उसके बाप पर जो क्रोध है वह उसके ऊपर नहीं उतारना चाहिए। अगर तुम ऐसा करोगी तो हम तुम्हारी हिमायत नहीं करेंगे। यह हमारी शर्त है। पर हमारी यह शर्त नहीं होगी कि तुम राघप्पा के साथ भी ऐसा ही करो। तुम चाहो तो उसका मुंह न देखो, उसके घर मत जाओ, उसे अपने घर न बुलाओ। ये सब बातें हम समय पर स्पष्ट कर देंगे। समय-समय पर बेटे और बहू को उनके घर आना जाना रहने दो तो तुम्हारा काम हुआ समझो।"

यह सुनकर गंगव्वा पूर्ण रूप से निरुत्तर हो गयी। देसाईजी के इस अर्थपूर्ण भाषण के बाद अब आगे बात करने को क्या बचा था ?

घर पहुंचने के बाद गंगव्वा ने किट्टी से मजाक में पूछा, "क्यों रे सुना है तूने राघप्पा से कहा है कि रत्ना के सिवा और किसी से ब्याह नहीं करूंगा। क्या यह सच है।"

किट्टी ने "हां" कहकर साफ जवाब दिया।

उसने अनुभव किया कि देसाईजी की कृपा से वह कितनी बड़ी उलझन से बच गयी। उस दिन गंगव्वा ने भगवान के सम्मुख एक और घी का दिया जलाया और भगवान से प्रार्थना की कि भगवान गोपण्णा को दीर्घायु करे।

18. सभी पक्षों की तैयारी

शादी की खरीदारी करने के लिए सूची तैयार करने का समय भी पास आने लगा। गंगव्वा का व्यवहार अब ऐसा था मानो यह काम उस पर लाद दिया गया हो और उसका उससे संबंध न हो। लड़की देखने को भी वह न मानी। उसने कह दिया, "जिसे देखने की जरूरत थी उसने देख ली, मुझे क्या करना है।" किट्टी के साथ उसने शादी के बारे में बात ही नहीं की परंतु देसाईजी से जो बातें करनी थीं वह सोच चुकी थी। उसका कहना था कि विवाह का दोनों ओर का खर्चा राघप्पा उठायेगा और उसे चार आदमियों के सामने प्रतिज्ञा करनी होगी। किट्टी को यह मानना होगा कि किसी भी कारण से वह सुसराल में नहीं रहेगा और अपने ही घर पर रहेगा। वरदक्षिणा के रूप में राघप्पा से एक हजार रुपये दिलाने होंगे।

किट्टी ने स्वप्न में यह न सोचा था कि उसका विवाह इतनी आसानी से हो जायेगा। इससे पूर्व अपने बारे में जो कुछ वह सोचता था वह कुछ और ही चीज थी। वह लोकरिवाज को न जानता था और मनुष्य के लिये ही बने सुखों का

अनुभव भी उसे न था। अपने व्यक्तित्व के महत्व को न जानकर वह मां की छत्रछाया में बढ़ा था। जो भी उसे मिलता वह यह कभी न कहता कि तुम चतुर हो परंतु इसके बदले वह कहता 'तुम्हारी मां ने बड़े कष्ट उठाकर तुम्हें पाला है।' यह कह कहकर उसे मां के उपकार के दबा डाला रुक गया था। इसलिए वह शेर जैसा होने पर बकरी की भांति बढ़ा। (हुसैन से यदि पूछा जाय तो वह बतायेगा कि वह वास्तव में शेर ही है।) यह सच है कि मां का उपकार बहुत अधिक है पर क्या उस भार को अंत तक ढोना पड़ेगा...? कौन-सी मां है जो अपने बच्चे को नहीं पालती। इतना प्यार करने वाली मां मेरी अंतिम इच्छा में रुकावट क्यों बन रही है। यदि इतना प्रेम है तो देसाईजी के पास जो हजार रुपये पड़े हैं उनमें से एक सौ रुपये कभी मेरे कपड़ों के लिए क्यों नहीं खर्च किये। यदि इतना होता तो दस वर्ष के स्कूल के जीवन में केवल दो कमीजों और दो निक्करों में समय काटने से बच नहीं सकता था, खाकी निक्कर पहन कर दफ्तर में प्यादों तक से हंसी उड़वाने से बच सकता था। नौकरी लगने पर भी आज मेरे धोती के अभाव को, इतना प्रेम रखने वाली मां क्यों चुपचाप देखती रही। उन हजार में से यदि पांच रुपये खर्च कर दिये होते तो क्या मेरे लिए एक जोड़ा बढ़िया धोती न आ जाती? एक तरह से मेरा जीवन नष्ट हुआ न? अब नौकरी लग जाने से क्या मैं आदमी नहीं बना? मैं कचहरी में कितनी दौड़ धूप करके दो पैसे कमाकर लाता हूं। इस बात की ओर ध्यान देकर भी उसे गुड़िया की तरह नचाते हुए अपने ही अहम् को सब को दिखाती फिरती है। इसी प्रकार के बहुत से स्वगत भाषण उसके मन में भरे थे। मां तुम्हारा उपकार बहुत बड़ा है। परंतु क्या मेरा भी अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है?... ...मेरी आशा और आकांक्षाओं की कोई कीमत नहीं है क्या? क्या मैं अब भी तुम्हारी गोद का ही बच्चा हूं।...यदि तुम्हारा सच्चा प्यार मुझ पर होता तो तुम यों रुकावट न डालती।...तुम्हें अपने द्वेष का मुझसे ज्यादा ध्यान है, मेरे जीवन की और नहीं...। 'मैंने तुझे पाल पोस कर बड़ा किया' इस बात का ढोल पीटना चाहती हो। इस प्रकार के व्याकरण-शुद्ध और हीनभावना वाले नाटकीय वाक्यें तथा शब्द समूह रिहर्सल करने वाले की भांति बड़बड़ाया करता। परंतु उनको व्यक्त करने का उसे अवसर ही न मिला। आसानी से विवाह निश्चित हो जाने के

उपरांत इस प्रकार के सब स्वगत कथन धीरे-धीरे समाप्त हो चले। उसे इतनी आसानी से सब काम होता देखकर न केवल आनंद मिश्रित आश्चर्य हुआ बल्कि अपने मामा की कार्य-शक्ति के प्रति गौरव उत्पन्न हुआ। मां भी कुछ दिन को देवी के समान ही दिखायी दी। उसने किट्टी की ओर से कभी कृतज्ञता की अपेक्षा नहीं की, बिना कुछ बोले यह सोचकर कि जो भी आयेगा वह सब सहन करूंगी। वह मौन रहकर अपने दैनिक कार्यों में लगी रहती।

इन सब तरह की बातों से किट्टी को नयी चिंता आरंभ हुई। अरे! मेरा ब्याह? ... घर के लिए एक गृहिणी ला रहा हूं। इस प्रकार के नारी रत्न को इस घर में लाना लज्जा का काम नहीं? वह मेरी गरीबी को देखकर मेरा मजाक उड़ाये तो कैसे? मेरा पति कमाऊ है यह दूसरों के सामने बखान करके आने वाली घर में टूटे बर्तनों को देखकर खीजेगी? उसके कपड़े लत्तों का खर्च कितना होगा? उसे पहले ही यह बता देना अच्छा होगा कि उसे मां के दिल को जीत लेना चाहिए। वह मूर्ख नहीं है। दो चार दिनों में मां का दिल जीत लेगी। अब दत्तक की आशा से विवाह की अनुमति देने वाली मां उसके सौंदर्य को देखकर पता नहीं कितनी खुश होगी। आज जैसे मुझे चार आदमियों के बीच खड़ा करके यह मेरा बेटा है कहकर गर्व से बताती है, ऐसे ही क्या बहू को नहीं दिखायेगी।

कभी-कभी किट्टी की अत्यासक्ति अपना भयानक रूप दिखा कर डराती। वह सोचता 'अरे मैं इतनी हठ करके रत्ना से शादी करने की इच्छा कर रहा हूं क्या यह ठीक है? हठ पकड़ कर पायी हुई चीज़ अच्छी न निकले तो क्या मज़ाक नहीं उड़ेगा। यदि अच्छी तरह सोच-समझ कर मैं एक बार हठ पकड़ता तो अच्छा नहीं रहता? वैसे मैंने उसे अच्छी तरह नरक चतुर्दशी के दिन ही देखा था। इसके बाद उसे जब भी देखा तो छिपती ही जाती थी। इतना उतावला होकर जो काम किया है पता नहीं कल उसका क्या परिणाम निकलेगा। जो होता है सो होने दो।'

'मिष्ठान्नमितरे जना:' विवाह करने वाला ही विवाह के संकट को जानता है। इतर जनों को तो केवल मिष्ठान्न से मतलब होता है।

दत्तक लिये जाने की बात से किट्टी भी बहुत प्रसन्न था। यह विचार मामाजी के मन में था पर पता नहीं अब तक उसे क्यों नहीं पता चला। यह सोचकर वह

पुलकित हुआ कि मामाजी और मामीजी उसे अपना बेटा मानते आ रहे हैं। नरक चतुर्दशी के दिन राघप्पा का 'भोजन यहीं करके जाओ' का आग्रह, यह तुम्हारा घर नहीं है क्या ? कहना घिसटती-सी आकर चंपक्का का घी की कटोरी भरने का उत्साह। यह सब बातें उसके लिए एक नया अर्थ लेकर चमकने लगी।

किट्टी के सामने अब दो बड़े काम थे। एक विवाह के खर्च की बात, दूसरा रत्ना के लिए अंतिम उपदेश। गंगव्वा का दोनों ओर का खर्चा मामा पर लादना किट्टी को थोड़ा अनुचित लगने पर भी स्वत: खर्च न करके होटल में खाने की लत पड़ जाने के कारण यह बात कुल मिलाकर ठीक ही जंची। इसके अतिरिक्त उसे इस बात का विश्वास भी हुआ कि राघप्पा उसे अपना बेटा समझकर खुशी-खुशी खर्च उठायेगा। तो भी क्या ब्याह के खर्च के लिए पांच-सात सौ रुपये नहीं होने चाहिएं। ...कपड़े लत्ते, सोना, लड़की वालों को देने के लिए साड़ियां, दोस्तों का चाय पानी, चपरासी, प्यादों का इनाम—ऐसे कितने ही खर्च हैं। वरदक्षिणा तो शादी के दिन ही मिलेगी। तब तक का खर्च कहां से चलेगा ? मां ने तो चुप्पी साध ली है। वास्तव में अब, द्वेष को भूलकर इन प्रश्नों का हल उन्हें अपने आप मुझे बताना चाहिए था। पर जिसने मुझे खाकी निक्कर में दफ्तर भेजा, वह अब बद-लेगी क्या ? ...ठीक है इस विवाह में मेरा अपमान भी हो जाय तो भी उसे क्या ? मुझे ही स्वयं अगुवा होकर इस विवाह को सफल बनाकर दिखाना होगा। उसने विवाह की अनुमति दे दी है यह सोचकर हाथ पर हाथ रखे परावलंबी होकर आगे की बात बिना सोचे-विचारे विवाहमंडप में जाकर मुझे अपमानित नहीं होना चाहिए। मुझे धोखे में न रहना चाहिए। मां को पता लग जाना चाहिए कि मैं अक्लमंद हो गया हूं... यह सोचकर उसने मां से पूछा।

"मां शादी के खर्च के बारे में कुछ सोचा है ?"

गंगव्वा बोली, "तुम्हारा मामा क्यों नहीं करेगा लड़की दे रहा है।"

"ठीक है पर कितना करेगा ? लड़के के नाम से कपड़े बनवायेगा, खाने-पीने का खर्च करेगा। कपड़े लत्ते, सोना वगैरह-वगैरह यह सब हमें नहीं सोचना है क्या ?"

"यह सब बातें तो विवाह करने वाले को सोचनी चाहिये ?"

"हां, ऐसा कहो। साफ-साफ कह दो तुम नहो करना नहीं चाहती। जो करना है मैं कर लूंगा।"

"इसमें मेरे कहने की क्या जरूरत है। ...आंखों से तुम्हें दिखायी नहीं देता ? मैं कहां से करूं ? कमा रहे हो, करो।"

कुछ देर चुप्पी छा गयी। अंत में किट्टी थूक निगलकर साहस से बोला, "तो सुना है देसाई के पास तुम्हारे हजार रुपये रखे हैं ?"

"हजार रुपये कहां से आये ? क्या तुझे पागलपन सवार हुआ है ? ... कहां से आयेंगे हजार रुपये ? हजार रुपये होते ऐसी धोती पहनती ? ..." गंगव्वा ने अपनी लाल साड़ी पर इधर उधर लगे पेबंद दिखाये।

उस दिन किट्टी के आंखों से ओझल होते ही गंगव्वा देसाईजी के घर गयी और उसके बीच हुए सब प्रश्नोत्तर उन्हें बता दिये। उनसे यह वचन लिया कि यदि किट्टी उनसे पूछे तो उसे साफ-साफ कह देना चाहिए कि तुम्हारी मां ने मेरे पास कोई पैसे नहीं रखे।

किट्टी अपनी भावी पत्नी को देखने के बहाने से पांच छह बार अपने मामा के घर आया। आने पर हर बार चाय नाश्ता हो ही जाता था पर रत्ना एकांत में न मिल सकी। उसकी झलक मात्र देखने को अवश्य मिल जाती थी ? अब रत्ना लांग वाली साड़ी पहनने लग गयी थी। एक बार महबूबजान ने गंधर्व लांग वाली धोती पहनना सिखाया था। परंतु अनुभवहीन होने के कारण उस ढंग की साड़ी रत्ना पूर्ण रूप से ठीक न पहन पाती थी। इस प्रकार ऊटपटांग साड़ी लपेटकर चलने से किट्टी को उसके लंगड़े होने का संदेह हुआ। उसका कलेजा धक् हो गया। परंतु पूरी बात पता लगने पर संदेह दूर हो गया। एक बारे उसे लगा कि वह थोड़ी भैंगी है। बातों ही बातों में उसे एक बार लगा कि वह हकलाती भी है। उसके सौंदर्य के बारे में भी कभी-कभी उसे संदेह हो जाता। इन दिनों विवाह निश्चित हो जाने की प्रसन्नता से उसका शरीर तनिक भर सा गया था और वह गौरी के समान सुंदर लगने लगी थी। परंतु किट्टी को संदेह होने लगा था कि उसके शरीर का रंग असली है या रंग पोत रखा है। यदि इसमें महबूबजान की शिक्षा का ही परिणाम हो तो ? अंत में अपने संदेहों पर अपने आप खीझकर, जो होता है सो होने दो सोचकर अपनी बुद्धि को स्थिर कर लिया।

अंत में एक बार उससे अकेले में भेंट का संयोग प्राप्त हो गया। किट्टी के चक्कर काटने के आशय को भांप कर रसिक राघप्पा ने अपनी पत्नी को सांकेतिक

रूप में बता दिया। ऐसे विषयों में चंपक्का को बड़ा डर लगता था। दूर से ही किट्टी को आते देख एक दिन चंपक्का रत्ना से बोली, "ऐसा लगता है तेरा पति तुझ से कुछ कहना चाहता है, मैं जरा पिछवाड़े रहूंगी। तू डरना नहीं। तू ज्यादा बात नहीं कर, ज्यादा करना भी नहीं।" और भी जो कुछ कान में कहना था कहकर पिछवाड़े चली गयी। रत्ना समाचारपत्र लेकर आंगन के पास वाले कमरे में जा बैठी।

किट्टी इस प्रकार समाचार पत्र में मग्न पत्नी को एकांत में देखकर आशा और भय से पसीने-पसीने हो गया। उसे कोई रसिक बात याद न आने के कारण पूछा, "पिता जी नहीं ?"

रत्ना ऐसे हड़बड़ाकर उठी मानो अभी उसने उसे देखा हो और बोली, "नहीं"।

"मां कहां है ?"

"पिछवाड़े नीम की पत्तियां तोड़ रही है।"

एकांत के कारण दोनों अधीर हो गये। इस कारण थोड़ी देर चुप्पी छाई रही।

"तुमने मेरी मां को देखा है ?"

"नहीं तो।"

"तुम्हारे मां-बाप चाहे जो कहें पर मेरी मां जैसी उदार है वैसी जगत में दूसरी नहीं मिलेगी।"

"अपनी-अपनी मां सबको ऐसी ही लगती है।"

"नहीं-नहीं मेरी मां तो देवी है। इस विवाह के लिए स्वीकृति दी। यह कितनी बड़ी बात है। यह कल्पना कर सकती हो ?"

"नहीं।"

"जब घर आओगी तो उन्हें प्रसन्न रखना। तुम उनकी सेवा करोगी तो मुझे भी संतोष होगा।"

"तो आपकी सेवा कौन करेगा ?"

"मेरी भी करनी है उनकी भी करनी पड़ेगी। परंतु उनकी मुख्य रूप से। उनको प्रसन्न रखोगी तो मुझे भी खुशी होगी।"

"हमसे जितनी हो सकेगी करेंगे ?"

"तुम करोगी यह तो तुम मुझे तसल्ली देने को कह रही हो ?"

"उन्हें भी इतना कहियेगा बहू को तंग करके रुलाना नहीं।"

किट्टी अप्रतिभ-सा हो गया। कुछ चिढ़ कर जरा ऊंची आवाज में बोला--

"हां उनकी सेवा करूंगी, इतना साफ कह देने में तुम्हारा क्या चला जाता।"

"हां सेवा करूंगी।" इतना कहकर रत्ना सिसक पड़ी। आंसू आंखों से लेकर गालों तक आ गये। साड़ी के पल्लू से उन्हें पोंछने लगी।

"नहीं-नहीं तुम्हारा मन दुखाने को मैंने यह नहीं कहा। तुम्हारी भलाई के लिए...।"

"क्यों ? ...अपनी सास की सेवा मत करना यह सिखाकर मेरे मां-बाप नहीं भेजेंगे ?" यह कहते-कहते एक बार और सिसकियां लेने लगी।

किट्टी को समाधान हुआ, उसे लगा रत्ना सेवा करने को तैयार है। मैंने ही संशय से ऐसे मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ कर उसके निष्कपट मन को अपमानित किया। इस प्रसन्नता के ज्वार में उसने उसके आंसू पोंछने को हाथ आगे बढ़ाया।

मां की कान में फुसफुसायी बात उसे याद आयी। रत्ना इतने में पीछे को खिसक कर भीतर चली गयी। किट्टी की उंगलियों में उसके गर्म आंसू लगे थे। उसने उन्हें अपने होठों से लगा लिया।

किट्टी अपनी अगली तैयारी में लग गया। उसने यह निश्चय कर लिया कि मां के निरुत्साह दिखाने पर भी विवाह की धूमधाम में कमी नहीं आनी चाहिये। अभी एक महीने पहले एक व्यापारी से परिचय हुआ जो दलाली का काम करता था। उसके एक काम में किट्टी को बीस रुपये हाथ लगे थे। किट्टी सीधा उसकी दुकान पर गया। उसने आदर से इसका स्वागत किया। वह आधा ध्यान काम की और आधा इसकी बातों में लगा गद्दी पर पीठ लगा कर बैठ गया। किट्टी ने तुरंत बात उठायी और एक हजार रुपये का कर्जा मांगा, यह सोचकर कि हजार मांगने पर चार पांच सौ तो मिल ही जायेंगे। शेट्टी उसी के गले पड़ गया। "क्या साहब, गुड़ के ट्रांसपोर्ट का आपने ही लाइसेंस दिया। जो पैसा था वह उसमें डाल दिया है। एक महीना ठहरिये, कुछ नहीं तो दो चार सौ दे ही दूंगा।" कहकर व्यापार संबंधी मुसीबत बतायी। किट्टी को अपमान-सा लगा। पर शेट्टी ने अन्य आदर सत्कार में कमी नहीं की। डबलरोटी, मक्खन, चाय आदि सभी

कुछ हुआ। जब लौटने लगा तो शेट्टी ने पूछा, "हमें शादी पर बुलायेगा ?" उस पर किट्टी ने उत्तर दिया। "आपके बिना कहीं हमारा विवाह हो सकता है।" "अगर बुलाया तो कुछ भेंट कर आऊंगा नहीं तो दफ्तर में तो भेंट होगी ही।" कहकर शेट्टी हंस पड़ा। मर्म पर चोट पड़ी।

और भी दो जगहें थीं। पर यह सोचकर कि वे भी अगर शेट्टी की तरह कहें तो क्या होगा? उसने वहां जाने का विचार स्थगित कर दिया। मन में पैसे की चिंता एक बोझ बन गयी थी। एक दिन अपनी चिंता से ऊब कर देसाईजी के पास आया और उनके सामने अपनी समस्यायें रखीं।

देसाईजी बोले "अरे हां।... रुपयों की क्या व्यवस्था हुई। यह जानने को मैं तुम्हें बुलाने वाला ही था, पर इसलिए चुप रहा कि सामान की फेहरिस्त तो बन जाय। तब मुख्य विषय पर बात उठाने के सिवा कोई चारा न देखकर किट्टी बोला।

"गोपण्णा जी यह द्वेष कम से कम अब तो मां को छोड़ नहीं देना चाहिए ?... विवाह के खर्च की कोई बात ही नहीं क्या ? कोई बात भी नहीं करनी चाहिये ?"

"वह नहीं पूछती तो तुम्हें पूछना चाहिये। क्यों मां से पूछने में तुम्हें शर्म आती है क्या ?"

"पूछा था, पर वह कहती है उनके पास एक पैसा भी नहीं। अब इस स्थिति में उनका ऐसा कहना मेरे मन में संशय पैदा करता है। सब कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय बहुत धन संपत्ति थी। क्या वह सब चला गया ?... क्या कुछ बचा नहीं ? कम से कम एक हजार रुपये तो...।"

देसाईजी तनिक भी अपनी अपनी मुख मुद्रा बदले बिना बोले, "अपनी मां से पूछो। हो तो देगी। यदि वैसे तुम्हें चाहिये तो दो चार सौ रुपये मैं तुम्हें देता हूं। तुम्हारी वरदक्षिणा आने के बाद वापिस कर देना।"

"आप जैसे बुजुर्गों का ही सहारा है मुझे। इस बात का धैर्य तो है पर हमारे घर में तो एक ही शादी होनी है। उसके लिए यदि मां खर्च न करे तो मुझे दुख होता है। वैसे देखा जाय तो उन्हें ही अधिक उत्साह लेना चाहिए। वही कहती है 'मेरे पास एक पैसा नहीं है।' इतना था आज क्या एक हजार भी नहीं बचा है। इसे मेरा खोटा नसीब ही कहना चाहिए।"

"कुछ बचा है क्या ? अपनी मां से पूछो। पूछने में शर्म काहे की ? तुम साहब बन गये हो तो कचहरी के लिए।"

"मेरी मां ने आपके पास कुछ रुपये रखे हैं क्या ?" यह प्रश्न किट्टी की जबान की नोक पर आया पर वह पूछने का साहस न कर सका। दूसरे यह विवाह देसाईजी के द्वारा ही संपन्न हो रहा था। उनसे इस प्रकार की मुंह तोड़ बातें करना भी ठीक नहीं।

जब किट्टी चलने को हुआ तब देसाई अपने तकिये पर तनिक और टिककर बोले, "वैसे कहा जाय तो तुमने ही लड़की छांटी। तुम्हीं रुपये खर्च करो। यह बात हम कह सकते हैं। लेकिन अभी तक हममें यह अभिमान बाकी है कि लड़का हमारा है और आगे भी रहेगा। तुम उसी तरह चलोगे ?" यह कहते हुए उन्होंने अंतिम वाक्य पूरा किया।

देसाईजी में इतनी क्रूरता भी है, यह किट्टी को पता नहीं था। पैसे के बारे में सारा संसार ही एक जैसा है। यह सोचता हुआ दुखी होकर बाहर आया। 'अरे मेरे घर का पैसा ही मुझे दूसरों से मांगना पड़ेगा।' यह सोचकर व्यथित हुआ।

फेहरिस्त[1] बनाने के समय लड़की दिखाने की रस्म भी देसाईजी के घर में संपन्न हुई। मौहल्ले के चार सद्‌गृहस्थ भी आये। गंगव्वा लड़की न देखने का हठ करके कमरे से बाहर ही बैठी रही। पर रत्ना के आकर नमस्कार करने पर चोरी से देखा और मुंह फेर लिया। पर इतने में ही गौरी सी सुंदर रत्ना की सौंदर्य की आभा उसके हृदय पर अंकित हो गयी। उसे यह तसल्ली हुई कि देखने में सुंदर है। भली दिखती है। जैसी भी है ठीक है।

देसाईजी की सारी शर्तों को राघप्पा मुस्कराता हुआ मानता चला गया। देसाईजी के दत्तक की बात उठाते ही उसने कुल देवता श्री वेंकटेश की शपथ ली। किट्टी ने भी सबके सामने यह वचन लिया कि दत्तक के बाद वह अलग घर न बसा कर अपनी मां के साथ रहेगा। मोहल्ले के लोगों के सामने घर की गुप्त बातों की इतनी विस्तार से चर्चा होने के कारण और उससे वचन लेकर उस पर अविश्वास प्रकट करने से किट्टी ने अपमान अनुभव किया। वह सब काम अनावश्यक नहीं था। वह इस बात से संतुष्ट भी हुआ कि काम निबट गया।

[1]दक्षिण में विवाह के समय दोनों पक्ष मिलकर विवाह के समान की सूची तैयार करते हैं।

दिन बीतते-बीतते रुपयों की चिंता बढ़ने लगी। चंचल स्वभाव, अस्थिर प्रकृति, अभी बचपना भी न पार करने वाले, डरपोक इस साहब को इतने रुपये देने को कोई पार्टी तैयार न थी। इसलिए वे कोई न कोई बहाना करते। दूसरे उन खास लोगों में यह विश्वास घर कर गया था कि यदि वह बुरा मान जाय तो उसे डबल रोटी मक्खन और कृष्णाप्पा के दोसे खिला कर मनाया जा सकता है। यह उनकी अनुभवसिद्ध बात थी। इस प्रकार किट्टी को दफ्तर के मामूल के अलावा एक पाई भी न मिल सकी।

शादी के दो एक सप्ताह रह गये थे ? एक दिन किट्टी कचहरी में टेबल पर कोहनी टिकाए हथेली पर मुंह रखे बैठा था। उसे जार्ज चाय के लिए साथ ले गया। किट्टी को इस बात का आश्चर्य हुआ कि कभी भी चार बजे से पहले चाय न पीने वाला जार्ज अपने आप आज उसे इस समय चाय को क्यों ले जा रहा है। कैंटीन के रास्ते में चलते हुए जार्ज ने किट्टी के गले में हाथ डाल कर पूछा—

"हैं।" किट्टी की आंखों में आंसू बहे बहुत दिन हो गये थे। वह दुखी रहा, सहता रहा, लातें खाता रहा, पांव पकड़ता रहा, पर इन वर्षों में कभी आंखों में आंसू नहीं आये। एक अंग्रेज कवि का कथन है 'रोने के लिए भी भगवान की दया चाहिए।'

उसी दिन जार्ज ने उसे साथ ले जा कर पांच सौ रुपये कर्ज दिलाये।

19. मंगलवादों में एक बेसुरा स्वर

शादी के घर में महबूबजान को कई सारी असुविधाएं रहीं। उसे आदर से देखने वाला केवल घर का 'यजमान' ही था। कभी-कभी भारी साड़ी लादे लंगड़ाती हुई इधर से उधर चक्कर काटती हुई केवल चंपक्का आकर उसे पूछ लेती। उसके निशक्त शरीर को शादी की इस दौड़धूप ने और थका दिया था। इसलिए वह छोटी-छोटी बातों पर भी खीज उठती थी। जब वह महबूब के सामने किसीको

डांटती तो महबूब को लगता कि वह मुझे भी सुना रही है। यह सोचकर कि शादी के घर में उसे भी सुख नहीं मिलेगा और उससे किसीको लाभ भी नहीं होगा, उसने यजमान से यह कह दिया था कि वह भांवरों के समय ही आयेगी पर राघप्पा कहीं मानने वाला था ? उसने ज़िद करके, गुस्सा करके, पान-सुपारी तक भी न लेकर मान करके उसे मना लिया था कि उसे कम से कम शादी के चार दिन पहले आना ही पड़ेगा। उसने अनुमान लगा लिया था कि उसके कारण विवाह के घर में सबको दिक्कत होगी। परंतु दिन प्रतिदिन कष्ट उसके अनुमान से भी ज्यादा होने लगा। हर रोज की छुआछूत की बात। अपने खाने की पत्तल उसे स्वयं फेंकनी पड़ती। वहां गोबर से सफाई करती। किसी भी चीज के लिए घंटों घर की लड़कियों का मुंह जोहना पड़ता था। इन सब बातों से वह ऊब उठी। छुआछूत मानने वाली स्त्रियां उसे घृणा से देखतीं। मंडप में शरारती जवान लड़कियां उससे पान-सुपारी मांग कर यजमान का नाम ले-ले कर उसका मज़ाक उड़ातीं। महबूबजान को दिन में बीस बार चाय की आदत थी परंतु इस भीड़-भड़क्के में दो-तीन बार भी चाय मिलनी दुस्तर थी। यजमान के आने पर उसे एक बार अवश्य चाय मिल जाती थी। अपने-आप से चाय मांगी नहीं जाती थी। इसलिए चाय की चाट अब उसे तंबाकू से पूरी करनी पड़ती। इसके अलावा उसे सुबह से शाम तक कोई काम न था।

विवाह में उसके योग्य कार्य एक ही दिन में समाप्त हो गया। ... वह था विवाह-मंडप की तैयारी। उसने स्वयं सामने खड़े होकर उस मंडप को सजाया। छह-सात वर्ष पूर्व उसने शेषशायी नाटक कंपनी में काम किया था। इन दिनों वह कंपनी धारवाड़ आयी हुई थी। यह पता चलते ही वह उसी दिन तांगा करके वहां गयी। कंपनी के मालिक परमेश्वर भट्ट से मिल कर आग्रहपूर्वक उस कंपनी के कुछ परदे मांग लायी और उनसे मंडप को नाटक के रंगस्थल की भांति सजा दिया। उन्हीं से रंगीन कागज की लैस भी ले आयी। चिन्ना रेड्डी नाम के कलाकार को भी बुला लायी। उसे अच्छा चायपान कराकर रंगीन कपड़े पर रुई से स्वागत शब्द लिखवाया और विवाह मंडप के द्वार पर दो खंभों के बीच बंधवा दिया। स्वयं खड़े होकर उसने कागज के फूलों के गुच्छे और गोले, लैसें और तोरण सजवाये। नाटक के थियेटर की सज्जा से बहुत दिन परिचित होने के कारण उसे विवाह-

मंडप को सजाना नहीं आता था इसीलिए उसने विवाहमंडप को भी रंगशाला के समान अलंकृत कर दिया था। यजमान ने भी उसकी इच्छा का कोई विरोध नहीं किया। जो भी हो विवाह के एक दिन पहले ही राहगीर भीतर आकर मंडप को देखकर ही जाते। मंडप को सजा देखकर हर आदमी महबूब की प्रशंसा करता। दो एक दिन में विवाह में आने वाले अतिथियों की संख्या बढ़ने पर भोजन की छूआछूत के झंझटों में उसे दिक्कत होने लगी। मंडप भूल गया और उसका महत्व भी घट गया।

इसके बाद महबूब के लिए उपयुक्त कार्य था वधू को सजाना। रत्ना को वह नाटकीय ढंग से अलग-अलग समय अलग अलग ढंग की साड़ियां पहनाती, बालों की सजावट करती कुंकुम को तरह-तरह से लगाती, इस प्रकार अपना कलाकौशल दिखाती। यह बातें घर की बूढ़ियों को जंचती न थीं पर रत्ना का शृंगार तो महबूकक्का के बगैर होता ही न था। कोई कितना भी क्यों न डांटे वह वह तो महबूकक्का के पास जाकर ही जरी की साड़ी बंधवा कर आती। इसलिए रत्ना ने आंगन के दायीं ओर के कमरे को छोड़ महबूब को कहीं न जाने की कठोर आज्ञा दे रखी थी। उसके आने पर महबूब को यह लगता कि वह भी शादी में कुछ काम कर रही है। उसके चले जाने पर उसे एकदम खाली ही खाली लगता। पानसुपारी भी उसे अच्छी न लगती। जब वह अपनी चांदी की डिब्बी से चूना निकालकर तंबाकू की खैनी बनाती और पान के डंठल तोड़ती तो उसके आसपास दस बीस बच्चे उसे घेर लेते। उनकी माताएं नफरत से उन्हें पीटकर वहां से घसीट ले जातीं।

एक और बड़ी समस्या थी। वह थी सोने की जगह की बात। पहले दिन सभी लोग थककर जहां-जहां जगह मिली वहां पड़ रहे। महबूब को सोने की जगह के बारे में पूछने में शर्म आयी। अंत में उसने देखा कि पिछवाड़े खुले एक कोने में एक महरी सोयी हुई थी। वहीं अपनी चादर डाल कर हरे रंग का शाल ओढ़कर सो गयी। सुबह ही सुबह उठकर राघप्पा ने वह शाल देखकर उसे पहचान लिया। वह आग-बबूला होकर पत्नी पर गरजने लगा। एक ढंग से पिछवाड़े का आंगन सुविधाजनक था। परंतु राघप्पा की कठोर आज्ञा के कारण उसे सभी स्त्रियों के सोने के हाल में ही एक कोने में सोना पड़ा। वहां उसे सब लोगों के व्यंग्यबाण, ताने और अनादर सहना पड़ा।

वह एक और महत्वपूर्ण कार्य के लिये यह सब सह गयी। शादी हो जाने के बाद गौना भी राघप्पा के घर में ही होना था। किट्टी के किराये का घर बहुत छोटा होने से देसाईजी ने अपने घर में व्यवस्था करने को कहा था। परंतु राघप्पा की जिद्द के कारण उसी की बात माननी पड़ी। और उसी के घर में व्यवस्था करने का निश्चय हुआ। उस दिन उनके पलंग को फूलों से सजाने की महबूब की आंतरिक इच्छा हुई। उस दिन के लिए उसका मन बेचैन था। सुहाग के कमरे को सजाने के लिए स्वयं विशेष अगरबत्ती तैयार करके अपने छोटे से बक्स में बड़े ध्यान से सहेज कर लायी थी। उस दिन के लिए ही वह सब कष्ट सहन करके चुप बैठी रही थी।

अभी भांवरे पड़ने को एक घंटा बाकी था। उसने रत्ना के जूड़े में ग्यारह प्रकार के फूलों की अर्ध चंद्राकार माला बनाकर सजायी। बाकी और शृंगार किया, जरा उसे चला कर देखा और आगे की रस्में पूरी करने को भेज दिया। उसने अपनी चांदी की चूने की डिब्बी निकाली। चारों ओर के शोरगुल पर उसका ध्यान ही न था। बाहर शहनाई वाले राग तोड़ी बजा रहे थे। राघप्पा ने धारवाड़ के सब से बढ़िया शहनाई वालों को बुलवाया था। रागालाप बड़े सुंदर ढंग से शुरू हुआ था। महबूबजान बाहर की दीवार की ओर कनखियों से देखती हुई पान पर चूना लगाती हुई मग्न-सी शहनाई सुन रही थी। धीमे स्वर में कोमल अलाप की धुन धीरे-धीरे निकलकर नदी की लहरों की भांति फैलती जा रही थी।...अरे यह क्या बेसुरी आवाज, महबूबजान ने आश्चर्य चकित होकर बिना सुपारी का ही पान मुंह में ठूंस लिया। राग बेसुरा है नहीं। ...मंडप से कई आवाजें सुनाई देने लगी। किसी ने गुस्से से जाकर शहनाई बंद करने को कहा। शहनाई के बंद हो जाने से शोर साफ सुनाई देने लगा।

अलस भाव से महबूबजान ने चूने की डिब्बी को ट्रंक में रखकर गले में लटकी चाबी से ताला बंद किया और बिना तंबाकू खाये ही बक्से पर कोहनी टिका कर उठी, सिर पर आधा पल्ला खींचते हुए अल्लाह कहकर हिचकियां लेती हुई बाहर आयी।

सब लोग झुंड बनाकर मंडप के एक ओर खड़े थे। सभी के खड़े होने के कारण महबूबजान को कुछ भी दिखायी न दिया। अपने पास खड़ी लड़कियों से क्या है ?

पूछने पर उनमें से एक ने उससे 'शी...' कहकर उंगली मुंह पर रखी। बाकियों को कुछ भी पता न था। इतने में लोगों में से रास्ता बनाती हुई तमतमाये मुख वाली एक विधवा बाहर आकर मंडप के द्वार की ओर चल दी। महबूब उसे पहचान गयी। पिछले दिन उसे किसी के गंगव्वा कहकर पुकारते हुए सुना था, इससे वह समझ गयी थी——वही वर की मां है। इसी भलीमानस ने चंपक्का के नाम पर तर्पण कर दिया था। अब उसी के पीछे-पीछे यजमान भी लोगों को हटाते हुए भागते हुए आये और उसने गंगव्वा को रोककर पगड़ी उसके पांव पर रख दी। वर भी दौड़कर आया और बोला, "मां जाओ नहीं।" गिड़गिड़ाने लगा। महबूब इन बातों को समझ न सकी। पीछे से एक और जरीदार पगड़ी वाला व्यक्ति आकर वहीं खड़ा हो गया। गंगव्वा उस आदमी की ओर मुंह करके हाथ उठा-उठाकर जोर-जोर से कुछ कहने लगी। लोगों के शोरगुल के कारण उसकी आवाज भर तो सुनाई दे रही थी पर वह क्या कह रही है यह समझ में नहीं आ रहा था। कुछ देर बाद उसका आक्रोश और चिल्लाना शांत हो गया। गंगव्वा घर के बाहर के चबूतरे पर जा बैठी। उसके आसपास फुसफुसाती हुई स्त्रियां चारों ओर खड़ी हो गयीं। वह किसी की ओर भी ध्यान दिये बिना चुप्पी साध कर बैठ गयी। यजमान भी उस पगड़ीधारी को साथ लिये आंगन के पास वाले कमरे में चले गये।

उस जनसमूह से एक दांत वाला भट्ट इधर आया। महबूब उसकी शक्ल पहचानती थी। कल ही उसके पास आकर तंबाकू मांगकर मजाक करके गया था। उसे रोककर महबूबजान ने पूछा "क्या हुआ ?"

"होना क्या है ? ... तुम्हारे यजमान की करतूत है।"

"क्यों ? क्या हो गया ? कुछ बताइये ? तंबाकू देती हूं।"

"होना क्या है सबको पता ही है। एक हजार रुपये वरदक्षिणा देने को लिख कर दिया था तुम्हारे घर वाले ने। अब जब भांवरों को एक घंटा रह गया है तो कहता है अभी पांच सौ रुपये ले लो। बाकी अगले महीने दे दूंगा। अगले महीने मिलना थोड़ा है ? यह तो राघोबा भरारी की बात है।"

उसने वृद्ध ब्राह्मण को तंबाकू देते हुए बहुत-सी अन्य बातें भी जान लीं। विवाह में खर्च अधिक हो जाने से वरदक्षिणा के लिए रखे पैसों को यजमान खर्च

कर बैठे हैं। दूसरी तरफ से आने वाले रुपये मिल नहीं पाये हैं। अब बक्से में सात आठ सौ रुपये बचे हैं। वे दूसरे और खर्चों के लिए रुपये रखकर अब समधि और देसाईजी को पांच सौ रुपये ले लेने को आग्रह कर रहे हैं। उनका कहना है दत्तक की शपथ ले चुके हैं इसलिए सभी संपत्ति आप ही की है। एक महीना ठहरने में क्या हर्ज है ? परंतु पहले से ही मनमुटाव होने के कारण और अब तक चुप रहकर भांवरों मे एक घंटे पहले यह बात कहने से उन लोगों को और भी संदेह हो गया है। इसलिए गंगव्वा सूई भर भी पीछे हटने को तैयार नहीं। उस का हठ है—अभी एक हजार गिने जायेंगे तो भांवरे पड़ेगी नहीं तो नहीं। बुद्धू किट्टी जब मां को समझाने गया तो वह बिगड़कर बोली "मुझे छोड़कर तू शादी रचा ले।" मंडप छोड़कर अकेली जाने के लिए तैयार बैठी है। देसाईजी के इस बारे में बातें करने का विश्वास दिलाने पर बाहर जाकर बैठी है। यजमान कमरे में देसाईजी से बात कर रहे हैं। कैसा अविवेक।... राघोबा भरारी... शादी में रुकावट... अपमान की बात है इत्यादि।

अपनी सारी पूंजी भानजे की किराने की दुकान के लिए लगा देने के बाद महबूब शगुन के लिए सौ और अपने खर्च के लिए पच्चीस रुपये भर लेकर आयी थी।

कमरे में सामने देसाईजी को बिठाकर राघप्पा कहे जा रहा था।

"राय साहब, गंगव्वा मेरे लिए परायी है क्या ? किट्टण्णा पराया है क्या ? बहिन को धोखा देने का मेरा तनिक भी विचार नहीं। आप तो जानते हैं कि शादी ब्याह की बात है। हमारा एक दांत वाला हनुमंत भट्ट कल कह रहा था—राघोबा तुम्हारी घर की शादी की धूमधाम देखकर तो जमखंडी के महाराज की शादी याद हो आयी —क्या करूं ? खर्च हाथ से निकल गया है। कल रात को जब बक्से में हाथ डालकर पैसे गिने तो केवल आठ सौ दस रुपये बचे हैं। अरे कहीं चोरी तो नहीं हो गयी सोचकर हिसाब देखा पर वह बिलकुल ठीक था। एक पाई भी कमजेश नहीं था। मेरी कई बड़े-बड़े लोगों से जान पहचान है। शुभ काम सोच खुले हाथ से खर्च कर दिया लेकिन खर्च ज्यादा हो ही गया। कल रात को ही आपके पास आना चाहता था। दस बज चुके थे इसलिए आपकी

नींद क्यों खराब करूं ? यह सोचकर चुप रह गया। सुबह आते ही आप से सब हकीकत बता दी है। मैंने कुछ छिपाया नहीं।"

"आपकी बात ठीक है राघप्पा। जब आप में और गंगव्वा में अनबन है तो शादी की इतनी धूमधाम न करके अपने वचन की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये था। इस बात में मैं गंगव्वा का कोई दोष नहीं देखता।"

"राय साहब, निप्पण्णा को बिदगोळ भेजा है... हनुमंत गोल के पास रायप्पा शेट्टी के पास राम को दौड़ाया है। अब नौ बजे का महूर्त भले ही टल जाय पर एक और अच्छा महूर्त है सवा ग्यारह का। इन दो घंटों में मैं पैसे इकट्ठे करने की जी जान से कोशिश करूंगा। लेकिन तब भी मुझसे न हो सका तो रायसाहब कम से कम सवा ग्यारह के महूर्त को न रोकियेगा। एक बार और मेरा विश्वास कीजिए। मैं आपके पांव पड़ता हूं। अभी लेने देने की बात तो है ही। गौना बाकी है। लड़की वालों की नकेल तो सदा लड़के वालों के हाथ में ही रहती है। इस समय बड़े-बड़े लोगों के सामने मेरी इज्जत रख लीजिये। किसी भी तरह इस स्थिति से मुझे पार लगाइये।... शुभ कार्यों में आप जैसे बुजुर्ग लोगों को आगे बढ़कर हमारी इज्जत रखनी चाहिए।"

राघप्पा के बारे में देसाईजी के मन में काफी अविश्वास पैदा हो गया था। एक बार उनके मन में आया कि कह दें 'मैं दिये देता हूं' पर उनको संदेह था। दूसरे किट्टी को देना कुछ और ही बात थी और राघप्पा को देना कुछ और। एक बात यह भी हो सकती है कि राघप्पा पैसे रखकर नाटक कर रहा हो।

इधर राघप्पा ने जो कुछ भी कहा उसमें आधा झूठ था, कुछ सत्यांश भी था। राघप्पा के पास केवल आठ सौ दस रुपये बचे थे, यह बात सच थी और यह भी सच था कि उसने एक दो जगह का भरोसा करके हाथ ढीला छोड़ दिया। खर्च ज्यादा हो गया था यह उसे पंद्रह दिन पहले ही पता चल गया था। हनुमंत गौड़ के मामले में कभी उसने मध्यस्थता की थी। उसके कुछ पैसे मिलने थे, उस पर भरोसा था पर लगा वहां से भी कुछ हाथ लगने वाला नहीं। विवाह के केवल तीन चार दिन रह गये थे। देसाईजी के पास गंगव्वा के रुपये रखने की बात किट्टी के द्वारा राघप्पा को पता चल गयी थी। यह बात सुनने के बाद उसके मन में आया कि समय पर कह दूंगा कि पैसा नहीं। हो सके तो तुरंत पांच सौ कम करा

दूंगा किट्टी तो भला लड़का है पर सब को यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि वह हजार रुपये लायक लड़का नहीं। यदि गंगव्वा ने हठ किया तो फिर दूंगा। कह कर उसी को नीचा दिखा दूंगा। सब ओर से उसी की भर्त्सना होने दो। हो सके तो देसाईजी को बीच में डाल कर तुरंत दस-पांच दिन में लौटा दूंगा कहकर उन्हीं से पांच सौ रुपये कर्ज लेकर दे दूंगा। यदि देसाईजी किट्टी के हजार रुपये उसे लौटाने में आनाकानी करें तो यह पांच सौ रुपये उस समय उनकी नस दबाने के काम आयेंगे।

विवाह की धूमधाम से प्रभावित लोगों को भीतरी बातों पर संशय उत्पन्न होने की संभावना ही न थी। लेकिन गंगव्वा के मन में अकारण ही संशय हो आया था। उसने भांवरों से एक दिन पहले देसाईजी के घर जाकर यह बात उठायी।

"गोपण्णा, वरदक्षिणा के बारे में यदि वह कुछ कमबेश करेगा तो मैं चुप रहने वाली नहीं हूं। यह बात समझ रखना।"

"गंगव्वा विवाह की तैयारी का रंग-ढंग देखने से ऐसा लगता है कि वह एक हजार रुपये देने में कोई हेरफेर नहीं करेगा।"

"उसका वैभव मुझसे छिपा है क्या गोपण्णा? सब कुछ है, करता भी है, चाहे तो अपनी रंडी पर भी पैसा लुटा देगा। पर हमारे साथ ईमानदारी बरतेगा इस बात का मुझे भरोसा नहीं। मेरा अपमान करने के लिए वह हमेशा ताक लगाये रहता है। दत्तक लेने की बात पर गंगव्वा झुक गयी। वह इस बात की डींग मारता फिरता है। मैं अपमान सहन करने को तैयार नहीं हूं। अगर किसी भी बात में कमोबेशी हुई तो मैं साफ कह दूंगी किट्टी अगर तू असल में मेरा बेटा है तो मंडप छोड़कर मेरे साथ चल। इस पर भी अगर वह न आया तो मैं चल दूंगी। मेरे बिना ही शादी होने दो।"

सारी बात गंगव्वा के कहे मुताबिक ही हुई। इस बातचीत के कारण ही देसाईजी ने स्वयं कर्जा देने की बात नहीं उठायी। उन्होंने राघप्पा की बातों पर दो टूक उत्तर दिया।

"राघप्पा इस मामले में अब मेरी जिम्मेदारी खत्म हो गयी।"

राघप्पा को अब बात हाथ से निकलती दिखायी दी। इसलिए और सांकेतिक रूप में कर्ज की बात उठायी। "राय साहब आप समझदार होकर ऐसी बात न

कीजिए, दोनों मिलकर रास्ता निकालेंगे। दो जगह पैसों को आदमी भेज रखे हैं पर मेरी प्रार्थना है कि इस मंगल कार्य में विघ्न नहीं होना चाहिए। मैं तो सदा आपके हाथ तले ही हूं। आपके सिवा और हमारा कौन है। कोई रास्ता निकालिये।" इस स्पष्ट सांकेतिक बात से देसाईजी और निष्ठुर हो उठे। सुनी-अनसुनी करके चुप्पी साधकर बैठ गये। राघप्पा ने और कोई चारा न देखकर बहिन को आंगन में बैठने को मजबूर किया। वह सवा ग्यारह के महूर्त तक प्रतीक्षा करने को तैयार हो गयी।

निमंत्रित लोग समय पर आने लग गये। किट्टी को भी मां का हठ देख अपमान सा प्रतीत हुआ। खीज कर वह जार्ज के साथ किसी चाय की दुकान में जा बैठा। निमंत्रितों को बिठाकर राघप्पा उन लोगों के लिए चाय का प्रबंध करने रसोई की ओर भागा। वहां रोती हुई चंपक्का उस पर बरस पड़ी। बाहर आने तक निमंत्रित लोगों में चलती हुई बातचीत सुनकर राघप्पा का मन खिन्न हो उठा। इतने में जायप्पा शेट्टी के पास भेजा गया राम साइकिल दौड़ाता हुआ आया और जोर से शेट्टी की बात दोहराने लगा, "उसने कैसे पांच सौ रुपये का फुटकर कर्ज मांग भेजा है? क्यों परसों ही तो तीन सौ रुपये ले गया है ना। बच्चों का खेल है क्या?" इसके बाद वह बोला "शेट्टी ने आपको ही बुला भेजा है।"

राघप्पा को लगा वह अपने जाल में स्वयं ही फंसता जा रहा है। हनुमंत गौड के पास भेजे तिपण्णा को यदि मोटर मिल जाय तो उसके आने में एक घंटा और लग जायेगा। यह सच है कि जायप्पा शेट्टी ने उसे डांटने को ही बुलाया है। देसाईजी तो जाल में फंसे नहीं। इस शोरगुल से दस मिनट को अगर वह बाहर निकल जाय तो कोई तरकीब दिमाग में आ सकती है। यह सोचकर जायप्पा शेट्टी के पास जाने का निश्चय करके उसने कोट और पगड़ी पहननी शुरू की।

राघप्पा के मंडप द्वार से बाहर निकलते-निकलते सामने से एक तांगा तेजी से आकर द्वार पर रुका। उसमें महबूबजान बैठी थी। अपने भारी शरीर को फुर्ति से संभालकर तांगे से 'अल्लाह' कहते हुए उतरी। उसके सिर उठाकर देखने तक राघप्पा स्वयं सामने आ गया था। उसने उत्सुकता से पूछा, "आप कहां जा रहे हैं?"

राघप्पा को अपना अपमान उससे बताने की इच्छा न हुई। उसे तांगे से उतरते देखकर राघप्पा को इस बात की तसल्ली हुई कि उसकी फजीहत के समय वह उपस्थित न थी। बात को बदलने के लिए उसने इतना ही पूछा "तुम कहां गयी थी ?"

महबूब बोली. "जरा भीतर तो चलिये।" फिर उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना तेजी से भीतर चली गयी। राघप्पा यह कहने को था कि जरा काम निबटा कर आता हूं पर उसके भीतर चले जाने के कारण वह भी उसके पीछे-पीछे भीतर चला गया।

महबूब ने सीधा अपने कमरे में जाकर अपने छोटे से बक्से को खोला और उसमें से दस-दस रुपये के दस नोटों की गड्डी निकाली। अपने ब्लाउज में एक कागज का पैकेट बाहर निकाल कर उसने एक बार झांककर देखा और उसमें ही वह दस के नोटों की गड्डी मिलाकर राघप्पा की प्रतीक्षा करने लगी। उसके भीतर आते ही "जरा बहिन जी को तो बुलाइये" कहा।

राघप्पा ने तनिक हैरान होकर पास खड़े बच्चों को आज्ञा दी "उसे बुला लाओ रे।" फिर महबूब से शंकित हो पूछा, "महबूब क्यों... क्या कर आयी ?"

महबूब ने उसका कोई उत्तर न दिया। चंपक्का की राह देखने लगी। वह सोचने लगी कि कुछ समय पूर्व एक बार चंपक्का ने जिस बात का संकेत दिया था। वह आज पूरा करके ऋण मुक्त होने का दिन आ गया।

चंपक्का के भीतर आते ही महबूब ने उसके हाथ में पैकिट थमा कर कहा, "दीदी यह शगुन संभालिए।" लिफाफे को खोलकर देखा और धरती पर धम से बैठ गयी।

उसमें सौ-सौ के चार और दस-दस के दस नोट थे।

महबूब ने राघप्पा की ओर घूम कर उसके हाथ में बड़ी सहेज कर रखी अगर बत्ती का पैकिट थमा दिया। उसकी आंखों में आंसू भरे थे।

"महबूब क्या कर आयी सच-सच कहो।" राघप्पा ने भरे गले से पूछा।

चतुरा महबूब बोली, "क्यों ? ... मैंने तो शगुन दिया है शगुन से इंकार करेंगे ?"

नौ बजने में केवल दस मिनट बाकी थे। अधिक पूछताछ के लिए राघप्पा के पास समय न था। उसका मन मूक पीड़ा से भर गया था। लालची चंपक्का के मुख से

कृतज्ञता के शब्द निकल रहे थे। परंतु उस गंभीर वातावरण में बातों से अधिक मौन ही शोभनीय था।

"नौ बजे भांवरें पड़ेंगी" राघप्पा ने जोर से घोषणा की। उससे सारा पंडाल गूंज गया। देसाईजी के सामने एक हजार रुपये गिन दिये गये। चाय की दुकान से किट्टी को बुलाया गया। चाय के लिए रखा पानी रसोई में ही धरा रह गया। वेदी के पास से मंत्रोच्चार सुनाई देने लगा। लोग वेदी के चारों ओर सिमट अये। उस शोरशराबे में राघप्पा को महबूब से यह पूछने का मौका ही न मिला कि यह अगरबत्ती उसने क्यों दी और किसलिए दी।

उस शोरशराबे में महबूब वेदी से दूर ही रह गयी। उसे वर-वधू पर आशीर्वाद के अक्षत डालने की बहुत इच्छा थी। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि अक्षत के सीधा उन दोनों पर पड़ने से ही उसका असली 'मुबारिकबाद' पूरा होगा। परंतु इस भीड़ में आगे घुस कर जाना उसकी सुखद देह से हो न पाया, दूसरे छुआछूत का भी तो डर था। अंत में उसने निश्चय किया कि भीड़ छटने पर वह पास जाकर अक्षत डाल देगी। इतने में ब्रह्माणों ने मंत्रों की घोषणा के बाद अंतिम मंत्र 'सुमुहूर्त समाधान' का उच्चारण किया। यह सुनकर सबने अक्षत वरवधू पर छिटक दिये। सबके छिटक देने से और अंतिम मंत्र पढ़े जाने से साथ वाद्यों के बजने से उसने अपना संतुलन खोकर वरवधू पर अपने हाथ में लिए अक्षत सारी शक्ति लगाकर फेंक दिये। वे अक्षत पास ही खड़े शरारती लड़कों के सिर पर गिर गये। पहले से दुखित महबूब और दुखी हुई। अपने जाने से पहले यजमान को यह बता कर जाने की उसकी इच्छा हुई कि वह अगरबत्ती सुहाग की सेज के पास जला दे। लेकिन यजमान तो भीड़-भड़के में फंसे थे। तांगेवाला बहुत देर से इंतजार कर रहा था। अक्षत पड़ते ही उसने द्वार के भीतर सिर घुसा कर इधर-उधर खोजना शुरू किया। महबूब उससे अपना ट्रंक और बिस्तर उठवा कर चली गयी, यह बात किसी को भी इस जमघट में पता न चल पायी।

उसके जाने के आध घंटे बाद चंपक्का ने जलपान के लिए उसे सारे घर में ढूंढ़ा।

उसी शाम को विवाह की शहनाई से भी बढ़कर जोर-शोर से बजने वाला एक

बैंड उस घर के सामने से गुजरा। बाहर चबूतरे पर एक दांत वाला हनुमंत भट्ट बैठा गप्पे मार रहा था। उसके हाथ में एक हैंडबिल आया। उसको पढ़ते ही वह धड़धड़ाता हुआ भीतर गया और उसे राघप्पा के हाथ में थमा दिया। राघप्पा ने जरा उदासीनता से उसका पहला हिस्सा पढ़ा परंतु अंतिम भाग पढ़ते ही उसके माथे पर पसीना आ गया।...

'श्री कुल देवता प्रसीदतु'

श्री शेषशायी नाटक कंपनी हुब्बळ्ळि कैंप धारवाड़ कंपनी आपकी सेवा में श्री उळवि बसेवश्वर के मेले में निम्नलिखित नाटक प्रस्तुत कर रही है।

आज से तीन दिन तक	वेंकटेश पारिजात
आगे ,, ,, ,,	गुलेबकावली
,, ,, ,,	रुकमणीहरण
,, ,, ,,	गांधी टोपी सिंगल चाय
,, ,, ,,	'साथ रहूंगा' नाटक

[वि. सू : इसमें परिवर्तन हो सकता है। आगे का कार्यक्रम फिर बताया जायेगा। (3) वंसमोर कहने पर गाना गायक की मर्जी।]

विशेष रूप से इस मेले के लिए हुब्बळ्ळि की प्रसिद्ध गायिका महबूबजान मिरजकर इन सभी नाटकों में मुख्य स्त्री पात्र का अभिनय करेगी। छह वर्ष के बाद धारवाड़ की रसिक जनता के सामने अपना मधुर गान उपस्थित करेगी। कलाप्रिय लोग यह सुअवसर न खोये।

स्थान—बसवेश्वर मंदिर के पीछे अपने निजी तंबुओं का थियेटर।

परमेश्वर भट्ट। मालिक शेषशायी नाटक कंपनी।

राघप्पा पसीने-पसीने हो गया। उसने इस बात की आशा नहीं की थी।

महबूब की अब उमर होती जा रही थी। शरीर भी भारी हो गया था। उसे हिचकियों की भी शिकायत थी। नाटक के श्रम को सहन करने की शक्ति उसमें न थी। राघप्पा का उसे नाटकों में भाग लेने से मना करने का कारण एक ही न था। छह वर्ष पूर्व वह इसी कंपनी में काम करती थी। तब उस समय हुब्बळ्ळि पशुओं के मेले में लगभग दस ग्यारह दिन लगातार बिना नींद और आराम के

नाटकों में नाच गाकर एक दिन नाटक खत्म होने के बाद उल्टी करके चक्कर खाकर गिर पड़ी। उसी के कारण टाइफाइड होने से एक मास बिस्तर पर पड़ी रही। मालिक परमेश्वर भट्ट को एक आदत थी। वह बहुत मिलनसार आदमी था और खिलाने-पिलाने वाला आदमी था। अच्छे कलाकार उसके हाथ पड़ जाते तो वह न केवल उन्हें जबर्दस्ती खिलाता साथ ही साथ पीने पर जोर देता। नाटक समाप्त होने पर सबको इकट्ठे बिठाकर घंटे आध घंटे उनसे गप्पे लड़ाता और पिलाता। वह यह अपनी आदत की वजह से करता था। अच्छे कलाकारों को अपने पास बनाये रखने के लिए या नींद खराब होने पर भी दूसरे दिन नाटक में भाग लेने का उत्साह बनाये रखने के कारण चाहे जो भी रहा हो वह इन बातों पर बहुत जोर देता था। महबूब को भी थोड़ा पीने की जरूरत पड़ती। पर आग्रह के कारण कभी-कभी बहुत पी जाती। उसी के कारण उसकी सांस फूलने लगती और हिचकियां आने लगतीं। इन बातों का पता लग जाने से राघप्पा ने अपनी रसिकता को एक तरफ करके महबूबजान को नाटक में भाग लेने से मना कर दिया था। इस प्रकार छह वर्ष बीत गये थे। महबूब पहले से स्थूलकाय हो गयी थी और पहले की तरह श्रम भी उसके बस का न था। आगे से हिचकियां भी ज्यादा आने लगी थीं। ऐसे में उसके लिए पांच सौ रुपये के प्रबंध के लिए क्या उसे जान की बाजी लगानी होगी ?

राघप्पा काम को जहां का तहां छोड़ तुरंत तांगा करके ग्रांड होटल में जाकर कंपनी के मालिक परमेश्वर भट्ट से मिला। परमेश्वर भट्ट महबूब को सामने बिठा कर पदमावती का पार्ट सुन रहा था। अनेक बार खेले इस नाटक में महबूब छह वर्ष की लंबी अवधि बीत जाने के कारण पार्ट में थोड़ा बहुत आगे पीछे कर जाती थी। एक ही शब्द से शुरू होने वाले दो संभाषणों में वह कभी एक को दूसरे के स्थान पर बोल जाती थी। अनुप्रास वाले वाक्यों के उच्चारण में गलती कर जाती। इसे प्राम्ट की सहायता से यह तो जोड़ा जा सकता था। पार्ट याद करने में महबूब बेवकूफ न थी पर उसे अर्थ समझ में न आता था। इसीलिए एक शब्द की जगह दूसरे का प्रयोग कर जाती। इस बात को समझने वाले परमेश्वर भट्ट एक अनुभवी के रूप में इधर-उधर से सूचित करते हुए उसके धीमे स्वर में सुन रहा था। अनुभवी कलाकर को जोर से बोलने की आवश्यकता न थी। इन

तीन चार घंटों में ही उसने काफी सुधार लिया। टेढ़ी मांग निकाले और फूलदार साड़ी पहने महबूब में रंगमंच की पदमावती के भाव मुख से दिखने लगे थे।

राघप्पा सीधा कमरे में घुस गया। परमेश्वर भट्ट राघप्पा का बड़ा आदर करता था और उससे डरता भी था। वैसे उसने महबूब से कागजों पर हस्ताक्षर करा लिये थे पर यदि अब राघप्पा महबूब को घर चलो, कह देता तो कहानी वहीं खत्म हो जाती। मौका आने पर कोर्ट कचहरी तक पहुंचना उसे मालूम था और वह रुकावट भी डाल सकता था। इसलिए भट्ट ने उसका स्वागत करते हुए आसन ग्रहण करने को कहा। राघप्पा खड़े-खड़े ही गुस्से से गरज कर बोला, "ए भट्ट मैं तुम्हारे साथ बात करने नहीं आया। इस समय महबूब तुम्हारे हाथ आ गयी है। ठीक है। यदि तुमने इसे पिलायी तो दो दिन में तुम्हें शहर से भगा दूंगा, और तुम्हारे तंबू फुंकवा दूंगा, खबरदार।"

पिछली बार महबूब के बीमार होने पर राघप्पा ने जोड़तोड़ करके भट्ट का लाइसेंस रद्द करवा दिया। इस समय महबूब जान को खींच लेजा कर नाटक का सत्यानाश नहीं किया। इतने को ही गनीमत मानकर भट्ट खुश हुआ। वह स्वयं उठकर बोला, "अरे-रे-राघप्पण्णा[1] यह कैसी बात करते हो, महबूबजान आपकी चीज है, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगा। उसके मांगने पर भी देनी नहीं होगी क्या? जैसा चाहते हैं वैसी आज्ञा दे जाइये।"

"वह जितनी मांगे उतनी दो, पर सामने बैठकर आग्रहपूर्वक पिलाने की बात पता चली तो तेरी ऐसी गत बनाऊंगा कि याद करेगा।"

महबूब से बात करने या उससे आंखें मिलाने की भी हिम्मत राघप्पा में न थी। इतना कहकर वह घूमकर वहां से चला आया।

महबूब के रहने से शादी का घर भरा-भरा-सा लगता था। उसके जाने के बाद शादी वाले घर की रौनक ही कम हो गयी। रसिक भट्ट को, शरारती युवकों को मजाक करने को कोई न रहा। औरतों के लिए गुस्सा उतारने की चीज आंखों से ओझल हो गयी। छुआछूत मानने वाली विधवाएं भी कहने लगीं "उसके रहते सारा पंडाल भरा भरा-सा लगता था अब भांय-भांय करने लगा, बेचारी!"

[1]अण्णा—बड़ा भाई।

दुलहन भी कपड़े पहनते हुए उसे याद करती। लड़कियां महबूब को मिलनसार कहतीं तो चंपक्का अपने को अपमानित महसूस करती। राघप्पा का उत्साह तो उतर ही गया था। वह मन में दुखी था कि क्या सोचा था क्या हो गया। महबूब उसके प्रेम तथा अभिमान का भी केंद्र थी। उसके जाने से इसके जीवन की शक्ति ही मंद पड़ गयी। रात को नींद ठीक से नहीं आयी। शादी के पंडाल की रौनक ही गायब हो गयी।

20. किट्टी का गृहस्थाश्रम

बहू घर आ गयी। घर भर गया। गंगव्वा ने उसका प्रेम से स्वागत किया। जहां तक हो सका उसने अपना निरुत्साह प्रकट होने न दिया। उसने देसाईजी के कहने के अनुसार चलने का प्रयास किया। बहू की छोटी-मोटी गलतियां दिखायी देने पर शुरू-शुरू में अपना मन ही टटोलती कि कहीं मेरे मन में राघप्पा की चिढ़ के कारण तो लड़की में दोष नहीं दिख रहे। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे परिस्थिति के परिवर्तन के कारण गंगव्वा को अपनी चिंताएं छोड़नी पड़ीं। आरंभ में गंगव्वा को थोड़ा दुख हुआ। ...किट्टी ने तीन-चार वर्ष से उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया था। घर पर आने पर अधिक बातचीत न करता। पत्नी के आने पर उसकी जबान खुल गयी उसके साथ खूब घुल-मिल कर बात करता पर उसकी उपेक्षा कर जाता। यह उसके लिए नया अनुभव था। दो महीने में ही बहू का प्रभाव बेटे पर दिखायी देने लगा। उसको इस बात का संदेह था कि बहू के कारण ही घर में किट्टी का बातचीत करना शुरू हुआ। इस नये अनुभव के साथ समझौता करना उसे बड़ा कठिन-सा लगा। उसका जीवन शून्य-सा लगने लगा मानो वह कुछ खो बैठी हो। उसके मन में अनेक बुरे विचार आते या भयानक शून्यता दिखायी देती। बहू के साथ समझौता करने का उसने एक और उपाय सोचा। दो-चार दिन उसे साथ लेकर पुरानी सहेलियों के घर दिखा लायी। परंतु उसमें भी कुछ ही दिनों में

स्वाभाविक दोष दिखायी देने लगे। उसके पिता के बारे में कुछ भी पूछे जाने पर रत्ना उसका गलत अर्थ लगाकर स्पष्ट रूप से अपनी चिढ़ प्रकट कर देती। एकाध बार दहलीज लांघते ही 'बहू तेज है', 'बहू जबर्दस्त है' आदि उन लोगों के उद्गार सुनने के बाद से तो रत्ना और भी तीखी हो गयी। ऐसे ही अनेक छोटे-मोटे अनुभव गंगव्वा के मन की शून्यता को उभारने लगे। छोटा घर, अनेक असुविधाएं, एक ही कमरा और रसोई वाला घर। अब सीली रसोई में तीन पटरे जोड़कर अपना बिस्तर लगा लेती। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे उसे किट्टी के कमरे के पास सोना असह्य होने लगा।

घर में छोटी-मोटी बातों पर झगड़े पैदा होने लगे। रत्ना ने अपनी मां के मुंह से गंगव्वा के बारे में अतिरंजित वर्णन सुनकर उसके बारे में अनेक भयानक कल्पनाएं कर रखी थीं। उसके मन में गंगव्वा का एक विकराल चित्र घर कर गया था। उसके लिए रत्ना के मन में आधा भय और आधा द्वेष था। पांच सौ रुपयों के लिए विवाह में विघ्न डालने वाली कुरूप बुढ़िया के बारे में इस नवयुवती के मन में और क्या कल्पना हो सकती थी? शुरू-शुरू में गंगव्वा उसी के हित के लिए दिये उपदेशों का वह उल्टा अर्थ लगाकर मन ही मन जला करती। पर सामने मुंह न खोलती थी, क्योंकि चंपक्का ने विदा के समय आंखों में आंसू भरकर यह सीख दी थी कि वह चाहे कुछ भी करे तुम जवाब मत देना। मां की इस सीख को भूलने को कम से कम एक डेढ़ महीना तो चाहिए था। पहले-पहले गंगव्वा के अच्छी बातें कहने पर भी सोचती। उसमें कोई व्यंग्य तो नहीं? कई बार यह सोचकर कि उन बातों में कुछ है भीतर ही भीतर कुढ़ती। यदि उसमें कोई व्यंग्य न दिखायी देता तो यह समझती थी कि संभवतः उसे बात की गहराई समझ में नहीं आयी। यह सोचकर उसका डर बढ़ जाता। जब भी वह गंगव्वा से बात करती तो वह अपने बचाव की ध्वनि में ही बात करती।

"रत्ना नयी साड़ी पहनकर चौका बरतन नहीं करना।"

"बाहर फटी साड़ी पहनकर बरतन माजूं, ठीक है कल से ऐसा ही होगा।"

"रत्ना नमक इस तरफ मत रखा करो।"

"आप जहां कहोगी वहीं रख दूंगी, बीच में सरका दूं।"

"रत्ना रसोई में कंघी न करो खाने में बाल आयेंगे।"

"बाहर वे बैठे हैं वहीं कंघी करने को कहती हैं तो कर लूंगी।"

इस प्रकार की बातचीत के असुखकर व्यंग्य और संदेह धीरे-धीरे शुरू होने से सास-बहू के बीच अंतर बढ़ने लगा। गंगव्वा ने शुरू में उसे बताया कि वह उसे 'मां' कहकर पुकार सकती है परंतु रत्ना ने एक बार भी उसे मां या बुआ कहकर संबोधित नहीं किया। पुकारने का अवसर आने पर वह उसके पास जाकर जोर से कहती 'भिंडी काटूं या कुछ और ?' 'चूल्हे में आग सुलगा दूं' आदि इस प्रकार चिल्लाती जैसे बहरों से बात की जाती है।

इस प्रकार गुप्त रूप से जो विष की नदी बह रही थी वह अनचाहे में ही ऐसे प्रकट हुई कि किसी के रोके न रुक सकी।

एक दिन गंगव्वा सहज रूप से बोली, "किट्टण्णा हरी तोरई बाजार में आयी है एक दिन ले आओ न, सब्जी बनायेंगे।"

पति-पत्नी दोनों ने ही यह बात सुनते ही एक दूसरे की ओर देखा।

पिछली रात को रत्ना ने यही बात पति के कान में कही थी। उसने कहा था कि उसके पिता के घर में तोरई की सब्जी बनी थी वे भी बना सकते हैं। अच्छी स्वादिष्ट बनती है। सब विस्तार से बताया था।

गंगव्वा की बात का किट्टी ने कोई उत्तर न दिया। रसोई में खिड़की न होने के कारण रात में गर्मी होने पर भी गंगव्वा कमरे के दरवाजे से काफी दूर हटकर चूल्हे के पास सोती थी। पर उस दिन इतनी दूर होने पर भी उनकी फुसफुसाहट उसके कान में पड़ गयी, "धीरे बोलिये दरवाजे की संध में से सुनती रहती हैं।"

सारी रात उसे नींद नहीं आयी। अगले दिन वह जोर से तकरार करके कि रसोई में बहुत गर्मी होती है गंगव्वा अपने बिस्तर की गठरी काशी की मां के घर रख आयी। इसने रात भर को तो घर छुड़वा दिया अब देखो दिन के लिए क्या टंटा खड़ा करेगी। इस बात पर दुखी होती हुई गंगव्वा देसाईजी की बात याद करके चुप रहने लगी। उसने अपने मन को समझाया। नाखूनों से कभी मांस अलग नहीं होता।

रत्ना में अपनी मां के सात्विक गुणों के साथ-साथ पिता की दो एक प्रवृत्तियां भी थीं। साधारणतः उसके चाल-चलन में वे गुण प्रकट न होने पर भी आवश्यकता पड़ने पर उन गुप्तास्त्रों को बाहर निकालती। उस रात की बात भी चालाकी

से ही कही थी। उसने जो निशाना लगाया था वह पति तो समझ न पाया पर लगा ठिकाने पर। इसलिए वह मन-ही-मन प्रसन्न हुई। उसे इस बात का अभिमान हुआ कि सास का मुकाबला करने योग्य दुष्ट बुद्धि भी भगवान ने उसे दी है। गंगव्वा ने भी बहुत से घरों की बहुएं देखी थीं इसलिए उसे इसमें कोई खास बात नजर न आयी। उसे इस बात का दुख हुआ कि यह भी आम बहुओं जैसी ही निकली। उस उलझन को उसे स्वयं ही सुलझाना था। मुंह खोलने में कोई लाभ न था।

काशी की मां के घर जब से सोने लगी तब से नयी कठिनाइयां पैदा होने लगीं। गंगव्वा को सुबह पांच बजे उठने की आदत थी। आवाज दे देकर दरवाजा खुलवाने में आधा घंटा लग जाता। इतनी जल्दी जगाने पर किट्टी बड़बड़ाता। इसके साथ ही उसके घर का दरवाजा पीटने को उसी समय जागने वाली आसपास की औरतें देखतीं और हंसतीं। कभी मजाक भी उड़ातीं। यह गंगव्वा के लिए सहना असंभव हो गया। सीधी-सादी लक्ष्मुबाई सताबाई कहती 'गंगव्वा बहू आने पर सास का यही होता है समझी।' इस पर भी गंगव्वा का अभिमान न टूटा। वास्तव में बहू उसके हाथ में होती तो वह भी इस परिहास से आनंद उठा सकती यह सोच कर कि असलियत किसे पता है, गंगव्वा चिढ़ जाती।

आखिर में तंग आकर किट्टी को यह बात बता कर गंगव्वा रसोई का दरवाजा बाहर से ताला लगा कर चाबी अपने साथ लेकर सोने जाने लगी। अब कुछ दिन चैन से गुजरे। परंतु एक दिन चाबी कहीं गिर गयी। गंगव्वा उसे ढूंढ़-ढूंढ़ कर थक गयी। काम रुक गया। चाबी मिली ही नहीं। आखिर उस रेलवे के ताले को तुड़वाने में चार घंटे लगे। पहले से ही दुखी गंगव्वा को किट्टी ने भी रत्ना के सामने ही चार खरी-खरी बातें सुना दीं जिससे उसकी आंखों में आंसू भर आये।

बहू के साथ अंदर-ही-अंदर चलती हुई बातें झगड़े के रूप में बदल गयीं। रत्ना जब आप सही होती तो जवाब दे देती, नहीं तो रो-रो कर कोने में घुस जाती। हाल ही में दोपहर को पिता के घर जाकर शाम को घर लौटी। गंगव्वा ने एक बार किट्टी को यह बात बताने का निश्चय किया, परंतु उसी शाम को किट्टी पत्नी के साथ तांगा करके हंसता-हंसता घर आया। इस प्रकार उसे मैके जाने का अधिकार मिल गया। इस प्रकार पति की सहायता से रत्ना हर बात में जीतने लगी।

घर पर तीज-त्योहार पर आस-पड़ोस के लोगों को आमंत्रित करने से भी इनकार करने लगी। एक दिन किट्टी ने जोर देकर उसे देसाईजी के घर वेणुबाई को हल्दी कुंकम[1] के लिए बुलाने भेजा। वहां वेणुबाई ने बिना किसी लुकाव-छिपाव के सीधे ही कह दिया 'क्यों री तू सास की बराबरी करती है। देखो यह बात ठीक नहीं। उसने बहुत दुख देखा है, उसे तो तुझे मां की तरह रखना चाहिए।' यह सुन कर कमाऊ पति की पत्नी रत्ना को अपमान-सा लगा। अगली बार जब वेणुबाई ने रत्ना को पानफूल के लिए बुला भेजा तो वह किट्टी के आग्रह करने पर भी वहां न गयी। पास-पड़ोस में वह किसी से बात न करती। किट्टी यदि कुछ कहता तो वह अपनी मां की कही बात दोहरा देती। यह जगह अच्छी नहीं। कमाऊ होकर ऐसे घर में रहने से सब हंसते हैं। हमें छोटा मानते हैं। कहीं और मकान देख लीजिये।

एक दिन रत्ना हद पार कर गयी। 'पति-पत्नी का प्यार देखकर लोगों के दिलों में आग लगती है।' कह कर उंगलियां चटकायीं, उस रात गंगव्वा ने फलाहार नहीं किया। किट्टी ने पत्नी को पीटा। वह सारी रात रोती रही। पति के सांतवना देने पर वह बोली, "बुआ जी कह रही थीं मैंने पति पर जादू कर दिया है—इसीलिए मैंने उन्हें जवाब दिया, यह सच है।" किट्टी को ऐसे झगड़े के बीच फैसला करना कठिन हो गया। दोनों विरोधी प्रवृत्ति को लेकर चल रही थीं और अपनी बात से एक कदम भी पीछे हटना नहीं चाहती थीं। गंगव्वा अपने बेटे के सामने बातें कह-कहकर गला सुखा लेती पर रत्ना इन सब बातों का दो टूक जवाब देती, 'बात यह है कि मैं बिदगोळ राघप्पा की बेटी हूं, मुझ पर आपको कैसे विश्वास हो सकता है!' यह कह कर अपने रोने के प्रताप से जीत जाती। कोई भी फैसला करने में असमर्थ किट्टी मूर्ख बन गया। पत्नी को अपनी माता के किये उपकारों पर एक भाषण दिया। उस पर रत्ना का उत्तर यह था, "मेरे मां बाप की पुरानी बातों को लेकर मुझ पर अंगारे बरसाती है। अपनी मां के हाथों मेरी जान लेने के लिए मुझसे शादी की है, क्या बुआजी ऐसे क्यों न करें? तुम भी उन्हें ढील देकर मुझे कुएं तालाब में डूबने मरने को लाचार न करो।"

---

[1]दक्षिण में सुहागिनों को हल्दी, सिंदूर, पानफूल आदि देने की रस्म।

इन सभी लड़ाई-झगड़ों के बीच गंगव्वा ने एक कठोर व्रत ले रखा था। प्रतिदिन उसकी बातें स्मरण करके अपनी बुद्धि को स्थिर करती। उस व्रत के महत्व से, रोज की खटपट झूठ, फरेब, दुख, संकट सब सागर के ऊपर की लहरों की तरह क्षुद्र लगते। वह व्रत था 'कुछ भी हो जाय किट्टी का साथ नहीं छोड़ना चाहिए। बहू कितनी भी दुष्ट क्यों न हो, घर छुड़ाने के लिए कैसे जाल क्यों न फैलाये ? घर नहीं छोड़ना चाहिए। घर छोड़कर यदि किट्टी से अलग हो गयी तो मान क्या रहा ? ... एक बार बच्चे को गोद में ले लेने के बाद उछल कूद मचाता देखकर मझधार में छोड़ देते हैं क्या ? ... और अभी राघप्पा के दत्तक की बात भी है। अब राघप्पा पुराना बैर चुकाना चाहेगा। उसकी योजना को सफल होने का मौका नहीं देना चाहिए। कितना भी अपमान क्यों न हो। कितना भी कष्ट क्यों न आये उस कमजोर पुत्र का हित मुझ से ही हो सकता है इसलिए उसके सामीप्य को छोड़ना नहीं चाहिए। आज यदि मैं उसका साथ छोड़ दूं तो राघप्पा कल ही उसे निगल जायेगा।'

21. देसाईजी के सुख दुख

देसाईजी के सबसे बड़े बेटे को बी. काम. पढ़ने बबई गये दो वर्ष बीत गये थे। सबसे छोटा बेटा पुरुषोत्तम अभी छोटा था। अंग्रेजी स्कूल में अभी पांचवी कक्षा में पढ़ रहा था। यह लड़का कुशाग्र बुद्धि का था। देसाईजी इसी के लिए दो वर्ष और धारवाड़ में रहने का निश्चय कर चुके थे। परंतु गांव से आने वाली खबरों के कारण सोचने लगे कि शायद उन्हें यह विचार बदलना पड़ेगा। अब वे यह बात भी सोचने लगे कि पुरुषोत्तम को अच्युत के पास बंबई भेजकर वे स्वयं अपने गांव में जाकर रहें तो कैसा रहेगा। इन्हीं विचारों में दिन बीतने लगे। शहर में रहने का अभ्यस्त होने के बाद एकदम उखड़ कर जाना असंभव है। ... गांव में वसंत के बारे में फैसला करने का समय आया और साथ ही नये-नये

समाचार भी मिलने लगे।

दस-पंद्रह दिन में एक बार वसंतराव के बारे में कोई न कोई समाचार देसाई जी को मिल ही जाता, ऐसे भी बहुत से विषय थे जो उनके कानों तक न पहुंचते थे। उनको देसाईजी समझ सकते थे। खबर लाने वाले गांव के बूढ़े किसान पिता के सामने कहने योग्य बात को काफी संयम से कहते। देसाईजी अपनी मर्यादा के अनुकूल बात कहने का अवकाश देकर जो कुछ समाचार सुनते उसे अपनी कल्पना शक्ति से पूरा करके अपना ही अर्थ निकाल लेते। किसानों ने बताया था कि वसंत शोहदे लड़कों को इकट्ठा करके उनके साथ ताश खेलकर समय बिताता है। वसंतराव के मित्रों के नाम सुनकर उन्होंने अंदाज लगाया कि उसे कुछ पीने की भी लत शुरू हो गयी होगी। गांव पहुंचने के कुछ ही दिनों के बाद वसंतराव गांव के लोगों के दुख-सुख के बारे में गांव के लोगों से भी अधिक उत्साह दिखाने लगा। आम गांव वालों को अपने बैलों पर बहुत अभिमान होता है। उनकी देखा-देखी वसंत भी बैलों को प्यार करने लगा। उनको पंद्रह दिन में एक बार धारवाड़ के लाइन बाजार के पेड़े खिलाता। यह आहार उसी की विशेषता थी और उसके दिमाग की उपज भी। साथ ही साथ खेतों पर भी अभिमान होने लगा और वह फसल कटने के समय कभी-कभी खेत में सोने जाने लगा। एक बार सुबह-सुबह उसके खेत के साथ वाले खेत वाले लड़के ने खेत से चार-छह ज्वार बालियां तोड़ लीं। इस कारण उसे चौपाल पर लाकर चाबुकों से पीटा। वसंतराव के उत्साह के परिणामस्वरूप गांव में द्वेष और कलह धीरे-धीरे बढ़ने लगे। यह खबर देसाईजी तक भी पहुंची। परंतु इन दिनों वसंत के बारे में पहुंचे सही समाचारों के कारण देसाई डरने लगे थे। यदि सारी बातें सच सच पता लग जाये तो वे उन्हें सहन कर पायेंगे? इसी डर से उन्होंने वसंत को उसके हाल पर छोड़ दिया। उसे सुधारने अथवा उसके द्वारा किये गये कुकर्मों के दुष्परिणामों को कम करने के लिए वे नहीं गये। उनको जो कुछ भी वास्तविकता पता चली थी उसी का थोड़ा हिस्सा पत्नी को बताया। उन्हें पता था कि वे उसे यदि सत्य का दसवां हिस्सा भी बता दें तो वह सहन नहीं कर पायेगी। इसलिए 'गाने की मंडली बनायी है' के स्थान पर बताया कि उसने चार मित्र बनाये हैं, खेत की रखवाली करने में किसी को चाबुक से मारने की बात को खेत की ओर

ध्यान देता है, बताया। उन्हीं बातों को सुनकर आत्मसंतोषी वेणुबाई बेटे के बारे में सुंदर स्वप्न देखने लगी।

हाल ही में आया समाचार और भी चिंताजनक था। वसंत ने घर में रखे अनाज की बोरियां ही न केवल बेच डालीं बल्कि भंडार भी खाली कर दिया। शकुनी जैसे एक दो मित्रों ने अपने घर भर लिये। गांव के कुछ सभ्य लोगों ने देसाईजी के डर से कम भाव होने पर भी खरीदा नहीं। वसंत उन पर जहर उगलने लगा। यह खबर देसाई तक पहुंचे बिना न रही। देसाईजी ने पत्नी को यह सब कुछ न कहकर केवल फसल की कटाई देख आऊंगा कहकर गांव गये।

बाहर वालों को इस शोचनीय परिस्थिति का पता न चलता था। परंतु वसंत को पास से जानने वाले देसाई तुरंत समझ गये। गांव में पार्टियां बन गयी थीं। राम गौड़ एक बड़ा किसान था। उसके मुल्की परीक्षा में पास बड़े बेटे और मैट्रिक न पास किये वसंत में जानी दुश्मनी हो गयी थी। उन दोनों ने चार किताबें पढ़ी थीं। दोनों अमीर थे। दोनों बड़े किसान थे। पहले स्पर्धा में जो बात शुरू हुई वह द्वेष में बदल गयी थी। उसके अपनी गली के लोगों को इकट्ठा करके बैलाट[1] खेलने की तैयारी करते ही वसंत के शोहदे दोस्तों ने उसे भी उकसाया। अतः यदि गौड़ बैलाटा करे तो मुझे नाटक खिलवाना ही चाहिए। यह निश्चय करके उसने सीमा-वर्ती गांव के संगीत नायक को गांव में बुलवाकर अपने घर में ही तैयारी शुरू करा दी। भागवत अप्पण्णा भट्ट सारी रात नाटक में भाग लेनें वालों को संगीत सिखाता। घर में दिन-रात धिन ता थै थै होने लगा। रात की नींद हराम हो गयी पर द्वेष से उत्पन्न यह शौक अनेक रूप में आगे बढ़ा।

देसाईजी जब गांव पहुंचे तो घर की धमाचौकड़ी थम गयी। उसके साथ ही वसंत भी अपने में ही सिमट गया। वह घर में रहने पर भी पिता के सामने पड़ने से बचता था। देसाईजी यदि पिछवाड़े जाते तो वह बाहर के हिस्से में आ जाता और यदि वे आगे आते तो वह पिछवाड़े चला जाता। इस प्रकार 'या निशा सर्वभूतानां' की कहावत को चरितार्थ करता। डर के मारे नाटक वाले सभी मित्र घर से भाग निकले तो देसाईजी समझे यह खेल यहीं खतम हो जायेगा। पर दो-

---

[1]यक्षगान की मैसूर में प्रचलित एक विधा।

तीन दिन में ही पता चला कि गली की नुक्कड़ पर 'भुतहे घर' के नाम से प्रसिद्ध घर में बिना नागा नाटक का अभ्यास चल रहा है। जब-जब देसाईजी वसंत को बुलाते तभी-तभी वसंत आने से बचता। बुलाने के लिए गये नौकरों को घमंड से कहता, ' जाकर कह दो नहीं आता।'' पर नौकर देसाईजी के डर से या अपनी समझ से देसाई जी को आकर यों बताते 'अभी आता हूं कहकर गये हैं साहब।' 'मैं मिला नहीं' कह दो। हमने कहा पिता जी बुला रहे हैं तो वे पिछवाड़े से कहीं चले गये साहब।'' आदि-आदि। देसाईजी ने सोचा उसे पकड़ मंगाया जाय और आगे यह सोचकर कि कल वसंत को ही बहादुर देसाई बनना है इसलिए इतना कठोर कदम न उठा पाये।

अब उन्होंने दूसरा उपाय सोचा उसके साथ आंखमिचौनी कम कर दी। उन्होंने भागवत अप्पण्ण भट्ट को बुलाया और उसके हाथ में पंद्रह रुपये देकर उसे गांव छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी। अप्पण्ण भट्ट के भाग जाने की खबर सुनकर रामण्णा गौड़ के घर में खुशियां मनायी गयीं। और वसंत का अपमान हुआ। वह दुखी हुआ। इसलिए वह पिता से मिलने आया। देसाईजी ने उसको गुस्सा होकर समझाया कि फिर कभी उसे उन्हें बताये बिना अनाज नहीं बेचना चाहिए, और अप्पण्ण भट्ट को बुलाने की अनुमति भी दे दी। बेचे हुए अनाज के पैसों में से अभी कुछ पैसे उसके पास बचे हुए थे। उन्होंने उन पैसों को उसी के पास रहने दिया। अपने रैयतों को बुलाकर उनको वसंत पर निगरानी करने को कहा और उनसे जो लगान लेना था वह वसूल करके पंद्रह दिन बाद लौट आये।

धारवाड़ में उनके लिए एक पत्र प्रतीक्षा कर रहा था।

क्षेमा श्री बुधवार ता. 23

बंबई

तीर्थ रूप के चरणारविंदों में चि. अच्युत का साष्टांग नमस्कार। मैं कुशल हूं। अब मैंने कामर्स कालेज छोड़ दिया है। दूसरी पढ़ाई शुरू कर दी है। मुझे लगा कि कालेज की पढ़ाई से कोई लाभ नहीं है। इसलिए छोड़ दी है। आपको अभी तक सूचना नहीं दी थी अतः क्षमा करें। दूसरा काम सीखने लग गया हूं। नये सिरे से शुरू करने के कारण पैसे की कठिनाई हो गयी है। इसलिए कृपा करके नीचे लिखे पते पर सौ रुपये भेज दें। विलंब न करें। शेष कुशल है। मातुश्री के चरणों

में मेरा साष्टांग नमस्कार, उनका तथा चिरजीवी भाइयों का कुशल समाचार देवें। इति।

अच्युत

पता :

देसाईजी को इस पत्र का मतलब ही समझ में नहीं आया। इसने कालेज क्यों छोड़ दिया? ...अपने आप ही तो यह कहकर कामर्स पढ़ने गया था कि आर्टस् पढ़ने में लाभ नहीं है। अब कालेज की पढ़ाई में भी लाभ क्यों नहीं है? नया काम क्या हो सकता है? यह नया पता कौन-सा है? आटे की चक्की पर उसका क्या काम? कहीं कोई और मूर्खता तो नहीं कर बैठा। बंबई से काफी सारी खबरें समाचार-पत्रों में छप रही थीं। उन्होंने सोचा चाहे जो भी हो वे स्वयं जाकर देखेंगे। तार से रुपया भेजकर दो-तीन दिन में घर में यह बताकर कि 'अच्युत से मिलने जा रहा हूं' स्वयं बंबई के लिए रवाना हो गये।

बोरीबंदर पर उतरते ही लालबाग जाने का विचार छोड़कर पहले कामर्स कालेज के होस्टल जाने के लिए विक्टोरिया कर ली। वहां होस्टल के सुपरिटेंडेंट से मिले। मिलते ही अच्युत के अविवेक का समाचार मिला।

नमक सत्याग्रह।

अच्युत के दो मित्रों के साथ कालेज के सामने एक बार पिकेटिंग करने के कारण कालेज के अधिकारियों ने उसे चेतावनी दी थी। दूसरे दिन सुपरिटेंडेंट से आकर कहा कि वह गांव जाना चाहता है। उन्हें उसमें संदेह हुआ और उन्होंने उससे पूछताछ की। उनको कोई नसीहत देने का मौका न देकर 'मैं घर ही जा रहा हूं और कहीं नहीं।' कह वह होस्टल छोड़कर चला गया और उसने प्रत्यक्ष रूप में सत्याग्रह में भाग लिया। उसके दो मित्र तीन दिन तक जेल में रहकर क्षमा मांग लेने से छूट गये। उनको फिर से कालेज में दाखिला मिल गया। साथ ही साथ होस्टल में जगह भी मिल गयी। अच्युत ने क्षमा न मांगी, इसलिए उसे एक मास तक जेल काटनी पड़ी। जेल से छूटने के बाद वह कालिज आया पर सरकार ने उसके आने से पहले ही रिपोर्ट भेज दी थी जिससे उसे दाखिला न मिल सका। होस्टल से अपना बोरीबिस्तर समेटकर गये उसे पंद्रह दिन हो गये थे। देसाईजी ने अच्युत के दोनों दोस्तों को बुलाकर उनसे सारी

जानकारी प्राप्त की। सारी कहानी वही थी। उन्होंने बताया कि जेल में उनके बहुत कहने-सुनने पर भी उसने क्षमा नहीं मांगी और अपनी जिद पर अड़ा रहा। अब वह कहां है यह बात उन्हें भी पता नहीं। इसके अतिरिक्त देसाई को यह भी पता लगा कि उसने अपने मित्रों को उन्हें पत्र न लिखने की सख्त हिदायत दी थी।

देसाईजी ने अतीव नम्रता पूर्वक सुपरिटेंडेंट से पूछा कि उन्हें पत्र क्यों नहीं लिखा गया। सुपरिटेंडेंट बोले, 'लिखा तो लगता है' मैंने ड्राफ्ट किया था और प्रिंसिपल महोदय ने उस पर हस्ताक्षर किये थे। बाद में उन्होंने बाहर जाने वाले पत्रों की रजिस्ट्री देखी तो उससे पता लग गया कि सरकार की रिपोर्ट आते ही पत्र लिखा गया था। पत्र न मिलने का कारण। देसाईजी ने कौतूहल से अपने आप रजिस्टर देखा उसमें उनका नाम ठीक था पर गांव का नाम धारवाड़ के स्थान पर धारीवाल लिखा गया था। तो वे समझ गये कि वह पत्र धारीवाल चक्कर काटकर अब तक डेड लेटर आफिस में पहुंच गया होगा।

अब किसी को दोष देने की मनस्थिति में देसाईजी न थे। उन्होंने सुपरिटेंडेंट से पूछा 'यदि अभी क्षमा मांगी जाय तो कालेज में प्रवेश मिल सकता है?' उन्हें एकदम उत्तर देने का साहस न हुआ। सरकारी रिपोर्ट तो निस्संदेह उसके विरोध में थी परंतु सुपरिटेंडेंट तथा प्रिंसिपल दोनों को इस बात का गर्व था कि अच्युत एक अच्छा विद्यार्थी है। सुपरिटेंडेंट ने 'थोड़ा ठहरिये' कहकर प्रिंसिपल से टेली-फोन पर बातचीत की और बोले, 'उसकी हाजिरी बहुत कम होगी आजकल सर-कार इस मामले में वड़ी सख्त हो गयी है वह भी जब से कि विद्यार्थी क्षमा मांगने के बाद पुनः आंदोलन में मिल गये हैं। अच्युत के बारे में हमारा बहुत अच्छा मत है इसलिए स्पेशल रिकमेंड करके उसे प्रवेश दिया जा सकता है। पर उसे यह लिखित रूप में देना होगा कि वह फिर से आंदोलनों में भाग नहीं लेगा।

यह जानने के बाद कि अच्युत कालेज में सबका प्रिय है देसाईजी को आनंद और अभिमान के साथ चिंता भी हुई। उन्हें इस बात का भय भी हुआ कि उसके जेल जाने की बात कल नहीं तो परसों धारवाड़ में फैल जाय तो क्या होगा। उसके क्षमा न मांगने से वह असली बहादुर देसाई है यह सोचकर उनकी छाती फूल गयी। जेल के कारण उन्हें अपमान के साथ डर भी लगा...

सुपरिटेंडेंट ने अंत में देसाईजी को यह कहकर विदा किया कि इतने अच्छे

विद्यार्थी का जीवन नष्ट होते देखकर उसे और प्रिंसिपल को बहुत दुख हुआ और साथ ही साथ यह आश्वासन भी दिया कि आप क्षमा पत्र ले आइये, आगे मैं संभाल लूंगा।

देसाईजी बिना उत्तर दिये वहां से लालबाग पहुंचे। उन्होंने लालबाग से तांगा लेकर देवीदास फ़्लोर मिल ढूंढी। दोपहर का एक बज गया था। लालबाग में घर ढूंढना एक बड़ा कठिन कार्य था। आधा मील तक चक्कियों और फैक्टरियों के चौकोर कंपाउंड ही दिखायी देते थे। अंत में टेढ़े-मेढ़े घरों का तथा झोपड़ियों का जमघट था। आखिर में डाकिये की सहायता से देवीदास फ्लोर मिल ढूंढ निकाली।

वह एक झोपड़ीनुमा घर था। बाहर बड़े-बड़े गुजराती अक्षरों में देवीदास फ्लोर मिल लिखा था। टीन की छत थी। पास ही रुई का व्यापार होने के कारण उन टीन की दीवारों में रुई धुनने से रेशे जमे हुए थे। सभी पुराने और मैले थे। भीतर कोई ग्राहकी न होने से मक्खियां उड़ाता हुआ एक विचित्र-सा व्यक्ति बैठा था। उसका तिकोना माथा, तोते की-सी नाक, रत्तियों जैसी लाल बड़ी-बड़ी आंखें, सिर पर दिखतीं बड़ी-बड़ी नसें, इस प्रकार कुल मिलाकर वह व्यक्ति विचित्र-सा दिख रहा था। उसे देखकर देसाईजी को लगा कि उसे कहीं देखा है। उसने पूरबी भइयों की तरह बिना बांहों की बंडी और घुटनों तक की आधी धोती पहन रखी थी पर उसके कपड़ों पर एक कण भर भी धूल न थी। बंबई में ऐसी गंदी जगह पर आटे की चक्की में उसके ऐसे साफ-सुथरे कपड़े देखकर देसाई को आश्चर्य हुआ। उसकी सब विचित्रताओं में यह भी एक बात दिखी। इस कारण वह पूरा भइया नजर नहीं आ रहा था। देसाईजी को देख कर उसे भी आश्चर्य हुआ उनकी ओर देख कर उसने रूखे स्वर में पूछा, "क्या है ?"

"इधर कोई बहादुर देसाई नाम का आदमी है ?"

"आप कौन हैं ? आप उनके बड़े हैं क्या ?" एकदम उनके मुख से कन्नड़ में बात सुनकर देसाईजी अप्रतिभ हो गये। उसे तेजी से बात करने की आदत सी थी।

"हां वे हैं क्या ?"

"अभी गये हैं... अभी-अभी तो गये हैं... अभी तक तो यहीं थे। अभी इस पट्टे की मरम्मत की है।... करके चले गये।"

"कहां गये ?"

"प्रेस में गये हैं नौ से बारह तक हमारे यहां रहते हैं बारह से दो तक प्रेस में।"

"कौन-सी प्रेस में ?"

"यह सब हमें नहीं पता।"

उसे गुस्सा दिलाना ठीक नहीं समझ कर देसाईजी उसे खुश करने को बोले : "आपका नाम क्या है आप कहां के रहने वाले हैं ?"

"वह सब मुझे पता नहीं" ऐसा लगा मानो वह व्यक्ति और गुस्से में आ गया।

"उनसे कब भेंट हो सकेगी।"

"रात को सात बजे आइये, सात बजे। नहीं-नहीं साढ़े सात बजे आइये साढ़े सात बजे।... तब तक वे आ जायेंगे। हमारे घर में ही सोते हैं।"

बेटे का इतना तो ठीक पता लगा। शाम को फिर आने का विचार करके देसाईजी "अच्छा अब मैं चलता हूं" कहकर वहां से चलने को हुए। पर उस व्यक्ति ने उतने में ही उन्हें छोड़ा नहीं।

"शाम को आइये... आकर मिलकर जाइये। सोने को तो उन्हीं के लिए जगह है हमारे पास। औरों के लिए जगह नहीं है। आप के सोने की व्यवस्था आप करनी होगी। आपको जगह ढूंढनी होगी। और...।"

देसाईजी को उसकी दो टूक बातें सुनकर हंसी आ गयी। लेकिन देसाईजी वहां से खिसक-गये। शाम को तो भेंट हो जायेगी। उन्हें इस बात का डर न था कि अच्युत वसंत की तरह छिपकर भाग जायेगा। अब तक चिंता के कारण उनका ध्यान भूख की ओर गया नहीं था, अब लगा कि भूख तेजी से लग गयी। देसाईजी बस से फोर्ट गये और वहां जिस होटल में ठहरे थे वहां जाकर भोजन आदि निपटाया। दो घंटे अच्छी तरह सोकर फिर शाम को लालबाग हाजिर हुए। सात बजे देवीदास फ्लोर मिल पहुंचे। उसके सामने एक ईरानी होटल था। वहां पहुंच कर चाय मंगवा कर एक घूंट भी बिना पिये दरवाजे पर नजर टिका कर बैठ गये।

लगभग साढ़े सात बजे खद्दर का कुर्ता पाजामा और टोपी पहने चप्पल टूट जाने से घसीटता हुआ तेजी से अच्युत चक्की में घुसा। देसाईजी पहचान तो गये पर उन्हें लगा कि वह काफी बदल गया। पिता के मन की आंखों ने उस

ढीले-ढाले कुर्ते में भी काफी उतरे हुए शरीर का अनुभव कर लिया। कपड़ों के कारण शरीर थोड़ा भरा दिखता था पर वास्तविक स्थिति एक ही नजर में उन्हें समझ में आ गयी। वे उसके पीछे-पीछे ही चले आये। उन्हें यह संभाषण सुनाई दिया।

"क्या पट्टा ठीक काम कर रहा है ?"

"तु... तु... तु... तुम्हारे बाप आये हैं।"

"कौन ?"

"देसाईजी ने पीछे से कंधा थपथपाया।"

चौपाटी की रेत पर बैठकर पितापुत्र ने बहुत देर तक बातें की। क्षमा मांगने को कहने के लिए देसाईजी का कई बार मन हुआ पर मुंह न खुल सका। उसी से आदि से अंत तक सब बातें सुनते रहे। अच्युत को अपना पराक्रम सुनाने में लज्जा आयी। पिता तो बिना किसी प्रकार क्रोध दिखाये सारी बातें सुनने को तैयार थे। देशाभिमान के वातावरण में अच्युत को उन बातों के सिवा कुछ सूझता ही न था। उसने शर्माते हुए सब कुछ सुनाया। "गांधी जी की नमक सत्याग्रह की बातें, उनकी दंडीयात्रा, ज्यों-ज्यों यह सब बातें समाचारपत्रों में छपती गयीं, लोगों में क्षोभ फैलता गया। उसके कालेज के विद्यार्थियों में भी अधिक उत्साह था। चाहे राजनीतिक आंदोलन हो या धार्मिक उत्सव, सब में विद्यार्थी ही आगे आते हैं। सभी कालेजों की भांति कामर्स कालेज के सामने भी पिकेटिंग हुई। एक दिन जोर से पिकेटिंग हुई। उसमें भाग लेने को जब जोर से चेतावनी दी गयी तो संगठन टूट गया। कामर्स कालेज जैसे छोटे कालिज में एक दूसरे की शिकायत करना स्वाभाविक ही था। इस पर आंदोलन ने अंदर ही अंदर जोर पकड़ा। कालेज को बंद करवाने को रोजाना का व्यर्थ प्रयास अच्युत को जंचा नहीं। कालेज से बाहर निकलकर विद्यार्थियों का सिनेमा जाना या अपने घरों में घुस जाना तो अच्युत को और ज्यादा अखरा। इस कारण उसने विद्यार्थियों में नमक सत्याग्रह में प्रत्यक्ष भाग लेने का प्रचार शुरू किया। इस बात का देशभक्त विद्यार्थियों ने विरोध किया और यह तर्क दिया कि गांधी जी ने ही विद्यार्थियों को सत्याग्रह में भाग न लेने को कहा है। अच्युत को लगा

कि गांधी जी ने उन डरपोक विद्यार्थियों को सत्याग्रह में भाग लेने को मना किया है जो बाद में जाकर झमेला फैलाएंगे, पर सद्विवेक से सत्याग्रह के महत्व को समझने वाले विद्यार्थी उसमें भाग ले सकते हैं। कामर्स कालेज में एक दो ही ऐसे विद्यार्थी मिले पर दूसरे कालेजों से सत्याग्रह करने के लिए सैकड़ों विद्यार्थियों का झुंड समुद्र के किनारे तक जाने वाले रास्ते पर जलूस बना कर गया और नमक लूटा। उनमें कुछ जेल में क्षमा मांगकर छूट आये परंतु जेल काटने वालों की भी कमी न थी जो कि आजकल की इस शिक्षा से चिढ़ गये थे।"

"देखो एक बार डिग्री ले लेने के बाद जितना चाहे राजनीति में भाग लो। तो तुम्हारा विचार क्या है कि पढ़ाई छोड़ देनी चाहिये ?"

"कालेज वाले यदि पुनः दाखिला दे देते तो यह कोर्स पूरा कर लेता।"

"वे तो लेने को तैयार हैं सुबह तुम्हारे सुपरिटेंडेंट से मिलकर आया हूं।"

"तो...।"

"हां क्षमापत्र देना होगा।"

"किसलिए क्षमायाचना करनी चाहिये पिताजी ?" आगे बात करने में अच्युत को शर्म-सी लगी। अपने मित्रों के सामने देशाभिमान के तत्वज्ञान वक्तव्य देने का उसे साहस नहीं हुआ। वह सदा यह अनुभव करता कि उसका अपना पांडित्य पिता की अर्धशिक्षित बुद्धि परंतु चारित्रिक शक्ति और व्यक्तित्व के सामने लंगड़ाने लगता है। धारवाड़ में घर में रहते समय वह पिता से बहुत कम बात करता था। जो भी हो, मां उसकी मित्र थी। बहुत दिनों के बाद भेंट होने के कारण और कुछ बड़ा हो जाने से, थोड़ा जेल जाने से, उसके व्यक्तित्व का विकास हो जाने से और परदेश होने से वह इतना कुछ पिता के सामने बोल गया। अब उसकी बातों को सुनकर और उसकी मूंछें, उसकी गांधी टोपी, उसका उत्सुक मुख देख देसाईजी ने अनुभव किया कि लड़का बड़ा हो गया है। इतने में अच्युत ने अपना मुख लटका लिया। उसकी यह स्थिति भांप कर देसाईजी बोले, "अगर तुम्हारा मन नहीं मानता तो रहने दो।"

"थोड़ी देर तक मौन छा गया।"

"आगे क्या करने को सोचा है ?"

"आजकल बांबे गजट समाचारपत्र में काम कर रहा हूं। समाचारपत्र नया

है। उसके एक सब एडीटर से जेल में जान पहचान हो गयी थी। उसके पास तीन घंटे काम करता हूं।"

"कौन सा काम ?"

"सह-संपादक का काम, वे पच्चीस रुपये देते हैं। दो से पांच बजे तक यह काम करता हूं। पास ही उसी समाचारपत्र का प्रेस भी है। वहां प्रेस चलाने का काम भी सीखता हूं।"

"तो उस चक्की में ?"

"हां वहां कोई काम नहीं सिर्फ उस आदमी से जान पहचान है। उसके कमरे में रहता हूं वैसे कभी-कभी चक्की का काम भी देख लेता हूं। एक बार मशीन का पागलपन चढ़ गया तो बस...।"

"यह सब सीखने को अभी कितने दिन लगेंगे ?"

"आपका विचार क्या है... यहीं रहकर समाचारपत्र में काम भी किया जा सकता है क्योंकि वह समाचारपत्र अपना जैसा ही है नौकरी तो नाम को है। वहां काम करने वाले सब ऐसा ही समझते हैं..." इतना कहकर अच्युत चुप हो गया। देसाईजी ने भी उसी ढंग से जवाब दिया।

"ठीक है। तुम अगर यहीं रहो तो घर खेत कमरों को कौन संभालेगा ? उस का अनुभव भी तुम्हें होना चाहिये ना ?"

"तो मैं क्या करूं ?" अच्युत अपने मन की बात पिता के मुंह से ही सुनना चाहता था।

देसाईजी ने कुछ सोचकर कहा।

"यहां तुम्हें जो कुछ सीखना है, सीखकर धारवाड़ से एक समाचारपत्र निकाल सकते हो।"

"मैं भी उसी विचार से छापेखाने का काम सीख रहा हूं।"

"छापाखाने के काम में कितना पैसा चाहिये कुछ सोचा है क्या ?"

"नये के लिए तो तीन साढ़े तीन हजार रुपये चाहिए पर एक छोटा-सा प्रेस बुक वर्किंग के लिए हमारे प्रेस में रखी है। हमारे संपादक कहते हैं कि उस बुक-वर्किंग से कुछ फायदा नहीं है। उसे बेच भी सकते हैं फोरमैन से पूछा है।... उसने बताया कि उसकी कीमत ज्यादा से ज्यादा हजार रुपये हो सकते हैं।"

"वह खराब तो नहीं है।"

"नहीं वह पुरानी होकर और अच्छा काम करने लगी है।"

देसाईजी ने तत्क्षण निर्णय लिया। "तो ऐसा करो तुम एक-दो साल यह काम सीखो। अभी तुम्हारी आयु कम है। अभी तुम स्वतंत्र रूप से समाचार-पत्र संभाल नहीं सकते और यह ठीक भी नहीं है। दो चार लोगों के साथ काम करके जब तुम अनुभवी हो जाओगे तो तुम्हारे समाचारपत्र की कीमत पड़ेगी। वैसे तुम्हारा पत्र ऐसा-वैसा नहीं होना चाहिए। तुम्हारे विचारों को मान्यता मिलनी चाहिए। तुम ज्यों-ज्यों काम करते जाओगे सब कायदे कानून समझ में आयेंगे। भाषा में वजन आयेगा और अन्य बातें खुदबखुद समझ में आ जायेंगी। इसीलिए मेरा यह कहना था कि इन सबके लिए तुम्हारी पढ़ाई पूरी हो जाती तो अच्छा था। यहां इस बात का जब तुम्हे विश्वास हो जायेगा तब धारवाड़ आना। तब प्रेस का कुछ करेंगे। वहीं पिछवाड़े प्रेस लगा लेना। वहीं कालेज में दाखिला लेकर डिग्री ले लो। बाद में चाहे तो समाचारपत्र निकालना।"

अच्युत बहुत प्रसन्न हुआ पर उतने दिन ठहरना उसे सह्य न था। "यहीं आर्टस् में अगले साल से दाखिला ले लूं।"

"दो तीन काम तुम कर सकोगे ? ... समाचारपत्र, प्रेस, पढ़ाई ?"

"कर लूंगा।"

"यहां की हवा खराब है ज्यादा मेहनत नहीं करनी चाहिये।"

"नहीं तो। इन पांच छह महीनों में प्रेस का काम काफी सीख गया हूं। अगले जून से कालेज और समाचार बस यही रहेगा।"

देसाईजी कुछ संदेह से बोले, "तुमसे हो सके तो कर लो पर तुम्हारी मां तुम्हारे बारे में बहुत चिंता करती है। तुम यहीं आटे की चक्की और प्रेस के बारे में सोच रहे हो।"

जन्म से अमीर होने पर भी गांधीजी के प्रभाव के कारण दरिद्र नारायण का सेवक हो जाने के कारण अच्युत के मन में कभी-कभी भयानक शून्यता छा जाती। इस मर्दाने शरीर में मजबूत दिल के किसी कोने में स्त्री का सा कोमल मन अच्युत के भीतर झांक जाता। वह अलग-अलग ढंग से अलग-अलग समय में प्रकट होता। कभी-कभी तो उसे अपने अमीर होकर जन्म लेने पर लज्जा हो आती और मां-

बाप के विलगाव को याद करके व्यक्त होती। कभी-कभी अपने कार्यक्रमों को देख उसे लगता मां-बाप के सम्मुख नैतिक रूप से झूठा बन रहा हूं। उससे बंबई के कठोर सामूहिक जीवन में एक कोने में पड़ा रहना संभव न था। बंबई मनुष्यों का जंगल था। लोगों की भीड़ में भी आदमी अपने को अकेला महसूस करता है। इस कठोर एकांकी क्षण की कल्पना से 'बंबई बुखार' कहा जाता।

ऐसे क्षणों के आने पर अच्युत अपने कमरे के एक कोने में चादर से मुंह ढांप कर लेट जाता और अंदर-अंदर रो देता। उसके होस्टल के साथी उसकी चादर खेंचकर 'यह अमीरी का असर है' कहकर चिढ़ाया करते। अच्युत को वह सच ही लगता था। गरीबों के लिए बाप कहां, मां कहां। वे अपने में ही रहते हैं और सदा परिश्रम ही करना होता है। ऐसी कठोरता मुझ में ही होनी चाहिए। इस तत्त्व की उसने स्वयं खोज की थी। दैहिक श्रम से मानसिक दौर्बल्य को भूलने का यत्न कर रहा था। अपने मां-बाप के अलगाव को अपने प्रयत्न से या दूसरों के प्रयत्न से भूलने का प्रयास करता। अपने दूसरे दोस्तों को मां-बाप बहिन के बारे में चिंता करने से रोकता परंतु उनके वही बात इससे कहने पर इसे सहन न होता। अपने आंतरिक दुःख को भूलने के लिए वह चक्की और प्रेस में दौड़ लगाने लगा। इन्हीं चक्करों में प्रेस के फोरमैन और चक्की के विक्षिप्त व्यक्ति से इसकी दोस्ती हो गयी। मां की याद ने उसे फिर से तड़पा दिया।

उसका शून्य दृष्टि से समुद्र देखना देसाईजी ने एकदम देख लिया। अच्युत की यह दुर्बलता उन्हें पहले से पता थी। यदि वे भी एक बार संतुलन न खोते तो मां के बारे में इस भांति अच्युत से बात न करते। उसने जब बंबई जाकर कामर्स पढ़ने की बात कही तो देसाईजी ने यही सोचकर उसे बंबई जाने की स्वीकृति दी थी कि उसमें अकेले रहने से साहस उत्पन्न होगा। बात बदलने के लिए उन्होंने पूछा, "यह चक्की में काम करने वाला आदमी कन्नड़ बोलता है ?"

"जी। वह धारवाड़ का रहने वाला है। उसे यहां आये बहुत दिन हो गये हैं। अर्धपागल होने पर भी अच्छा आदमी है। उस चक्की के सेठ को उस पर बड़ा विश्वास है। उसने उसे रहने को एक कमरा दे रखा है।"

"उसकी तुम्हारी जान-पहचान कहां हुई ?"

"एक बार रेल में कन्नड़ उपन्यास पढ़ रहा था। उस पर मैंने अपने नाम के

साथ धारवाड़ लिख रखा था। वह सामने बैठा था। उसने मुझसे पूछा—'आप धारवाड़ के हैं 'मैंने 'हां' कहा तो वह बोला—'मैं भी धारवाड़ का रहने वाला हूं। मेरी चक्की देखने आना।' वह चक्की उसे प्राणों से प्यारी है। बाहर कितना गंदा फैला रहता है पर वह मशीन को हफ्ते में एक बार तेल देता है और सब खोलकर साफ करता है। हर पूर्णिमा को एक बार यंत्र की पूजा षोड़षोपचार करता है। उसी के साथ उसका सब लगाव है। सेठ के घरवाले पितृपक्ष में इसको बुलाकर खाना खिलाते हैं। सुख से है।"

"दुख अक्ल वालों को होता है। ऐसे लोगों को दुख कहां?" यह लोग तो भगवान की तरह होते हैं उनकी बात का यही अभिप्राय था।

"ऐसा लगता है, उसे मैंने कहीं देखा है? उसका नाम क्या है?"

"बिंदुगोळ वेंकटराय।"

"बिंदुगोळ राघप्पा से इसका कोई रिश्ता है क्या?"

"यह तो मुझे पता नहीं। एक बार बताया कि उसका एक भाई है।"

देसाई ने अच्युत को संक्षेप में वसंत की कुछ हरकतें बतायीं। पिता-पुत्र दोनों उसी होटल में आये जहां देसाई जी ठहरे थे—भोजन किया और दो घंटे तक और बातें करते रहे। देसाईजी ने पुत्र को स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने की बात ताकीद की। अच्युत ने अगले दिन पिता को मलाबार हिल आदि सुंदर स्थान दिखाये और अच्छे से होटल में खाना खाया और शाम को उनको विदा दी। दोनों दिन कैसे कट गये उसे पता भी न चला।

फिर वही अलगाव...अकेलापन।

भाग-दो

22. खट्टे - मीठे अनुभव

विवाह तरुणाई और प्रौढ़ता के बीच का एक ढलवां पुल है। विवाह के बाद जो आदमी बदलता नहीं उसे अपूर्ण ही कहना चाहिए। नयी आशा, आकांक्षा तथा आदर्श दो-चार साल तक मुख दिखाते हैं और बाद में स्वप्न लोक को खट्टा-मिट्ठा बनाने लगते हैं। आदमी यह सोचता है कि अभी सुख के दिन आगे हैं अभी तो सहन करना ही होगा।

किट्टी अपनी ही परिधि में अंतर्मुखी होने लगा था। इस परिधि को लांघने की इच्छा या इसकी दीवारों से ऊंचे हो जाने की इच्छा उसमें न थी। अपनी परिधि में ही वह क्या होना चाहिए या क्या नहीं होना चाहिए इस विषय पर सोचने लगा था। विवाह के आरंभिक दिनों में इच्छाएं पूरी होने के बाद प्रणय केवल देह की मांग भर रह जाता है। देह भी जब थक जाती है (लेकिन बुद्धि नहीं थकती) दंपति अधिक आंतरिक इच्छा के समन्वय को देखने का प्रयास करते हैं। तब बच्चे उनके सहायक होते हैं। यदि संतान न हो तो संतान का अभाव एक पीड़ा बन जाता है और यह समन्वय दंपति को करुणा में मिला देता है।

विवाह के पांच वर्ष बीत जाने पर भी किट्टी के घर में कोई संतान न हुई।

प्रतिदिन देह की मांग बच्चों की इच्छा के रूप में परिणित होने लगी। किट्टी के मुख से मन की कातरता व्यक्त होती। वह मूक व्यथा रत्ना में भी थी। उसमें भी कातरता थी। वह कभी-कभी कह बैठती मेरे साथ की दो-दो बच्चे लेकर घूमती हैं। उस गोदावरी की भी शादी हो गयी और उस मर्दानी के दो बच्चे भी हो गये हैं। गोदावरी जब मैके आयी तो राघप्पा के घर अपने कुरूप बच्चों को साथ लेकर रत्ना से मिलने आयी। उन बच्चों को देखकर रत्ना के मन में जुगुप्सा, ईर्ष्या, आशा प्रेम यह सब एक साथ उत्पन्न हुए।

बच्चों के लिए किट्टी का मन भगवान की ओर झुका। उस सकाम कार्य साधक को भक्ति में अधिक विश्वास न था, पर देशभक्ति के परिणामस्वरूप थोड़ी मातृ-भक्ति भी झलक दिखाने लगी। मां पर उसका आदर भाव बढ़ा। पोते-पोतियों के लिए उसके मन में इच्छा थी। इस प्रकार छोटे बच्चे के अभाव ने तीनों के मन में परस्पर विश्वास उत्पन्न कर दिया। पर उन्हीं दिनों एक विशेष घटना घटी।

किट्टी के घर की देवमूर्तियों में उसके पिता की पूजा का एक काले रंग का शालिग्राम भी था। उनके मरने के बाद उसे एक बक्से में रख केवल कुछ मूर्तियां ही पूजा के लिए बाहर रखी थीं। उपनयन के बाद किट्टी ही इनकी पूजा किया करता था। नवरात्रि में एक बार सभी देव विग्रह बाहर निकाल कर मांज धोकर पूजा की जाती और पुन: उन्हें अपने स्थान पर रख दिया जाता। किट्टी शालिग्राम से जरा डरता था। उसका रंग उसका आकार और उसकी चित्र रेखायें उसे डरा देतीं। उसकी मां उस शालिग्राम को विशेष मर्यादा देतीं अत: बचपन से उसके मन पर उसका प्रभाव था।

एक दिन वह शालिग्राम खो गया।

वह ऐसा हुआ। किट्टी वेण्णीहळ्ळ के रेलवे पुल पर जा रहा था। बक्सा सिर पर था। गाड़ी की पटरी पर ही चल रहा था। जाते-जाते उसने मुड़कर देखा तो मेल गाड़ी चली आ रही थी। किट्टी पटरी पर ही आगे भागा, पर गाड़ी की तेजी के सामने वह क्या भाग सकता था? दूसरे, सिर पर भगवान की मूर्तियों का बक्सा था। पुल के दोनों ओर के लकड़ी के स्लीपर आगे जाते-जाते छोटे होने लगे। उनके सहारे से खड़े होने को भी स्थान न था। बहुत भागने पर भी पुल खत्म ही नहीं हो रहा था। आखिर में किट्टी भगवान का नाम लेता उन पटरियों पर पंजों

पर खड़ा हो गया। उसके हाथ बक्से के ढक्कन को दबाये थे। इतने में गाड़ी घड़-घड़ाती सामने से गुजरने लगी। उसकी आवाज से डर कर किट्टी ने सांस तक रोक ली। सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। अभी यह सोच ही रहा था कि भगवान ने मुसीबत से पार कर दिया कि अंतिम गार्डडिब्बा आया। उसमें जार्ज, हेड क्लर्क जोशी, आंगड़ी तहसीलदार, देसाईजी गार्ड के साथ खड़े थे। जार्ज गार्ड का हाथ पकड़कर रोकते हुए नहीं-नहीं कहे जा रहा था। गार्ड ने हाथ झटककर छुड़ाते हुए हाथ के मोटे डंडे को किट्टी की पीठ पर दे जमाया। गाड़ी आगे निकल गयी। किट्टी के संभालते-संभालते भगवान की मूर्तियों के बक्से का ढक्कन खुल गया। भीतर की सभी मूर्तियां वेण्णीहळ्ळ में गिर गयी। किट्टी ने उनको बीच में ही पकड़ लेने के प्रयास में हाथ फैलाये पर उसके हाथ एक मात्र शालिग्राम ही लगा। किट्टी ने यह कहकर शालिग्राम को जोर से मुट्ठी में दबा लिया 'बस शालिग्राम बच गया तो सब मूर्तियां बच गयीं।' यह सोचकर वह उसे जेब में रखने को ही था कि हाथ में शालिग्राम कुलबुलाने लगा।

'अरे इसमें जान है क्या,' कहकर उसने अपनी मुट्ठी खोलकर देखी।

'मुझे क्यों पकड़ लिया ? इतने दिन से तुमने मेरी पूजा की ? छोड़ दो मुझे। नाले में हर रोज मुझ पर कुछ पानी तो पड़ेगा।' कहते हुए शालिग्राम उसके हाथ से उछलने लगा। उसके गिर जाने के डर से उसने फिर मुट्ठी जोर से भींच ली। 'नहीं-नहीं' कहकर किट्टी के गिड़गिड़ाने पर भी शालिग्राम कुलबुलाता, कुलबुलाता उसके हाथ से उछल गया। तब तक उसके ठंडे स्पर्श से किट्टी थर-थर कांपने लगा सारे शरीर में पसीना पानी की तरह बहने लगा। गो गो गो करता उठ कर बैठ गया।

रत्ना की भी किट्टी के इस बड़बड़ाने से नींद खुल गयी। वह भी उठ कर पति की ओर डर कर देखने लगी। किट्टी ने बुरा स्वप्न कहते हुए टार्च जला कर घड़ी देखी। अभी रात के दो बजे थे। स्वप्न को विस्तार से पत्नी को बताने का कोई विशेष अर्थ न था। फिर डर की कंपकंपाहट अब भी मन में बनी हुई थी। किट्टी ने दरवाजा खोल कर मां को जगाया।

बहुत दिन से किट्टी ने मां से दिल खोल कर बात नहीं की थी। पत्नी से बात करने पर मां गुस्सा करेगी यह सोचकर उससे भी प्रकट रूप से बातचीत कम कर

रखी थी, पर उस दिन मां को जगाकर अपना स्वप्न विस्तार से बताया। भयभीत रत्ना ने भी रसोईघर में दीवार के सहारे खड़े होकर सब बातें सुनी। भय ने तीनों का मन एक कर दिया।

गंगव्वा ने भी इतने दिनों बाद अपने पूरे मन से मुंह खोला। बेटे का डर देख कर उसने ढांढस बंधाया।

"किट्टण्णा तुम डरो नहीं बेटा, शालिग्राम हमारे प्रमुख देवता हैं। जब तक वे रहे, इस पर बहुत श्रद्धा रखते थे। जब वे गुजरे तुम छोटे से थे। उसकी पूजा में कुछ कमी-बेशी न हो जाय, यह सोच कर मैंने उसे अंदर रख दिया था। देवता क्रोध नहीं करते हैं। एकमात्र भक्ति के रहने से सभी देवता शांत रहते हैं। तुम डरो नहीं। अब तुम बड़े हो गये हो। 'अब तुम मेरी पूजा करो।' यही चेतावनी भगवान शालिग्राम ने तुम्हें दी है। इसे तुम अपने बड़ों के पुण्य का फल समझो। अभी तुम छोटे हो शालिग्राम को भूल गये हो पर मैं कैसे भूल सकती हूं भैया... हमें पहले संपत्ति देने वाला भी वही था। गरीबी में रक्षा करने वाला भी वही है। तुम्हारी पूजा के बाद मैं प्रतिदिन घी का एक दिया जलाती हूं बेटा। यदि वे कुपित भी हैं तो ज्यादा कुपित नहीं होंगे।"

"वह दिया तुम शालिग्राम के नाम से जलाती हो क्या?"

मां ने सिर हिलाकर हामी भरी।

यह बात सुनने के बाद भयभीत रत्ना के मन में उस कड़वी बोलने वाली बुढ़िया के प्रति आदर भाव पैदा हुआ। किट्टी को ऐसा लगा मानो मां ने ही उसकी रक्षा की। अपने कुलधर्म और कुलाचार की जीती जागती देवी की भांति उसे मां दिखायी दी। उसी दिन शालिग्राम बक्सा छोड़ कर बाहर अपनी पुरानी तांबे की थाली में विराजमान हो गये। गंगव्वा भी मातृस्थान में स्थापित हो गयी।

कचहरी जाने से पूर्व किट्टी शालिग्राम की पूजा करके 'आज मुझसे कोई गलती न हो, मेरी बुद्धि ठीक रहे। मेरा प्रभाव कम न हो, जेब में कुछ पैसे पड़ते ही रहें।' आदि मन में प्रार्थना करके वह घर से बाहर निकलता। कभी-कभी शालिग्राम के निर्माल्य के तुलसी पत्र को वह जेब में भी रख कर ले जाता।

देवताओं में शालिग्राम, घर में मां जैसे पूज्य बने वैसे ही कचहरी में जार्ज किट्टी के लिए पूज्य हो गया। किट्टी के विवाह के चार पांच महीने बाद ही जार्ज का भी विवाह हो गया। उसके यहां एक लड़का भी था। जार्ज स्थाणु के समान अचल था। अधीरता और चंचलता के हाथ पड़कर तड़पते हुए किट्टी का वह अपने स्थिर जीवन के द्वारा मौन रूप से सहायक होता। जिस प्रकार घर में शालिग्राम को बिना नागा घी का दीप जलाने वाली मां थी उसी भांति आफिस में शाम को दो बार चाय न पीने वाला, काम किये बिना पैसा स्वीकार न करने वाला, आशा के महत्व को न छोड़ने वाला और किसी को उपदेश न देने वाला जार्ज था। ऐसे लोग किट्टी के लिए अपनी ओर खींचने वाले ही थे उनका आदर्श इसके बूते से बाहर की बात थी। नीति का उद्‍गम कहां था इस बारे में ज्ञानियों ने अनेक उत्तर दिये होंगे। नीति का जन्म यदि सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए हुआ है तो विविध समाजों में विविध प्रकार की नीतियों की आवश्यकता न होती। नीति का उद्‍गम यदभद्र। 'यदायद्‍ा चरति श्रेष्ठ :' में है। कुछ लोग यत्न पूर्वक सीखे बिना ही नीति का पालन करते हैं, वे लोग सहज रूप में यशस्वी होते हैं। उनके जीवन की स्थिरता को देखकर अस्थिरता से दुखी लोग इस तत्व का महत्व समझते हैं कि स्थिरता में ही सुख है। शायद कभी यह सिद्धांत भी माना जा सकता है कि शाम को एक बार चाय पीने में ही सुख मिल सकता है तो यह अंधनीति और मूढ़ कल्पना ही हो सकती है। या इस किसी भी तत्व को खोजे बिना जार्ज के समान व्यक्तित्व को अपने जीवन का आदर्श बना सकते हैं ऐसी स्थिति में 'व्यक्ति पूजा' आरंभ होती है। किट्टी जैसे साधारण लोग अपनी क्षुद्रता की निंदा करते हुए ऐसे लोगों की प्रशंसा करते हैं और उनसे ईर्ष्या करते हुए अपने जीवन से दुखी होते हैं। भाग्य से यदि शालिग्राम सहायक हो जाय तो ऐसे लोग उल्टे ढंग से थोड़ी स्थिरता प्राप्त करते हैं।

अनजाने ही जार्ज किट्टी को आत्मपरीक्षा की ओर प्रेरित कर रहा था। एक दिन किट्टी को एक बड़े स्टेटमेंट को उसी दिन तैयार करके घर जाना था। कचहरी का समय हो जाने के बाद जार्ज किट्टी से मिलने आया। किट्टी ने हंसी में कहा, "जार्ज जरा इसे पढ़ो, में लिखता जाता हूं, यदि तुम मदद करोगे तो कृष्णप्पा का दोसा खिलाऊंगा।" जार्ज मुस्कराता हुआ खड़े-खड़े ही उसे पढ़ने

लगा। उसी में डेढ़ घंटा बीत गया। सात बज चुके थे। काम खत्म होते किट्टी के सामने धर्मसंकट आन पड़ा था। जार्ज शाम को कुछ नहीं खाता था, पर उसी के लिए उसने डेढ़ घंटा काम किया था और उसने खिलाने का वादा भी किया था। कुछ भी हो आग्रह करके दोसा खिलाना ही चाहिये। यह निश्चय करके वह जार्ज के साथ चल पड़ा। मिशन कंपाउंड के मोड़ पर जार्ज मुड़ा। उसने जार्ज को होटल की ओर खींचने की कोशिश की। जार्ज ने मना किया, इसलिए किट्टी दुखी हुआ। उसे महसूस करके जार्ज ने कहा "घर में स्टीफेन इंतजार करता है। अब होटल जाऊं तो घर पहुंचने में देर हो जायेगी।"

उसे लगा मानो सारा संसार ही उसका मजाक उड़ाने के लिए भीतर ही भीतर योजना बना रहा हो। स्टीफेन (जार्ज का दूसरा बेटा) बीमार था। यह बात जार्ज ने उसे पहले नहीं बतायी थी। हंसते-हंसते डेढ़ घंटे तक मेरा काम करता रहा इसीलिए उसे दोसा खिलाना चाहता था यह सब सोचता हुआ किट्टी मन ही मन चिंतित हुआ।

एक बार किट्टी क्रिसमस पर उनके घर गया। सारा की आज्ञा के पालन में तत्पर जार्ज को देखकर उसने सोचा यह तो सती भक्त शिरोमणी है। घर में पत्नी का ही बोलबाला है। इससे किट्टी को यह संतोष भी हुआ कि जार्ज जोरू का गुलाम तो है। किट्टी के घर में इससे एकदम उल्टी परिस्थिति थी। शादी के बाद का उत्साह समाप्त हो जाने के बाद रत्ना भी और पत्नियों जैसी ही पत्नी हो गयी थी। परंतु रत्ना के बीमार हो जाने पर किट्टी रातदिन चिंतित हो जाता। तब कचहरी का काम भी ठीक से न हो पाता।

सारा की प्रसूति के समय किट्टी साइकिल पर सिविल अस्पताल गया। प्रतीक्षा कक्ष में जार्ज बैठा समाचारपत्र पढ़ रहा था। पास के वार्ड से सारा के कराहने की आवाज सुनाई दे रही थी। उसे सुनकर किट्टी का दिल पसीज गया। जार्ज की तरफ देखा तो पाया कि वह सचित्र समाचारपत्र में निश्चिंत मग्न है।

23. किट्टी का दौरा

अथकेन प्रयुक्तोऽयम् पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्निव वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ।।

बिना इच्छा के मनुष्य को पाप करने को प्रेरित करने वाली कौन-सी शक्ति है ? यह प्रश्न त्रेता युग से मानव पूछता चला आ रहा है। उसका उत्तर कुछ भी हो पर हाथ से गलत काम हो जाने पर उस पर पश्चाताप करने वाले को धर्मात्मा ही कहना चाहिए। दौरे के मौके पर जिस सरकारी अफसर का पांव न फिसले उसे धर्मराज कहना चाहिए या वज्रमूर्ख ।

उन दिनों दौरे के समय में रेवेन्यू विभाग के कर्मचारी युद्ध के समय छावनी से छूटे सैनिकों की भांति होते थे। घर छोड़कर दूर जाते ही प्रतिदिन रुचिकर भोजन, लोगों पर अधिकार, गपशप, अपने दर्प को बार-बार परीक्षा करके देखने की इच्छा यह सब मिलकर 'एकैकमप्यनर्थाय' के समान हो जाता है। अधिकारियों से समीप का संपर्क होता है। मातहत हरकारा, गौड़ा[1], कुलकर्णी, नौकरों की भांति आगे-पीछे दौड़ते हैं। ऐसे निरंकुश दिनों में दौरे के समय यदि एक अनुभवी क्लर्क साथ हो तो कहना ही क्या ?

इस बार दौरे पर हैड-क्लर्क जोशी रामराय के साथ किट्टी को जाना पड़ा। उसके दौरे प्रसिद्ध थे। उसके पराक्रम रेवेन्यू विभाग के रिकार्डों में स्वर्णाक्षरों में लिखे जा सकते हैं। एक बार चरी के खेत में एक गांव की औरत को यह कहकर डरा दिया था कि तुम पर जुर्माना लगाऊंगा। एक बार तहसीलदार को चौपाल पर बिठाकर पिछले कमरे में प्रणय लीला रचायी थी। उसके बारे में ऐसी अनेक कहानियां प्रसिद्ध थीं। कई बार रात को ताश खेलते हुए उसके मित्र उसकी इस कीर्ति का बखान करते। उसका अक्सर वह यही जवाब देता, "ओय तुम लोगों को भी एकाध कहानी सुना सकता हूं या तुम्हारी कीर्ति मैं क्या बखानूं। परंतु उस पर बनी कहानियों का उसने कभी प्रतिकार भी नहीं किया। बातों ही बातों में

1. उत्तर भारत के जाटों के समान यह मैसूर में एक महत्वपूर्ण जाति है। आमतौर पर यह किसान होते हैं। किसानों में यह शब्द सम्मानार्थक भी है।

एक बार किट्टी भी उसका ऐसा मजाक उड़ाने लगा पर जोशी रामराय को इस जूनियरमोस्ट का मजाक जंचा नहीं। एकदम उसकी ओर मुड़कर ललकारते हुए कहा, "ऐ कृष्णा जी, तुम दूसरों को देखकर जला मत करो। तुम्हें खाया नहीं पचेगा। तुम्हारी भी पोल खोल दूं।" तब किट्टीके 'यह सब आपको ही मुबारिक रहे' कहने पर रामराय ने बिना आगा-पीछा देखे कह दिया, "मुझे पता है तू मर्द नहीं है।" ताश खेलने वाले सभी खिलखिला कर हंस पड़े। यह रामराय का सदा का मजाक था। किट्टी को लगा कि यह व्यंग्य उसके निपुत्र होने की तरफ संकेत है तो उसका मुंह गंभीर हो गया। इतना ही नहीं एक और क्लर्क ने उसे छेड़ते हुए कहा, "रामण्णा क्यों जल्दबाजी कर रहे हो बच्चों का सुख क्या है? यह तुम्हें पता नहीं? चार दिन मौज करने दो। एक बार शुरू हो गया तो तुम्हें भी पीछे छोड़ देगा।" दूसरे ने एक और ढंग से बात की "ऐ कृष्णा जी तुम अपने ससुर को देख कर ही कुछ सीखो। बुड्ढा हो गया पर लत नहीं गयी। उसके दामाद बनकर भी तुमने क्या नाम कमाया?"

जोशी रामराय को केवल बातों से ही किट्टी को ढीला कर देने का विचार न था। उसकी एक योजना थी। उसके बाल में फंसे सभी क्लर्क कोई न कोई गलत काम करके रामराय को कहने को एक मौका दे बैठते थे। वे जब रामराय का मजाक शुरू करते तो वह उन लोगों को यह कह मुंह बंद कर देता कि उनकी पोल पट्टी भी उसे मालूम है। किट्टी के बारे में भी रामराय ने अपने दोस्तों के सामने प्रतिज्ञा की थी। 'इस लड़के को बहुत मस्ती चढ़ी है इस बार मैं इसकी मस्ती झाड़ दूंगा।'

मस्ती झाड़ी गयी।

उस भयानक अनुभव ने किट्टी को जड़ से हिला दिया। पता नहीं क्यों वह उसके लिए तैयार हो गया। यह वह स्वयं न समझ पाया। उस गंदगी, उस गला-जत को देखकर भी वह पता नहीं क्यों पीछे न हटा। राघप्पा का दामाद होने का अहंकार था या दौरे का प्रभाव या रामराय की छेड़खानी या नये अनुभव की उत्सुकता, उसे कुछ समझ में न आया। वह बार-बार सोचता वह यह कैसे कर बैठा, वह गोपनीयता, वह डर, वह गंदगी, वह जुगुप्सा, एक-एक को याद करके उसका शरीर कांप जाता। एक-एक बात उसके मन में बार-बार चक्कर काटती।

'कृष्णाजी तुम पहले हो आओ मैं यहां खड़ा हूं' यह याद करते थू-थू-थू कहकर थूकता जाता। क्लर्कों में यह बात फैल गयी। उनके सामने अपने कागजात देखते हुए भी वह थू-थू करता जाता। वह सोचता कि वह क्या? यह गंदगी सह पायेगा? ... ...

रामराय की चौकड़ी में उसका नाम 'थू कुलकर्णी' प्रसिद्ध हो गया।

कैंप के समाप्त होने का दिन था। इतना कुछ करने वाले छुआछूत में विश्वास करने वाले क्लर्कों ने घी में तले पकौड़े खाकर कैंप को समेटने की योजना बनायी। रामराय ने गौड़ पर रोब झाड़ा, 'ऐ गौड़जी आज बढ़िया-सा मक्खन आना चाहिए। एक ही घर का हो। दलाल की तरह इधर-उधर का इकट्ठा करके थोड़ा गाय का, थोड़ा भैंस का, थोड़ा बकरी का, थोड़ा गधी का मिलाकर लाने पर तहसीलदार साहब कैसे खायेंगे? यह तुम्हारे अपने ही सोचने की बात है।' गौड़ ने उसकी आज्ञानुसार अपने विश्वस्त किसान के घर से ही मक्खन लाकर दिया। तवनप्पा का मक्खन सारे गांव में प्रसिद्ध था। मक्खन गरम करने को रखा गया। घी गरम होकर एक सुंदर गुलाबी रंग में आ गया। रामराय ने घोषणा की 'ऐसा अच्छा घी पूरे दौरे में कहीं नहीं देखा। जाने से पहले इस मक्खन को देने वाले गौड़ से दो रुपये इनाम और झाड़ना चाहिए।' इतने में लच्चप्पा को एक बात सूझी। वह बोला, 'रामण्णा ऐसे घी में एक-दो अंबाडि पान[1] के डाले जाये तो कैसा मजा आ जायेगा।' ढूंढने पर पता चला कि एक दिन पहले ही अंबाडि पान खत्म हो गये थे। रामराय ने हरकारे को पान लाने भगाया। हरकारे को सारे गांव का चक्कर लगाने पर भी जब अंबाडि के पान न मिले तो वह काले पान के पत्ते ले आया। कुछ पहले पता होता तो हरकारे को दूसरे गांव भेजकर यही पान मंगवाये जा सकते थे। इधर घी खूब खौलने लगा था।

रामराय चिल्ला पड़ा, "डालो काले पान ही डालो। साला हमारा क्या जायेगा।" उसके साथियों ने मेरे लिए एक मेरे लिए दो कहते-कहते उबलते घी में पच्चीस-तीस पान डाल दिये। घी की खुशबू के साथ पान की खुशबू चौपाल भर

[1] घी बनाते समय दक्षिण में पान जलाकर घी बनाने का रिवाज है। उस जले पान को भी खाया जाता है।

में फैल गयी। चूल्हे पर से पतीला उतारा गया। घी की चमक कम हो गयी। झाग उठ रहे थे। अरे यह क्या सारा घी हरा हो गया।

रामराय बोला, "घी क्या करेगा ? एक सौ पान डाल दिये।"

तब लच्चप्पा चिल्लाया—"मक्खन में उसने कहीं विष तो नहीं मिला दिया।"

उसे सुनते ही रामराय कहकहा लगाकर जोर से बोला, "बुलाओ उसे।" हरकारे के आते ही उसने कहा, "जाओ उस मक्खन देने वाले को बुलाकर लाओ। साथ ही उस गौड़[1] को भी बुला लाना।"

वह बेवकलिग खाना खाने बैठा ही था कि घबरा कर दौड़ा आया। गौड़ पहले से वहीं आकर खड़े थे। रामराय ने तहकीकात शुरू की।

"क्यों भाई, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम तवनप्पा है साहब।"

"इसी गांव के रहने वाले हो क्या ?"

"जी, साहब।"

"तुम्हारे खेत का लगान इस बार ज्यादा लगा है क्या ?"

यह सोचकर कि मक्खन से खुश होकर साहब लगान कम कर देंगे खुशी से तवनप्पा बोला :

"जी साहब"

"तो तुमने हमें विष खिलाने को सोचा ?"

"क्या कहते हैं साहब ?" तवनप्पा ने बात समझ में न आने के कारण पूछा।

रामराय ने एकदम गुस्से में आकर कहा,

"विष है रे। तेरी जोरू को... विष खाकर मर जायेंगे देखा। अभी पागल कुत्ते को खिलाकर दिखाता हूं। मक्खन में विष मिलाकर सभी अफसरों को मार डालने की सोची थी... सच बता... बदमाश कहीं का ? ... देख उस पतीले में।"

हक्का-बक्का होकर तवनप्पा ने उस बर्तन में झांका। घी के हरे रंग को देख कर घबरा गया।

"बाप रे यह क्या हो गया, मेरी तो समझ में नहीं आता साहब ?"

"तुझे कैसे समझ में आयेगा रे ? तू तो बहुत ईमानदार आदमी है ना ? तू

1 किसान

सरकारी अफसरों को विष देने वाला है।... क्यों रे अफसरों को मार कर बड़ा बनेगा। अच्छी बात है। चार दिन जेल काटेगा तो सब ठीक हो जायेगा। लक्ष्मणराव, शिकायत लिखवाओ, इसका स्टेटमेंट लो। पुलिस के चाटील साहब भी यहीं है, गौड़ साहब आपको इसकी गवाही देनी पड़ेगी।"

"बाप रे मुझे क्यों जेल ... ?"

"गौड़ साहब बताइये उसे। उसने क्या किया है।"

गौड़ ने तवनप्पा को समझाया सरकारी अफसरों को लगान ज्यादा लगाने के कारण विष डालकर मारने की कोशिश की है। यह फौजदारी का मुकदमा उस पर किया जा रहा है।... घबराकर तवनप्पा ने रामराय के पांव पकड़ लिये। रामराय ने गौड़ को उंगलियों के इशारे से पच्चीस रुपये जुर्माना देने को कहा। तवनप्पा सिर पर पांव रखकर भाग कर घर गया और दस रुपये घर से दस कहीं से और पांच कहीं से इकट्ठे करके भागा आया और रामराय के पांव पर रखकर हाथ जोड़ने लगा। रामराय ने गंभीरता से कहा, "केवल दंड देने से काम नहीं चलेगा तवनप्पा। फिर कभी ऐसा नहीं करोगे इस बात की अपने कुल देवता के नाम से शपथ होगी। कसम खाओ।" तवनप्पा ने छाती पर दोनों हाथ रखकर शपथ ली और यह सोचकर कि बड़े संकट से पार हो गया वहां से खिसक गया।

गौड़ साहब को घर भेजकर उसी घी में सारे अफसरों ने तवनप्पा का नाम लेकर आशीर्वाद देते हुए भर पेट तृप्तिपूर्वक भोजन किया। पच्चीस रुपयों को दक्षिणा समझ कर आपस में बराबर बांट लिया।

किट्टी के हाथ भी तीन रुपये लगे। उसने शर्म तो छोड़ ही दी। 'अब यही आने दो।' सोचकर चुपचाप रुपये जेब में डाल लिये।

शहर वापस लौटने के बाद कचहरी में रामराय ने किट्टी की पीठ थपथपाते हुए प्रशंसा की, 'तुम सच्चे मर्द हो। हमारे जैसे लोग भी पहले ही दौरे में इतने गहरे में नहीं उतरे थे। तुमने तो रेकार्ड ब्रेक कर दिया।' दूसरों ने भी किट्टी से कहा, 'तुम्हारी जितनी हिम्मत हम में नहीं है।' किट्टी ने यह सोचा था कि उसने भी वही किया है जो दूसरे करते हैं। पर अब उसे समझ में आया कि वह

सबसे आगे बढ़ गया था।

जब किट्टी कोई गलती कर बैठता और दूसरों से डांट खाता तो उसमें यह छिपा अभिमान था कि वह भले ही कितना भी बुरा क्यों न हो पर वह आफिस में जार्ज को छोड़कर बाकी सबसे कहीं अच्छा है। यह उसकी नैतिक रक्षा करता। परंतु अब वह अभिमान झूठा है यह सप्रमाण सिद्ध हो गया। अब भी उसका मन यह मानने को तैयार न था कि वह नैतिक रूप से रामराय से नीचा है, पर वास्तविक स्थिति से इंकार तो नहीं किया जा सकता था। उसके अपने चारों ओर बैठे नैतिकता-हीन लोगों के भी अनजाने में अपनी-अपनी एक नैतिकता होती है। क्या वह उसके लिए नहीं हो सकती? ये प्रश्न बार-बार उसके मन में चक्कर काटने लगे, परंतु उनका कोई उत्तर उसे न मिला।

रत्ना के पास जाने में उसे डर-सा लगने लगा। मां से बात करने में उसे शर्म आने लगी थी। उसे यह डर लगने लगा कि पूजा में उसके छूने से कहीं शालिग्राम भ्रष्ट तो नहीं हो जायेगा। उसे जीवन ही नीरस लगने लगा, उसे नींद ठीक नहीं आती थी। नींद में बड़बड़ाने की आदत बढ़ने लगी। उसे अकसर चुपचाप बैठे रहने को मन हो जाता। इस तामस मौन से उसे जगाकर कोई उससे यदि बात करने का प्रयास करता तो उसका सब रजोगुण क्रोध में व्यक्त हो जाता।

कचहरी में उसके पराक्रम की कीर्ति फैलने में देर नहीं लगी। पता नहीं क्यों जब और दूसरे लोग रामराय के शिकार हुए थे तो इतना शोर नहीं हुआ था। किट्टी के नैतिक दुरभिमान के कारण या उसकी आयु कम होने के कारण या पश्चाताप व्यक्त करते मुख के कारण लोगों में उसके लिए बहुत कुतूहल दिखायी देता था।

उसे डर लगने लगा कि शायद यह बात जार्ज के कान तक भी पहुंच गयी होगी। उसे लगा परोक्ष रूप से बात पहुंचने की अपेक्षा यदि सीधा ही बता दे तो अच्छा रहेगा और इसके अतिरिक्त अपने मन की बात कहने को उसके पास संसार में जार्ज के सिवा और कौन था? एक दिन उसने सब कुछ जार्ज के सामने उगल दिया। उसने अपनी उस समय की मानसिक स्थिति को यथासंभव स्पष्ट कर दिया। आफिस भर में यह कहानी फैल जाने पर भी यह बात जार्ज को किसी ने न बतायी थी। उसके मानसिक दुख के लिए जार्ज के पास कोई जवाब न था। उपदेश देने का सामर्थ्य भी उसमें न था। वह केवल अपने निर्मल चरित्र को दूसरों

के सम्मुख रख सकता था। देखने वाले उससे जितना चाहे सीख सकते थे। किट्टी की मानसिक व्यथा उसकी समझ में आयी। उसने केवल इतनी ही सीख दी 'आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखिये।'

24. देसाईजी के साथ संघर्ष

राघप्पा पान लगाता-लगाता बीच ही छोड़कर किट्टी से बोला "ऐसे बनावटी बुजुर्गों को रास्ते पर लाना चाहिए। पैसे के मामले में ढील देने से कोई लाभ नहीं। अब यदि किसी का मान जायेगा तो तुम्हारा ही जायेगा देसाईजी का क्या जायेगा?

तुम्हारे घर के पैसे को दबाये बैठा है। दहेज का पैसा भी दबा रखा है। ऐसे ही सब कुछ निगल जायेगा और तुम इधर ब्याज देते-देते घिसे जा रहे हो। यह कहां का न्याय है! तुम बात तो उठाओ। जब बात हम तक आयेगी तब जो कुछ करना है सोचेंगे।"

बात यह थी कि गंगव्वा ने वरदक्षिणा के रुपये स्वयं लेकर अपनी तिजोरी-रूपी देसाईजी के पास रख दिये। वरदक्षिणा के भरोसे किट्टी ने कर्जा ले लिया था। शादी की खुशी में मां से इस बात का कोई जिक्र न करके किट्टी चुप ही रहा। यह एक तरह अच्छा ही है। कर्जा अपने वेतन से थोड़ा-थोड़ा देता चलूंगा। उससे यह रुपया बच जायेगा। इस उत्साह से किट्टी ने अपना वैवाहिक जीवन प्रारंभ किया। पहले से ही पैसे से तंग किट्टी को यह बोझ अब ज्यादा सा लगा। कुछ महीने कष्ट उठा कर उसने कुछ कर्ज तो चुकाया। अब और कष्ट उठाने को मन न था। रिश्वत के पैसे चाय-पानी में उड़ जाते। इस प्रकार दो वर्षों में कर्ज का ब्याज देना भी बुरा लगने लगा। तीन महीने में एक बार कर्ज का ब्याज देने जाते हुए घर से दुखी होकर जाता। विवाह का उत्साह भी अब समाप्त हो गया। वह सोचता था कि कम-से-कम उसका कष्ट देख कर मां स्वयं ही वरदक्षिणा का पैसा दे देगी, पर मां ने इस बात पर कठोर मौन धारण कर रखा था।

राघप्पा को यह सब बातें मालूम थीं। रत्ना कभी-कभी यह बातें बताया करती थी, परंतु वह स्वयं इस बारे में मुंह खोलना नहीं चाहता था। किट्टी ही बात शुरू करे इस बात का रास्ता देख रहा था। देसाईजी का बनावटी बड़प्पन उसे फूटी आंख न सुहाता। उसे लगता कि उनका अजेय व्यक्तित्व उसकी चंचल प्रवृत्तियों का मजाक उड़ाता है। देसाईजी ने भी गंगव्वा की इच्छानुसार विवाह के एक वर्ष बाद राघप्पा को बुलाकर किट्टी के दत्तक के विषय में बात उठायी थी। विवाह के बाद राघप्पा की इच्छा भी मंद पड़ गयी थी। राघप्पा ने जवाब दिया था कि यह काम उसकी दूसरी बेटी के विवाह के बाद होगा। तब देसाई ने कहा कि करार में यह बात न थी। इस पर राघप्पा का कहना था कि वही लौकिक रूढ़ी है। देसाईजी को बात ठीक लगी। फिर भी आग्रह से बोले, "दूसरी लड़की की शादी पर मनचाहा खर्च कीजिये। पर दत्तक की रस्म हो ही जानी चाहिए। इस पर राघप्पा बोला, 'नहीं पहले शादी हो जाय बाद में सभी कुछ किट्टण्णा का ही है।' देसाईजी इस पर निरुत्तर हो गये। वैसे यह भी चार ही वर्ष की बात थी, इसलिए देसाईजी ने गंगव्वा को तसल्ली दी।

इससे देसाईजी की पूरी हार तो नहीं हुई पर कुछ थोड़ा अभिमान भंग अवश्य हुआ, साथ ही उन्हें इस पर कुछ संदेह भी हुआ। लेकिन राघप्पा के सामने गंगव्वा को समझाते हुए कहा, ठीक तो है, अब दूसरी शादी में ही कितने दिन रह गये हैं। अब करार तो पक्का सा हो ही गया है। फिर भी उन्होंने राघप्पा से पूछा, "यदि आप करार तोड़ दें तो ?"

राघप्पा ने अब मन में यह कहा 'ओह हो देसाई तेरी यह हिम्मत कि तू मुझसे यह कहे।' उस दिन से वह देसाई को घेरने के लिए मौके की ताक में था।

उसके मूर्ख दामाद को राघप्पा के लिए अवसर जुटाने में इतने वर्ष लग गये। आखिर किट्टण्णा ने वह अवसर दे ही दिया। उसने एक दिन अपने ससुर से मिलकर अपनी वरदक्षिणा और कर्ज की बात विस्तार से कह सुनायी। उसने बताया "मुझे अपनी मां की बुद्धि पर विश्वास है, यह सही, वह जो कुछ करती है मेरी भलाई के ही लिए करती है, पर मुझे सूद देना पड़ता है और जार्ज के सामने झूठा बनना पड़ा है। इसके अतिरिक्त मां ने जो पैसा रखा है उसका कोई कागज-पत्र भी नहीं। आजकल के जमाने में सभी कागजपत्र सही होने पर भी धोखा खाने

की नौबत आ जाती है। रोज हम ऐसे मामले अपनी कचहरी में देखते हैं। देसाई जी तो बहुत भले आदमी हैं, लेकिन आजकल के दिन ही खराब हैं।"

राघप्पा ने किट्टी को देसाईजी के विरोध में खड़ा करने की बात पहले ही सोच रखी थी। इसका पहला कारण यह था कि दत्तक लेने की बात को आगे टाल देने के कारण उसके बारे में किट्टी को शंका हो गयी होगी और देसाई का प्रभाव उस पर और बढ़ गया होगा। उसे कम करके किट्टी को अपनी जेब में डालना था। इस मौके को देखकर उसने अपनी स्थिति को मजबूत बनाया। उसने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'किट्टण्णा! मैं तुम्हें धोखा नहीं देता हूं। मेरे लिए तुम में रत्ना में क्या फर्क है। मुझ में कोई भेदभाव नहीं है। तुम मेरे बेटे के समान हो। पहली बात तो यह है कि देसाईजी से झगड़ा मोल लेने की जरूरत नहीं, यदि वे दे दें अच्छा नहीं तो साफ-साफ बात करनी पड़ेगी।' यह उपदेश देकर उसे देसाई जी से साफ-साफ बात करने के लिए उकसाया। उसमें उसकी आंतरिक इच्छा यह थी कि कर्ज के लिए देसाईजी और किट्टी का झगड़ा होगा तो वह मध्यस्थ बन अपना निर्णय देगा।

किट्टी दो दिन में अपना सारा धैर्य बटोर कर देसाईजी के घर आया। उसने देसाईजी से बात करने के बारे में मां को नहीं बताया था।

देसाईजी बैठे पंचाग देख रहे थे। किट्टी का उन्होंने जबरन मुस्कराते हुए स्वागत किया। किट्टी ने झूठमूठ से कुशल समाचार पूछा और विनय का दिखावा करते हुए अपने कर्ज की बात उनके सामने रखी।

देसाईजी ने पूछा, "कितना कर्ज लिया है?"

"पांच सौ रुपये।"

"मुझ से मांगा होता तो मैं नहीं दे देता? अब जाने दो। यह बात हुए चार पांच साल बीत गये अब तक कितना चुका चुके हो?"

"पैसे बचते ही नहीं, मूल में से कुल चालीस रुपये चुक पाये हैं। सूद भर दे रहा हूं।"

देसाईजी व्यथित होकर बोले "शर्म नहीं आती तुम्हें यह बात कहने में?"

किट्टी को समझ में न आया कि वरदक्षिणा की बात कैसे उठाये। देसाईजी ने अपनी बात आगे बढ़ायी।

"अच्छा लड़का है, अच्छी तरह गृहस्थी चलाएगा। यह सोचकर हमने बीच में पड़ कर तुम्हारे लिए कुछ किया। तुम्हें अपनी पत्नी को वश में रखना ही नहीं आता। तुमने कभी भी अपनी मां से यह नहीं पूछा, "मां तूने खाना भी खाया है या नहीं। नौकरी करते हो पांच सौ रुपये चुका नहीं सकते। अब मैं इसमें क्या बताऊं?"

"मैंने सोचा था वरदक्षिणा मिलते ही उन लोगों का कर्जा चुका दूंगा पर अब सूद ही दे पा रहा हूं। नौकरी का मुंह देखकर जिन्होंने कर्जा दिया था वे कब तक चुप बैठे रहेंगे?" किट्टी ने सब शर्म छोड़ कर कहा।

"फिर नौकरी ही क्यों कर रहे हो, छोड़ दो। तुम्हारी मां कुछ न कुछ करके तुम्हें और तुम्हारी पत्नी को घर बिठा कर खाना खिला लेगी...।"

देसाईजी किट्टी की बात का अर्थ समझकर गुस्से में आ गये थे। उनका गुस्सा देखकर किट्टी बिवेक भूल गया और उसने सोचा कि आज गलत समय पर अपने सुसर की सीख का उपयोग किया गया है।

"यदि आप अब चार सौ साठ रुपये दे दें तो उनका कर्जा खत्म कर दूं। तनखा में से आपको ही देता चलूंगा, बीच में पड़ने वाले की जिम्मेदारी निबट जायेगी।"

"यह विचार पहले क्यों नहीं आया। इसके अतिरिक्त मां की यात्रा वाले पैसे तुमने चुका दिये। खैर वह जाने दो अब यहां का लेकर वहां डालने से फायदा क्या?"

"फायदा तो कुछ नहीं।"

किट्टी को एकदम इस बात का संदेह हुआ कि कहीं उसके ससुर के उपदेश का भास तो देसाईजी को नहीं हो गया। देसाईजी ने पहले से ही यह निश्चय कर लिया था कि पैसे के मामले में वे इस ससुर-दामाद के बीच में नहीं पड़ेंगे। उन्हें अभी इस बात पर बहस करने की जरूरत न थी। निरुपाय होकर किट्टी ने फिर बात आगे चलायी।

"शादी करने वाला मैं ही मूर्ख हूं। कर्ज़ा तो शादी के लिए ही लिया था, पर कम से कम वरदक्षिणा तो मेरे हाथ में आनी चाहिये थी।"

देसाई को मन ही मन असंतोष हुआ। जरा सीधे बैठकर उसके कुछ आगे बोलने का रास्ता देख रहे थे।

अंत में कुछ आगापीछा सोचकर रुकते-रुकते बोला, "सुना था, मां ने वरदक्षिणा और पहले के हजार रुपये आप ही के पास रख रखे हैं।"

"खबरदार! क्या समझ रखा है।"

"नहीं मैंने आप से मांगे नहीं पर यह बात तो सच है कि आपके पास रख रखे हैं।"

"नहीं। कुछ नहीं रखा।" ... देसाईजी पसीने-पसीने हो गये और बिना झुके ही पंचांग देखने लगे।

अभी वे कुछ और बात करेंगे यह सोचकर किट्टी ने दस-पंद्रह मिनट रास्ता देखा, लेकिन वे वैसे ही बैठे पंचांग देखते रहे, पर मुंह तक भी नहीं हिलाया।

कठोर मौन तोड़कर किट्टी ने कहा, "अच्छा, मैं चलता हूं।"

"हूं।"

"किट्टी गुस्से से पांव पटकता हुआ दरवाजे तक गया। एक बार गुबार उतर जाने के बाद अभी तक बात न कर पाने के कारण उसकी सारी शक्ति उसके मस्तिष्क को खौलाने लगी। उसके हाथ पैर कांप रहे थे। इतने में एक और विचार आ जाने के कारण दरवाजे के बाहर से ही खड़े-खड़े बोला,

"आपने मुझसे कसम रखवायी थी कि मां से अलग नहीं होने की और मामा जी से दत्तक लेने की कसम रखवायी थी। आप भी सबके सामने कसम खाइये कि पैसे आपके पास नहीं रखे?"

"मौका आने पर क़सम उठा लूंगा," देसाईजी बोले।

कुछ मौकों पर भगवान से भी मुकाबला करने का कठोर साहस उनमें था। किट्टी और कुछ न कहकर दरवाजा लांघने को ही था कि देसाईजी ने उसे बुलाया और विषादपूर्ण मुस्कान से वे बोले।

"कृष्णा, जरा इधर तो आना। तुम्हें एक बहुत पुरानी बात बताता हूं ताकि तुम्हें पता चले। पहले धारवाड़ में होसायल्लापुर में हमारा एक घर था। मेरे मना करने पर भी मेरे पिताजी ने उसे बेच दिया। इसलिए मैं अब तक उनका श्राद्ध नहीं करता। तुम्हें मालूम रहे इसलिए यह बात कह रहा हूं।"

किट्टी को यह बात समझने में एक मिनट लगा। वह फिर चलने को ही था इतने में देसाईजी ने एक और तीर छोड़ा।

"यह बात अपने ससुर को भी बता देना, ताकि उन्हें भी पता रहे।"

देसाईजी की यह बात सुनने के बाद राघप्पा बोला, "तो आज से देसाईजी और मुझ में लड़ाई शुरू हो गयी।" किट्टी झगड़े से डरता था। राघप्पा ने "तुम चुप रहो जो मुझसे होगा वह मैं करूंगा। यह बात प्रसिद्ध है कि राघप्पा को छेड़ने वाले बच नहीं सकते हैं। यह बात देसाईजी को भी पता रहनी चाहिए।" यह कहकर उसने मूंछों पर ताव दिया।

25. राघप्पा का दोरंगी रूप

इन पांच छह वर्षों में राघप्पा बहुत कुछ बदल गया था। उसका मुख्य कारण महबूबजान की मृत्यु कहना चाहिए। उसकी मृत्यु के बाद राघप्पा को जीवन का आकर्षण ही जाता रहा। उसकी कोशिश देसाईजी को काबू में लाने की थी। वह तो हाथ नहीं पड़े पर उसकी प्रिया महबूब चल बसी।

उसकी मृत्यु भी एक कहानी थी। यह बात तो स्पष्ट ही थी कि लगातार एक महीना नाटक कंपनी में काम करने की शक्ति उसमें न थी। राघप्पा को दिये वचन के अनुसार परमेश्वर यह स्वयं उसे पीने का आग्रह नहीं करता था पर यह सच था कि उन दिनों महबूब स्वयं मांगा करती थी। रोज रात को जागने की आदत छूटे उसे बहुत दिन हो गये थे। यथा प्रकार उल्टी, हृदय शूल आरंभ हुए, रक्तचाप और धड़कन बढ़ने लगे। शायद नाटक कंपनी के अवनति के दिन आरंभ हो गये थे। इसलिए परमेश्वर भट्ट को भी काफी लाभ नहीं हुआ। धारवाड़ एक मृगजल के समान था, पता नहीं कब खूब आमदनी हो, यह कहना कठिन था। चिंतित परमेश्वर भट्ट को देख कर अपने-आप कष्ट उठा कर और एक बार चाय लेकर वह काम के लिए तैयार हो जाती। भट्ट ने भी उसके श्रम को देखकर हल्के स्वर में गाने को कहा था। पहले के समान वह दो पारियों में भाग लेने में असमर्थ थी। जैसे-तैसे उसने एक महीना पार कर लिया।

वापस लौटते ही रक्तचाप ने दबा लिया। उठ कर खड़े होते ही चक्कर आने लगते। खाना शरीर को न लगता। राघप्पा उसे अस्पताल ले गया। वहां दो महीने रही। कुछ फायदा होने के बाद वापस लौटी। परंतु पंद्रह दिन बाद ही फिर से वही हालत हो गयी। इस बार वह अस्पताल जाने को तैयार न हुई। जैसी अल्लाह की मर्जी मानकर रात-दिन भगवान के ध्यान में लगी रहने लगी। कभी-कभी भगवान के ध्यान में उसकी आंखों से आंसू लगातार बहते। राघप्पा ने पूरे मन से उसकी सेवा की, मेरे कारण ही इसने इतना कष्ट उठाया सोचकर दुख से उसे बचाने का अथक प्रयत्न किया। एक-एक दो-दो दिन में हुब्बळ्ळी आकर अपने सामने दवा खिलाता और दूध फल खिलाता। दस-बारह महीने बाद दर्द पहले से ज्यादा जोर से शुरू हुआ। कफ और पित्त ज्वर शुरू हो गया। राघप्पा भागता हुआ हुब्बळ्ळी पहुंचा। एक मास तक वहीं रहा, और उसकी सेवा सुश्रुषा की। राघप्पा ने अपने सारे मनोबल से उसे बचाने के लिए मृत्यु से लड़ाई की। उसके मनोबल को देखकर तो मानो मृत्यु भी तनिक डर-सी गयी। पंद्रह दिन तक जीवन और मृत्यु के बीच झूलती महबूब एक दिन प्रात: चार बजे पसीने से तर-बतर हो गयी। उसका बुखार एकदम उतर गया।

जाते समय मृत्यु उसके मुख पर अपनी छाप छोड़ गयी। उस समय महबूब एकदम कुरूप हो गयी थी। उमर होने पर भी सौंदर्य तथा शांति से भरे मुख पर अब काली झाइयां दिखायी दे रही थीं। एक आंख ऊंची हो गयी थी। भौंहें भूरे रंग की होने पर भी जहां-तहां से बाल झड़ गये थे। ओंठ कहीं-कहीं से फट से गये थे।

उसके स्वभाव में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। दूसरों के साथ भले ही वह कुछ चिढ़-सी जाती पर यजमान के साथ सदा जैसी ही रही। मनुष्य की सहन शक्ति की भी एक सीमा होती है। इतने दिन सेवासुश्रुषा करते-करते राघप्पा ऊब-सा चला था। इसके साथ ही अपनी स्थिति को देखकर महबूब को डर-सा लगने लगा। उसने रोते हुए राघप्पा के पांव पकड़ कर कहा इतना कष्ट उठाकर आप ने मुझे क्यों बचा लिया ? ... फिर से दर्द होने पर मुझे बचाने की कोशिश न कीजियेगा। मैं चुपचाप आंखें मूंद लूंगी, ऐसे जी नहीं पाऊंगी।"

राघप्पा को बड़ा दुख हुआ। साथ-ही-साथ उसने अनुभव किया कि महबूब के

रहने में सुख नहीं ।

अगले बीस दिन बाद अंतिम समय आ गया । राघप्पा यंत्र की भांति लगा रहा । पर सहने की भी एक सीमा होती है । दूसरे दिन ही उसे महबूब का सान्निध्य अखरने लगा । अपने मन को शांत करने के लिए वह एक और गाने वाली के घर जाकर गाना सुनने बैठ गया । उसके वहां जाने के एक घंटे बाद महबूब ने उसे याद करते-करते अपनी आंखें मूंद लीं ।

अगले दिन यह खबर सुनते ही राघप्पा को लगा मानो उसके प्राण किसी ने निचोड़ डाले हों । इतने दिन वहां रह कर आखिर समय में वह नहीं रहा यह सोचकर उसे सिर पीट लेने की इच्छा हुई । अगले पंद्रह दिन वह पेट दर्द के मारे बिस्तर पर पड़ा रहा । ठीक होने के बाद भी वह पहले जैसा राघप्पा न रहा । अंदर ही अंदर उसे मन की दुर्बलता शुरू हो गयी ।

महबूब के मरने के बाद उसके घर से महबूब को पहुंची संपत्ति फिर से वापस घर आ जायेगी । यह झूठी आशा रखने वाली चंपक्का की आशा विफल रही । महबूब ने सारा पैसा अपने भांजे की दूकान में लगा दिया था । राघप्पा इस बारे में कुछ भी करने को तैयार न था । दूसरी बार बीमार होने के बाद जब वह ठीक हुई तो महबूब ने अपने गले का चंद्रहार चंपक्का के पास भेजा था और कहला दिया था कि जब शांता की शादी होगी तो उसे दे देना । बस उतना ही घर पहुंचा ।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे राघप्पा का तेज कम होने लगा था । पहले का सा उत्साह, शक्ति, चपलता, सभी कम हुए बिना न रहे । पहले की सी उसकी शारीरिक शक्ति तथा बुद्धिमता अब कहानी बन गयी थी । तब रावण के समान प्रचंड सामर्थ्य से धरती को दबाने वाला अब साधारण नट के समान नाचता सा लगता था । वह अपने अलौकिक व्यक्तित्व को खोकर निस्तेज हो गया । यह बात वह भी समझ रहा था । कभी-कभी राह चलते हुए उसकी एड़ियां टकराने पर उसके मुंह से निकल जाता पहले तो ऐसा नहीं होता था । पहले अपने किसी कार्य पर पश्चाताप न करने वाला अब हर बात पर दुखी हो जाता । मृत्यु की शक्ति ही ऐसी होती है । दुख को न जानने वाले लोहे के समान दृढ़ हृदय को भी जब मृत्यु दुखी होना सिखा देती है तो वह किसी भी विषय पर

दुखी हो सकता है। राघप्पा इन दिनों कल्पनालोक में विचरने लगा। काल्पनिक दुखों से भी वह दुखी होने लगा। उसका पहला दुख था उसकी बुद्धि ने चारों ओर से समान रूप से उसे लाभ नहीं पहुंचाया। दूसरा दुख था उसकी बुद्धि ने उसकी सामर्थ्य को हानि पहुंचायी। तीसरे उसकी बुद्धि की शक्ति ही क्षीण होने लगी थी।

अब जो बचा था वह राघप्पा की छाया मात्र थी। पहले प्रचंड राघोबा भरारी महबूब के साथ अदृश्य हो गया था।

'यह देसाई मेरे हाथ कुछ पहले पड़ता। अब तो मेरी शारीरिक शक्ति भी कम होती जा रही है। तब मिलता तो पंद्रह दिनों में ही उसकी अक्ल ठिकाने कर देता।' अपनी पत्नी के आगे वह ऐसा डींग मारता। देसाईजी और गंगव्वा राघप्पा के घर में कटु मजाक के विषय थे। दोनों घर के शत्रु थे। अब उसमें किट्टी का कर्ज, गरीबी और देसाईजी के पास रखे रुपये इन बातों पर खुली चर्चा करने का अवकाश मिलने के कारण कटुता और बढ़ गयी।

शक्ति भले ही कितनी भी कम क्यों न हो जाय भरारी की करामातें बंद नहीं हुई थीं। उस साल देसाईजी के खेतों में बड़ी मात्रा में चोरियां हुई। देसाईजी के गांव से धारवाड़ की हाट में आने वाले लोगों के साथ राघप्पा ने दोस्ती गांठ ली थी। अभी तो उसके कई उद्देश्य बाकी थे पर एक और रास्ता सूझने के कारण ओछे कामों में हाथ नहीं डाला।

देसाईजी के पुत्र वसंत ने चोरीछिपे अब भी अनाज बेचने की आदत छोड़ी न थी। पिछले दिनों उसका एक नाटकमंडली बनाना और उसके लिए गांव में लोगों को शत्रु बना लेना, देसाईजी का भागे-भागे गांव जाना, यह सब राघप्पा के एक शिष्य ने उसे बताया था। अब वसंतराव पहले की तरह खुल्लम खुल्ला अनाज नहीं बेचता था, लेकिन पक्के ग्राहकों को तीन-तीन दिन में एक बार एक डेढ़ बोरी बेच देता। राघप्पा का चालाक शिष्य बसवण्णी स्कूल में चार जमात तक पढ़ा था। वह बड़ा उत्साही थी। उल्टे सीधे कामों में उसकी बहुत रुचि थी। उसके द्वारा राघप्पा ने वसंतराव को संदेश भिजवाया : धारवाड़ में आपकी ही बिरादरी के सज्जन बड़ी मात्रा में खरीददारी करने को तैयार हैं।

चतुर बसवण्णी ने नमकमिर्च लगाकर खूब सब्जबाग दिखाये। बसवण्णी बिचोलिया था। अनाज मिलते ही पैसे दे देता था। अनाज रातोंरात बैलगाड़ी

से धारवाड़ पहुंचा देता लेकिन किसी को कानोंकान खबर न होती। यह योजना एक मास तक बड़ी लाभप्रद रही। राघप्पा को पंद्रह बोरी ज्वार मिली। धारवाड़ पहुंचाने का खर्च और बलवण्णी की दलाली आदि दूसरे खर्च निकाल कर राघप्पा की जेब में बाईस रुपये पहुंचे।

राघप्पा के मन को यह छोटेमोटे तरीके भाये नहीं। मन ही मन उसने सोचा छि: बीस रुपये शर्म की बात है। महबूब के जीते तो इतने रुपये मैं एक दिन में फूंक देता था। वह इससे भी आसान तरीका सोचने लगा। देसाई को अपने शिकंजे में कसना हो तो उसके लड़के को पकड़ना पड़ेगा। उंगली पकड़ कर पहुंचा पकड़ना होगा। इसके लिए वसंत से सीधा परिचय करना होगा। वसंत को पहले नाटक कंपनी के बारे में बड़ा उत्साह था। राघप्पा भी उसमें पर्याप्त निष्णात था। इसलिए वसंत में नाटक के बारे में उत्साह भरने को अपने पास बुलाने के लिए बसवण्णी को कहला भेजा। दूसरे दिन से ही उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा।

यह राघप्पा का एक मुख था।

अब दूसरा मुखौटा था किट्टी की ओर ध्यान देने वाला।

किट्टी को दत्तक लेने के बारे में राघप्पा का मन बदलने लगा था। उसने इस बात को कभी पूरे मन से सोचा न था। अपनी बेटी देते समय गंगव्वा को काबू करने का उसका एक उपाय भर था। यह विचार अब गंगव्वा की हठ के कारण पक्का रूप धारण करने लगा था। उस समय राघप्पा अपनी जवानी में था। तब उसे दत्तक लेने की बात हास्यास्पद लगती थी। परिस्थितिवश उसने दत्तक लेना स्वीकार किया था। उसने सब के सामने कसम भी उठायी थी। इसके अतिरिक्त किट्टी के बारे में चंपक्का बहुत हठकर रही थी। इन सब कारणों से विवाह से पहले राघप्पा दत्तक की बात मान गया।

विवाह हो गया। उसके बाद दत्तक लेने की बात टल जाने से राघप्पा के विचारों में परिवर्तन होने लगा। राघप्पा का यह विचार कि विवाह के बाद गंगव्वा द्वेष छोड़ देगी, झूठा निकला। गंगव्वा एक बार भी उसके घर न आयी और न ही भाई को अपने घर बुलाया। रत्ना भी विशेष सुखी न थी। राघप्पा के

मन में यह विचार स्थिर होने लगा कि उसकी चिढ़ उसकी बेटी पर उतर रही है। इस प्रकार गंगव्वा एक डरावनी चीज बन गयी। किट्टी ने भी इन चार-पांच वर्षों में राघप्पा के वारिस बनने के कोई लक्षण नहीं दिखाये। वह राघप्पा का शहबाला तो बना था पर उसमें वह योग्यता न थी। राघप्पा इस बात को लेकर पत्नी के सामने गर्जा, "किट्टी की जगह अगर मैं होता तो गंगव्वा को 'मेरी मां, मेरी माता' कहकर साष्टांग नमस्कार करके घर से बाहर कर देता।"

ऐसी परिस्थिति में देसाई जी के उसे बुलाकर दत्तक की बात उठाने से वह गुस्से से ऐड़ी से चोटी तक जल उठा। अपने मन की चिढ़ को राघप्पा ने देसाई के सामने व्यक्त करते हुए कहा, "देसाई जी शादी हुए डेढ़ साल हो गया पर एक बार भी गंगव्वा हमारे घर नहीं आई। बीसयों तीज त्योहार होते हैं। यदि यह मन-मुटाव ऐसे ही रहा तो मुझे कैसे विश्वास आयेगा।" इस पर देसाईजी ने कह दिया, "आपने ही पहले वचन दिया था। विवाह के समय आपने आगे बढ़कर चार आदमियों के सम्मुख यह नहीं कहा कि हमारा मनमुटाव यहीं समाप्त हो जाना चाहिए। उस समय तो आपके मन में लड्डू फूट रहे थे। तब आप कुछ बोले ही नहीं।"

इससे राघप्पा का क्रोध द्विगुणित हो उठा। किट्टी को दत्तक लेने में उसे अब और भी दोष दिखने लगे। दूसरा दामाद यदि किट्टी से भी अच्छा मिला तो...? किट्टी को दत्तक लेने के बाद अपने बेटे को गंगव्वा अपने वश में करके मेरा घात कर दे तो...? यह दूसरा विचार राघप्पा को भयानक दीखने लगा। किसी से भी न डरने वाले राघप्पा को अपनी बहिन से थोड़ी घबराहट होती थी। अब उसकी मानसिक दुर्बलता ने भय का रूप धारण कर लिया था। मन ही मन वह सोचता अगर उस गंगी के हाथ में पड़ गया तो वह मेरा कचूमर निकाल देगी। गंगव्वा के बारे में उसके मन में सदा भयपूर्ण भक्ति ही थी। उसकी बहिन ही इन तीन वर्षों में उसके विचारों का केंद्र-बिंदु थी। उसके बारे में एक और गायत्री मंत्र इसके कानों गूंजा करता : गंगी अभी मेरा द्वेष समाप्त नहीं हुआ। तुम्हारा भाग्य ही अच्छा है। तू भूत बनकर मुझसे बदला लेने आयेगी तभी मुझे शांति मिलेगी।

यदि अब किसी प्रकार इस दत्तक की बात को खत्म कर दें तो देसाई और गंगव्वा को तंग करने का आनंद आयेगा। पर चार आदमियों के सामने शपथ ले

रखी है, फिलहाल एक दो साल और टाला जाय, शांता के विवाह तक। फिर वह अपने मन ही में कहता "राघप्पा यदि तू असली 'राघप्पा है तो इस बात को दुबारा उठने से पहले ही खत्म कर दो।"

दत्तक के बारे में राघप्पा रावण की भांति सोचने लगा। 'यदि मेरे घर लड़का पैदा हो जाय तो ?' शांता के जन्म के बाद डाक्टरों की सलाह के अनुसार राघप्पा का पत्नी से संबंध छूट गया था। डाक्टरों ने साफ-साफ कह दिया था कि यदि एक और प्रसूति हुई तो पत्नी के जान का प्रश्न होगा। अब इसकी आयु पचास वर्ष की थी। पत्नी भी चालीस को पहुंच गयी थी। वह सोचता अब मेरे लिए समय कम है। शांता का विवाह स्थगित करने में कोई लाभ नहीं। उसकी आयु यदि ज्यादा हो गयी तो विवाह होना ही कठिन हो जायेगा।

कुछ भी हो आखिर में दया को एक ओर रखकर दांत किटकिटा कर राघप्पा ने निश्चय किया : मेरी पत्नी के प्राण... एक लड़का पैदा करके इसे अपनी टिकट कटाने दो...।

डाक्टरों को भी क्या पता लगता है, एक की दस बताते हैं।

चंपक्का पति द्वारा एक शब्द न बताने पर भी उसके विचारों को खुली पुस्तक के समान स्पष्ट रूप से पढ़ सकती थी। क्या उसने पति के मन के भावों को समझ कर आज तक अपना जीवन बिताया...। वह अंतिम स्वार्थ त्याग के लिए बिना कुछ कहे तैयार हो गयी। रत्ना के लिए दिल में थोड़ी दया जरूर हो आयी पर उसके लिए पति ही परमेश्वर था। पति के साथ प्रेम और द्वेष स्वयं उसके अपने ही थे। इसलिए उसे भी तैयार होना पड़ा।

26. अच्युत का उत्तर

कुछ ही दिनों में देसाईजी के कान में यह बात पड़ी कि गांव से पंद्रह बोरे ज्वार धारवाड़ में आकर बिकी है। इससे पहले फसल की चोरी का दुख उन्हें था। अब उनका यह संदेह पक्का हो गया कि उस चोरी में भी राघप्पा का ही हाथ था। देसाईजी ने अपने पिताजी के समय में अपनी शक्ति लगाकर राजनैतिक संघर्ष में भाग लिया था परंतु गत बीस वर्षों से निवृत्त सैनिक के समान शांतिपूर्ण जीवन बिता रहे थे। इन बीस वर्षों में भी भारी शत्रु उनके सामने न आया था। वे अपने में मदमस्त हाथी के समान रहते थे, इसलिए उनके दिली दोस्त भी कम थे। एकदम कोई जानी दुश्मन भी न था। अभी-अभी बिना कारण ही राघप्पा उपद्रव करने लग गया था। इससे वे दुखी हुए। बहुत दिनों से द्वेष और ईर्ष्या से दूर रहने से वे अब कहने लगे 'इस राघप्पा को अगर सबक न सिखाया तो मैं बहादुर देसाई नहीं।' यह सोचकर कि अब राघप्पा प्रत्यक्ष संघर्ष पर उतर आया है तो चुप रहने से काम नहीं चलेगा, उन्होंने गुस्से में एक पत्र अच्युत को घसीट दिया। उसमें उन्होंने जो बातें हो रही थीं उनका संक्षिप्त विवरण देकर पूछा था, 'क्या वेंकटराम राघप्पा का भाई हो सकता है? और इस बारे में कुछ और पता चले तो लिखना। इस बारे में मेरी पूरी आसक्ति है यह काम करना तुम्हारा कर्त्तव्य है और प्रयत्न करके इसका जवाब देना' इतना स्पष्ट पत्र उन्होंने कभी अच्युत को नहीं लिखा था।

यह काम करने में अच्युत को काफी कष्ट उठाना पड़ा क्योंकि उससे उत्तर आने में चार दिन लग गये। उत्तर सविस्तार था।

क्षेम श्री देवीदास फ्लोर मिल
लालबाग

तीर्थ रूप में चरणारविंदों में अनेक साष्टांग नमस्कार। आपका पत्र मिला। मैं सकुशल हूं। यहां काम अच्छा चल रहा है। आजकल संपादक महोदय मुझे जिम्मेदारी के काम सौंपने लगे हैं। हाल ही में मुझे एकाध बार संपादकीय लेख लिखने का अवसर दिया था। मेरा लेख पढ़कर अनावश्यक बात को उन्होंने हटा

दिया। यहां तीन-चार साल से काम करने के कारण मैं यहां और जूनियर लोगों में सीनियर हूं। पत्रिका की आर्थिक स्थिति चिंताजनक होने के कारण प्रतिवर्ष आधे वेतन पर कालेज के विद्यार्थी ही उपसंपादक नियुक्त किये जाते हैं। इसलिए हर साल नये चेहरे आते हैं उन सब में मैं ही पुराना हूं। अतः संपादक मुझ पर अधिक विश्वास करते हैं। बी. ए, की पढ़ाई अच्छी चल रही है। आप किसी बात की चिंता न करें। चक्की पर जाना अब मैंने कम कर दिया है। प्रेस में भी सप्ताह में एक-दो बार ही जाता हूं वह भी मशीन की जानकारी के लिए । वहां भी आजकल शारीरिक श्रम नहीं करता। आप किसी प्रकार की चिंता न करें। माताजी को भी यह सब बताकर निश्चिंत रहने को कहिये।

अब आपने जो पूछा था, उसके बारे में लिख रहा हूं। वेंकटराय को कुछ भी समझाना मुश्किल है। उद्देश्य पूर्वक कोई प्रश्न पूछा जाय तो उसे संदेह हो जाता है और वह उल्टा-सीधा बोलने लगता है। इससे पहले वेंकटराय ने कई बार अपने पास रखा पत्र दिखाया था। कई बार पत्र दिखाने की वजह और उसके विचित्र व्यवहार के कारण मैंने उस पत्र की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। केवल एक बार उसे पढ़ा था। अब यदि पढ़ने को मांगा तो अनावश्यक संदेह में पड़कर उसने नहीं दिया। उसे खुश करने में मुझे धरती आकाश एक करना पड़ा। उसको जब लहर उठती है तब वह जिसे चाहे वह पत्र दिखाता फिरता है। थोड़ा कन्नड़ जानने वाला और उसके हाथ उठने-बैठने वालों को वह पत्र दिखा कर पूछने की उसकी आदत है—कि क्या मेरा हिस्सा मुझे मिल जाएगा। जो भी उस पत्र को देखता है वह यही पूछता है कि क्या यह तुम्हारा दानपत्र है ? तुम्हें यह कैसे मिला ? वह पत्र उससे लेकर ध्यानपूर्वक पढ़ने से मुझे भी ऐसा ही लगा। यहां के एक वकील मित्र से पूछने पर उन्होंने भी यही कहा। वह पत्र इस प्रकार है :

स्वामीराय व श्री कृष्ण जी कुलकर्णी साकिन धारवाड के नाम में वेंकटराय वामन बिदुगोळ साकिन बिदुगोळ फिलहाल पूना में रहने वाला, पेशा नौकरी। यह दानपत्र लिखता हूं। मैं और मेरे बड़े भाई श्रीमान राघवेंद्र वामन बिदुगोळ दोनों जायदाद में बराबर के हिस्सेदार हैं। हमारे पिता के और कोई पुत्र संतान नहीं होने से अपनी पैतृक संपत्ति के हम दो ही हकदार हैं। मेरे दूसरी जगह काम करने की वजह से हमारी अविभाजित संपति की देखभाल मेरे बड़े भाई

श्रीमान राघवेंद्र वामन बिदुगोळ ही करते हैं और जायदाद उनके ही वश में है। हम भाइयों ने उस जायदाद का बंटवारा नहीं किया है। इन्हीं दिनों मुझ पर एक मुसीबत आन पड़ी है। आपने खुशी से उस मुसीबत को संभाल लिया। इस उपकार के बदले मैं अपने हिस्से में आने वाली पैतृक जायदाद को खुद अपनी खुशी से आपके नाम दानपत्र लिख रहा हूं। उस पर मेरे किसी भी वंशज का तकरार न होगा और आप उसका उपभोग कर सकते हैं। मेरे अविवाहित होने के कारण इस संपत्ति पर किसी का अधिकार न होगा। मेरे हिस्से में कितनी जायदाद आनी चाहिए यह आप पंचों के सामने फैसला कर लें और फिलहाल जायदाद बड़े भाई के कब्जे में है आप जब चाहें तब उसे अपने कब्जे में ले सकते हैं। यह दानपत्र राघवेंद्र वामन बिदुगोळ के सामने तैयार हुआ। जिसे आपने कबूल करके अपने हस्ताक्षर किये हैं। यह है कुल दानपत्र।

हस्ताक्षर ता। 15-5 वेंकटेश वामन बिदगोळ

गवाह व

शांतप्पा शिवप्पा शेट्टी स्वामीराय व कृष्ण जी

कुलकर्णी

राघवेंद्र वामन बिदुगोळ

इस पत्र पर रजिस्ट्रेशन का कोई निशान नहीं, इस पत्र के पढ़ने वाले हर एक क्लर्क को यह पत्र सही ही लगता है लेकिन मुझे एक संदेह पैदा होता है। कागज गहरी काली स्याही से लिखा गया और वह पुराना हो गया है। इसलिए यह मूल कागज की प्रति है, परंतु मैंने हस्ताक्षरों को ध्यान से जांचा तो हस्ताक्षरों के अक्षर अलग-अलग होने से मुझे यह लगता है कि यह प्रति नहीं अपितु मूल कागज ही है। स्याही गहरी काली होने के कारण हस्ताक्षर एक ही व्यक्ति के लेख से दिखने पर भी ध्यान से देखने पर अलग-अलग दीखते हैं।

यदि यह मूलपत्र ही हो तो एक संदेह होता है कि वास्तव में यह कागज स्वामीराय व कृष्णा जी कुलकर्णी के पास होना चाहिए था। यह वेंकटराय के पास क्यों और कैसे आया। कागज की अभी तक रजिस्ट्री नहीं हुई है। यह कागज तो स्वामीराय कुलकर्णी को बहुत ध्यान से अपने पास रखना चाहिए था।

इन सब प्रश्न-उत्तरों को मुझे आपको लिखने की आवश्यकता नहीं है। अन्य

बातों की जानकारी वेंकटराय से पाना एक कठिन कार्य है। इस पत्र को पढ़ते हुए मैंने उससे कुछ बातें पूछी थीं उससे किस मुसीबत का जिक्र है यह पूछने पर उत्तर ही टाल देता है या गुस्से में आ जाता है। मेरे उस पत्र को ध्यान से पढ़ने को भी वह सहन नहीं कर सका। आपने उसके स्वभाव को पांच ही मिनट के परिचय में देख लिया होगा।

यदि इस विषय में आपको कुछ और भी तथ्य मालूम हों तो उसके बारे में अधिक जानकारी चाहते हों तो आप सब बातें मुझे लिख भेजिए ताकि मैं इस बारे में अपने वकील मित्रों से सलाह लेकर आप को पता दूंगा। मैं भी यथा-शक्ति उस पर सोचूंगा।

पूज्य माता जी को तथा भाइयों को कुशल समाचार दीजियेगा। इति।

आपका प्रिय
अच्युत राव।

पत्र पढ़ते ही देसाईजी के मन में संघर्ष होने लगा। उनको जितनी बातें पता थीं। उनके साथ इन बातों को मिलाने पर एकदम एक प्रकाश-सा दिखायी देता पर पुनः संदेह का अंधकार छा जाता। अभी किनारे खड़े देसाईजी को इस पत्र ने अंदर कूदने को आमंत्रित किया। साथ ही पुत्र की तीव्र बुद्धि का आकर्षण भी था। जो भी हो उनका मन इस बात के लिए तैयार हो गया कि उन्हें और उनके पुत्र अच्युत को इस मामले में हाथ डालकर इसके रहस्य को खोलना होगा। पहले इससे बचने की जो इच्छा थी वह इस पत्र की प्राप्ति के बाद एकदम समाप्त हो गयी। उसकी जगह देसाईजी के जीवन में एक प्रचंड क्रियाशीलता उत्पन्न हुई। यह प्रश्न केवल उन पर विश्वास रखने वाली एक असहाय विधवा की भलाई मात्र का ही न था, और एक सीधे-सादे लड़के के हित का ही न था, अपितु उनके प्रताप को ललकारने वाले एक चतुर प्रतिद्वंद्वी को नीचा दिखाने का भी, जिससे उनकी पिता की मृत्यु बाद से अब तक भेंट नहीं हुई थी। देखते-देखते वह अखाड़े में उतर आया था। इन्होंने अनजाने में ही बाहें चढ़ा ली थीं। अब क्या आगा-पीछा सोचना।

देसाईजी फिर जवान हो गये।

27. वसंत और राघप्पा का संवाद

राघप्पा की सलाह के अनुसार वसवण्णी ने धारवाड़ आकर वसंत को राघप्पा से भेंट करने को फुसलाया। 'मैंने उन्हें बताया था कि हमारे गौड़ जी तो नाटकों पर प्राण देते हैं। तो वे बोले 'गौड़ बड़े उत्साही हैं तब तो हमारी उनकी जोड़ी खूब जमेगी। उनकी पहले तो नाटक कंपनियां थी। स्वयं उन्होंने कई बार अभिनेताओं को नाटक करना सिखाया है। उन्होंने यह भी कहा 'तुम्हारे गौड़ यदि साथ दें तो एक और नाटक खेला जा सकता है। आपको यदि वे देख पायें तो सच में राजा का पार्ट आप ही को देंगे, मुझे इस बात का विश्वास है। आप को देखते ही मेरे मन में यह बात पक्की हो गयी थी। आप तो लगते ही राजा हैं।' इस प्रकार वसवण्णी ने अपना चौड़ा-सा मुंह करके कहा तो वसंत ने एक दिन स्वयं ही उससे कहा "चलो वसवण्णी एक दिन धारवाड़ हो आयें। बहुत दिन हो गये शहर गये।"

वसंत बदनामी से डर कर जब से धारवाड़ छोड़कर गया तो वह वहां के कारोबारों में इतना डूबा कि वह धारवाड़ को एकदम भूल ही सा गया था। गांव के आकर्षण भी कम नहीं होते हैं। गाय-बैल, खेतीबाड़ी, इनके आकर्षण में वसंत को गांव छोड़कर आना कठिन हो गया। छोटी-मोटी बातों के लिए वह गांव छोड़ आने को तैयार न था लेकिन नाटक में अगर उसे राजा का पार्ट करने का मौका मिले तो उससे बड़ी और क्या बात हो सकती है? पहले एक बार जब उसने नाटक में पूर्ण आसक्ति दिखायी तो पिता जी ने आकर सब किये धरे पर पानी फेर दिया था। अब वही अपूर्ण आशा यदि अनायास पूरी हो रही हो तो क्यों न प्रयत्न किया जाय? इस प्रकार धारवाड़ जाने के लिए वसंत तैयार हुआ। इस डर से कि कहीं पिताजी को पता न चल जाय वह रात को धारवाड़ पहुंचने वाली बस से वसवण्णी के साथ वहां पहुंचा। वसवण्णी उसे सीधा राघप्पा के घर ले गया।

राघप्पा ने उसका स्वागत करके पहले चाय पिलायी बाद में बढ़िया खाना खिलाया। काजु, किशमिश, बंबई का पिस्ता और आठ-दस फलों का सेवन करते हुए वसंतराव की खुशी का कोई ठिकाना न था। वसंत का घर काफी

संपन्न था। वेणुबाई की रसोई में स्वाद की अपेक्षा मात्रा अधिक होती थी। अपने घर के फलफूल के सामने राघप्पा के घर का फल-सलाद देखकर वसंत के मन को एक प्रकार की शांति मिली। खाते समय राघप्पा भीमसेन की भांति आग्रह-पूर्वक खिला रहा था साथ-ही-साथ हंसी मजाक भी करता जाता। परंतु उसके घर में भोजन पर बैठने के बाद हंसी-मजाक की आज्ञा ही नहीं थी।

खाना खाने के बाद बैठक में राघप्पा ने अपनी दिलचस्प बातों से रात के दो बजे तक वसंत को बहलाया। नाटक कंपनी के अपने जीवन के विचित्र प्रकार के अनुभवों का आकर्षक वर्णन किया। सुप्रसिद्ध महबूबजान इसी की रखैल थी यह सोचकर तो वसंत का राघप्पा के प्रति आदर और भी बढ़ गया। रंगमंच पर स्वप्न में दिखायी देने की भांति पुनः ओझल हो जाने वाले अभिनेतागण और हैंड-बिलों के द्वारा ही परिचित व्यक्ति वसंत को अब सजीव से दिखने लगे। जब यह पता चला कि महबूबजान के गलत उच्चारण को राघप्पा ने ही सुधारा तो वसंत को पता चला कि बड़े-बड़े अभिनेता भी गलत उच्चारण करते हैं। अलग-अलग गांवों में हुई फजीहतें, तंबूओं का फाड़ा जाना, पियक्कड़ों का बाहर निकलवाना, झूठ बोल कर, डराकर लाइसेंस लेना, रंगमंच पर सामान भूल जाने पर होने वाली फजीहतें, समय पर वेतन न मिलने पर हम रूप-सज्जा नहीं करवायेंगे? अभिनेताओं के हठ करके बैठ जाने की आदतें आदि बातों में थोड़ी बहुत सच्चाई होने पर भी राघप्पा ने उनमें खूब नमक-मिर्च लगाकर सुनायीं। उसकी बातें सुन कर वसंत के पेट में हंसते-हंसते बल पड़ गये।

राघप्पा की इन बातों के पीछे एक और अंतः प्रेरणा भी काम कर रही थी। वसंत सुंदर था। उसको देखते ही कन्या का पिता होने के नाते राघप्पा के मन में एकदम यह विचार उठा होगा 'क्या यह शांता के लिए ठीक नहीं रहेगा?' ज्यों-ज्यों वसंत राघप्पा के प्रभाव में आने लगा त्यों-त्यों राघप्पा के मन में यह विचार पक्का होने लगा कि इसे अपना दामाद बना लेना चाहिये। देसाईजी के ऊपर के क्रोध ने राघप्पा को एक और अमीर दामाद प्राप्त करने में सहायता दी तो इसमें दोष क्या है? ...

"सुना था आपने गांव में नाटक करवाया था ...। गांव का नाटक तो मारवाड़ी की पगड़ी की भांति है उसे जैसे भी बांध लो चल जाता है। उन लोगों को दो

बातें सिखाने में सिखाने वाले की इतिश्री हो जाती है। नाटक तो असली वह है जो शहर में खेला जाता है। एक हैंडबिल की जगह दो बांट दो तो नाटक की शोभा ही बदल जाती है। वास्तव में बात यह है... अनुभवी अभिनेता होना चाहिये, स्त्रियों का पार्ट स्त्रियां ही करें, अच्छे गानें, गाने वाले तीन चार आदमी होने चाहिए। खूब चंदा भी इकट्ठा करना चाहिये। अगर यह सब बातें हों तो वसंतराव ... भले ही आठ-आठ आने का टिकट रखिये। जनता भागी आयेगी। नाटक में रूपसज्जा का भी बड़ा महत्व होता है। मुट्ठियां भर-भरकर पैसा झोंकना पड़ता है। पर बटोरा भी वैसे ही जाये तब तो हुआ ना नाटक। खाली चने मुरमुरे खिलाकर तख्तों पर नचवाया जाय तो पैसे का पैसा गया और नाम का नाम।"

वसंत उसके विचारों से पूर्ण सहमत हुआ। उसके साथ ही उसने अपने मन का एक संशय भी व्यक्त किया। "राजा का अभिनय करने के लिए जचावदार आदमी की जरूरत पड़ती है ना राघप्पा जी ... ?"

वसंत के मन की बात को भांपकर राघप्पा ने कहा "अरे ऐसे कोई जचाव वाले की कोई खास जरूरत नहीं है। रूपसज्जा से तो गधे को भी राजा बनाया जा सकता है। पर गंभीर आवाज की जरूरत है। हां, लंबाई भी कुछ होनी चाहिए। उच्चारण साफ होना चाहिए। यह सब अपने आप नहीं आते वसंतराव। इन्हें सीखना पड़ता है। अनुभवी आदमियों के पांव पकड़ने पड़ते हैं, सीखना पड़ता है। नाटक भी एक कला है। अभिनय कला कितनी कठिन है ? तुम्हारे जैसे होशियार लड़के को भी सीखना हो तो कम से कम पंद्रह दिन रोज अभ्यास करना पड़ेगा, वह भी छह-छह घंटे। अभिनय ऐसे ही नहीं आ जाता। इन सबके साथ यदि आदमी जचावदार भी हो तो सोने में सुहागे वाली बात होगी। अब तुम्हारा ही उदाहरण लो। यदि तुम मेरे पास आकर यह कहो कि मैं जंचता हूं, मुझे राजा का अभिनय करने दो, तो मैं साफ मना कर दूंगा। लेकिन तुम्हारी बुद्धि, शक्ति, सीखने की इच्छा, इनको देखने के बाद कहना पड़ेगा। 'हां लड़का जंचता है, आज नहीं तो कल सीख जायेगा।'"

"मैं तो सीखने को तैयार हूं पर क्या आपको यह लगता है कि मैं सीख जाऊंगा।"

"तो ऐसा कहो दोस्त सीखने को तैयार हो। तुम्हारे जैसे आदमी को ऐसी कौन-सी विद्या है जो नहीं आयेगी ? हम और तुम मिलकर आर्भाट् नाम की कंपनी शुरू कर देंगे। चार दिन यहां आते-जाते रहोगे तो उसका आकर्षण तुम्हें पता चलेगा। अभिनय भी एक विद्या है। सामान्य अभिनय से मिश्र अभिनय तक कैसे पहुंचा जाय और मिश्र से तिशर तक कैसे पहुंचा जाय, भृकुटी कब चढ़ानी चाहिए, प्रवेश कैसे करना चाहिए, रूपसज्जा खराब किये बिना माथे पर अंगूठा कैसे रखा जाय। मूंछें बिना गिराये कैसे मूंछों पर ताव दिया जाय, आंखों में आंसू कैसे लाने चाहिए। अभिनेताओं के सिर पर चोट पहुंचाये बिना गदा कैसे घुमानी चाहिए। यह सब छोटी-मोटी बातें होने पर भी एक से एक मिलकर ग्यारह हो जाती हैं समझे भैया। यह सब बाते हैं। इन सब बातों के लिए तुम बहादुर देसाई दृढ़ हो।"

"आप जैसे नचाएंगे मैं वैसे नाचने को तैयार हूं। विद्या किसकी बपौती है ?" वसंतराव ने शिष्य की भावना से कहा। पर अंदर-अंदर वह अपने को राजा के पात्र में चित्रित करने लगा।

अगले दिन पौ फटते ही वसंत वसवण्णी के साथ जाने को तैयार हुआ। चाय के समय शांता का प्रथम दर्शन भी हुआ।

उस दिन के बाद वसंत सप्ताह में एक-दो बार गुप्त रूप से धारवाड़ आने-जाने लगा। राघप्पा ने उसका परिचय 'मदर वेंकासानी' हीरोइन सुंदर सानी, हास्य शिखामणी तुलजा राम, खलनायक राजशेखरप्पा, हीरा भद्दुराव डबगल्लि संगीत मार्तंड गणूबुवा आदि से करा दिया। 'अगले साल देसाईजी कंपनी खोल रहे हैं आपको इसमें आना ही पड़ेगा।' आदि बातचीत राघप्पा ने उन लोगों से की। सुंदरसानी के घर एक छोटी बैठक भी हुई। तब वसंत ने पान लेकर पांच रुपये उसके हाथ पर रखे। पांव के हारमोनियम वाले चंद्रय्या से मिलकर पता लगाया कि किस कंपनी के हारमोनियम अच्छे हैं। उनकी कीमत क्या है ? उनके गुण-दोष क्या हैं आदि की चर्चा हुई। इन सब बातों में छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सब विषयों का ज्ञान भंडार राघप्पा में देखकर वसंत को अपने गुरू में और भी विश्वास जम गया। फकीरप्पा से मिलकर पता लगाया कि सामने का परदा

और घर, रास्ते और जंगल आदि दृश्यों के आठ परदों की कितनी लागत आयेगी, चार और छह पर कितनी लागत आयेगी। सब विषयों की चर्चा की। सब हिसाब लगाने पर कलाकारों का वेतन भोजन खर्च आदि चालू खर्च के अतिरिक्त केवल सामानों भर के लिए दो हजार रुपये की आवश्यकता थी। इन आंकड़ों को देखकर वसंत की आंखें फटी-सी रह गयीं। एक सौ में तो गांव में पूरा का पूरा नाटक हो जाता और कुछ बच भी जाता है। यहां तो केवल मुकुटों में ही एक सौ रुपये उड़ जाते हैं।

इस पर राघप्पा ने उसे जोश दिलाते हुए कहा, "आपको क्या हो गया देसाई जी। जितनी संपत्ति आपके पास है उतनी मेरे पास शहर में होती तो मैं दिखा देता कि मैं क्या कर सकता हूं।"

घर के अनाज की बोरियों को और भंडार को बेचने की बात में राघप्पा की विशेष आसक्ति दिखायी नहीं दी क्योंकि इसमें मिलता ही क्या था? यह ठीक है कि फिलहाल उससे कुछ सहायता मिल सकती थी पर ऐसी छोटी-छोटी बातें धंधे-दार को शोभा नहीं देतीं।

"उससे कुछ तो आता है पर देसाईजी कितने दिन तक आप बड़ों से यह बात छिपाकर रख सकते हैं? अब आप बालिग हो गये हैं और उसमें भी आप पैसा बेकार करने नहीं जा रहे हो। यह भी एक धंधा है। पैसा डालना और पैसा खींचना। इसमें शर्म की क्या बात है? शर्म करने के दिन चले गये। हो सकता है कुछ लोग इसे बदनाम करें। करने दीजिये। इस धंधे में आप जितने शुद्ध आचरण से रहेंगे और जितनी होशियारी बरतेंगे उतना ही अधिक लाभ होगा। यदि आप फिजूल की आदतें पाल लें और दूसरों के हाथ की कठपुतली बन जायें तो वे लोग आपको धोखा देंगे। वैसे गलत रास्ते पर जाने वाला घर में रहने पर भी नुकसान ही उठाता है देसाईजी। मैंने भी हर तरह का शौक किया है मेरा क्या बिगड़ गया है। बताओ तो भैया? आदमी शौक करे तो उसमें डूबना नहीं चाहिए। डूब गया सो गया। अगर इतना विवेक आप में है तो किसी से भी डरने या शर्म करने की आवश्यकता नहीं है, गुप्त रखने की भी आवश्यकता नहीं। नाटक भी एक धंधा है।

इस आधे गंभीर और अति परिचय के एकवचन और बहुवचन के मिश्रित

उपदेश को मन-ही-मन दोहराते हुए वसंतराव बस से गांव पहुंचा।

28. चंपक्का की चिंताएं

चंपक्का के मन में इन दिनों ढेरों विचार उठने लगे। घर में अब पहले की-सी चहल पहल नहीं रही थी। इस बात का तीव्र अनुभव दर्द से पिसी हुई चंपक्का के अलावा और किसे हो सकता था। उसकी आयु अब सैंतीस-अड़तीस साल की हो चली थी। इन पिछले बीस वर्ष की गृहस्थी में उसने बहुत कुछ देखा था। घर में उसने दुख और सुख दोनों ही देख लिये। लेकिन अब दिखने वाली शून्यता कुछ और ही प्रकार की थी। वह पति को एक प्रेयसी के समान बहुत पास से देखती आयी थी। वह उसके अंतरंग तक को पहचानती थी। उसके आनंदी स्वभाव के पीछे छिपे संघर्षों को भी जानती थी। उसी प्रकार इन दिनों उसके पति में जो परिवर्तन हो रहे थे। वह भले ही दूसरों को न दिख रहे हों पर उसे सुस्पष्ट दिख रहे थे। उसके चित्त-रूपी दीवारों में जो दरारें पड़ रही थीं उन्हें देखकर वह दीन सी मूक वेदना से व्यथित होकर अपने दिन काटने लगी। उसका पति हारने लगा था।

क्या यह बुढ़ापा था ? ... खाना कम हो गया था, तनिक-सी धूल पड़ जाने पर तुरंत उसे फेंक दूसरे कपड़े पहन लेने वाले राघप्पा के कालर पर इंचों मैल साफ दिख रही थी। शरीर तो पहले की भांति सुदृढ़ ही था पर मुख से वह आनंदी स्वभाव खो गया था। मुख की रेखाएं इतनी गहरी हो गयी थीं कि मानो किसी ने लकीर खींच दी हो। बाहर वालों को भले ही यह न दिखती हो परंतु चंपक्का के लिए यह भय की पूर्व सूचनाएं थीं। ऐसी स्थिति के आने पर भी जब उसके घर में कल के खाने को एक दाना भी न हो तो भी चिंता को ताक में रख कर लकड़ी के लट्ठे समान एक मिनट में सो जाने वाला पति आजकल रात के दो-दो बजे तक करवटें बदलता है।

एक और बात थी। अब तक चंपक्का को पति के विचारों को समझने के लिए

उसके कार्यों पर निर्भर रहना पड़ता था...। सदा मुस्कराने वाले पति के कुछ काम करने के बाद ही समझ में आता था कि ओह यह बात थी। पर अब पति अपने-आप में बड़बड़ाने लग गया था। पहले मन में जो विचार उठते थे उसका बिंब कभी मुख पर न आता था। अब तो मुंह देखते ही बात पता चल जाती थी और उसके होंठ अपने आप हिलते रहते थे।

अंत में एक दिन चाय पीते-पीते स्पष्ट रूप से बड़बड़ाया 'जान चाहे चली जाय पर उनके हाथ नहीं पड़ूंगा।'

शांता तथा चंपक्का ने वे बातें सुनी। उतनी स्पष्ट बात सुनकर चंपक्का ने यह समझकर कि पति उससे कुछ कह रहा है पूछा, "क्यों क्या हुआ?" राघप्पा ने आश्चर्य से पूछा "क्या?"

चंपक्का : "आप कुछ कह रहे थे।"

"मैंने क्या कहा, कहीं कुछ पागलपन तो नहीं सवार हो गया?"

पिता की बात के लहजे से चकित शांता चीनी का डिब्बा ताक में रखने को उठी थी वहीं वैसी-की-वैसी खड़ी रह गयी।

"तुझे सुनाई नहीं दिया शांता?"

शांता ने गवाही दी "हां आप कह रहे थे मैं किसी के हाथ नहीं पड़ूंगा।"

राघप्पा संतप्त होकर जोर से चिल्लाया "मैंने किसी से कुछ नहीं कहा...। तुम लोग पागलपन की बातें करके मुझे गुस्सा मत दिलाओ।"

"क्यों जी आप को क्या हो गया है? ऐसे क्यों...?"

"खबरदार" कहते हुए राघप्पा ने चाय गटागट गले से उतारी और वहां से उठकर चला गया।

तब से उसकी स्वगत बातों को सुनकर भी चंपक्का अनसुना-सा दिखाती। इस प्रकार निर्बाध होने से राघप्पा के स्वगत कथन और बढ़ गये। चंपक्का को डर लगने लगा कि पति बुढ़ापे की ओर भाग रहा है। एक दिन वह शांता से बोली "मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं कि तेरी शादी हो जाने के बाद उनसे पहले भगवान मुझे बुला ले। अब बहुत दिन रहना नहीं चाहती। यदि तेरे जन्म के समय ही मर जाती तो अब तक मेरे पंद्रह श्राद्ध हो चुके होते।" इतना कहते-कहते उसकी आंखें भर आयीं।

उसके लिए यह चिंता थी।

'एक और चिंता थी। इस उम्र में यदि वह गर्भ धारण करे तो ? पहली बात तो मृत्यु का डर, दूसरी दर्द का डर, पर उसने सारा जीवन ही दुख में काटा था। अब दुख में ही सब कुछ स्वीकार करने को तैयार हुई। डाक्टर ने स्पष्ट कह दिया है तो मृत्यु तो अवश्यंभावी है। वैसे पंद्रह साल बीत गये हैं, शायद मरूंगी नहीं। पर लड़का ही पैदा होगा इसकी गारंटी है क्या ? यदि लड़का ही पैदा हो और मैं मर जाऊं ? ... इतनी आशा से जन्म देकर बच्चे को अनाथ बनाकर मर जाय तो ... ?' इस प्रकार जीवन मरण के प्रश्नों ने उसे घेर रखा था ? फिर भी संतान की इच्छा से पति के पास आने पर क्या करे ? वह यह सोचकर चुप हो जाती। यह सब सोचना मेरा काम नहीं। पर फिर वह विचार घेर लेते।

एक और भी चिंता थी। रत्ना के बच्चे नहीं थे। उसके सामने इस वृद्धावस्था में यदि वह गर्भवती हो जाय तो उसको दुख हो सकता है। इतना ही नहीं उसके मुंह का कौर छीनने की सी बात होगी, हाय रे ...।

महाभारत और भागवत का पारायण करने वाली चंपक्का को भय हुआ कि इन बातों से उसका पति अपनी इन करतूतों वाली अधोगति को प्राप्त नहीं हो रहा। पर इन बातों में एक पत्नी क्या कर सकती है ?

महबूबजान के साथ जब पति के संबंध की बात उसे पता चली थी तब उसमें उसे सहन करने की शक्ति थी पर अब जो नैतिक प्रश्न उठा था वह कुछ और ही प्रकार का था। इसके अतिरिक्त पहले का अभेद्य दुर्ग-सा पति अब उसकी आंखों के सामने ढहने-सा लगा था यह देखकर उसका कलेजा मसोस उठता।

दीवारों में पड़ती दरारें देख कर जो व्यथा मन में होती है उससे भी हजार गुनी व्यथा एक लौह पुरुष को ढहते देख कर हुआ करती है। कालिदास ने भी अजराज के बुढ़ापे का वर्णन करते हुए प्लक्ष प्ररोह इव सोंधतलं विभेद (बरगद का पेड़ जैसे महल की दीवार में भी दरार डाल देता है वैसे ही इंदुमति के विरह ने अज के हृदय को इसी तरह चीर डाला था।)

इतने में ही चंपक्का की चिंताएं निबटी नहीं, एक और चिंता थी—शांता की।

शांता दिन-दिन लंबी होती जा रही थी। वह गुलाब की कली की भांति पतली और खिलती-सी दिखने लगी थी। रत्ना से वह आधा फुट लंबी हो चली थी। वह पंद्रह साल में ही इतनी सुंदर हो जायेगी किसी को ऐसा न लगा था। मां-बाप दोनों सुंदर थे। परंतु शांता के गौर वर्ण और ऊंचे कद की देहयष्टि का सौंदर्य ही कुछ और था। उसे जानने वाले अकसर कहा करते कि उससे विवाह करने वाला बड़ा सौभाग्यशाली होगा। अपनी बेटी के सौंदर्य पर काफी अभिमान होने पर भी चंपक्का को मन ही मन सभी सौंदर्य के बारे में संदेह और डर बना रहता था। वह स्वयं सुंदर थी और अपने सौंदर्य के कारण उसने काफी दुख भी देखा था। इसीलिए भूलकर भी उसने कभी शांता के सम्मुख या उसके पीछे उसके सौंदर्य की प्रशंसा नहीं की।

लड़की सुंदर होने के कारण कहीं उसे कांच के डिब्बे में बंद करके तो रखा जा नहीं सकता है? मां के लाख प्रयत्न करने पर भी कि बेटी में अपने सौंदर्य का अभिमान न आने पाये, बाहर के वातावरण के कारण उसमें थोड़ा बहुत अहंकार आ जाना स्वाभाविक ही था।

शांता ने रत्ना से दो तीन क्लास अधिक पढ़ी थी। बात अधिक पढ़ने की बात नहीं अपितु उसने किस जमाने में पढ़ाई की थी यह अधिक महत्व की थी।

रत्ना के स्कूल के दिनों में और शांता के स्कूल के दिनों में जमीन आसमान का फर्क था। दोनों में पांच वर्ष का अंतर होने पर भी सामाजिक रीतिरिवाज काफी बदल गये थे। नमक सत्याग्रह के जमाने से जब स्कूल कालेजों में हड़ताल हुई तब शांता उन आंदोलनों में भाग लिया करती। सारे स्कूल में केवल बारह लड़कियां थीं। उनमें कुछ सोलह वर्ष से ऊपर होने से लज्जावश जलूसों आदि कार्यक्रमों में भाग लेने को तैयार न होतीं, और भी कुछ लड़कियां पुराने ख्याल वाले घरों से थीं। 'यदि हमने ऐसा किया तो मां-बाप हमें स्कूल से उठा लेंगे' इस डर से भाग न लेतीं। शांता को घर में स्वतंत्रता थी। उसकी आयु भी कम थी। वह केवल बारह वर्ष की बालिका थी। इस कारण उसे उस प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने में कोई शर्म नहीं थी। उसने तथा उत्तर कर्नाटक जिले की एक और लड़की ने विद्यार्थियों के जलूसों में सबसे आगे झंडा लेकर 'झंडा उच्चा रहे हमारा' गाते हुए और नारे लगाते हुए सड़कों पर मार्च किया था। सभा में भाषण करते हुए जब

कोई यह कहता, 'हमारे इस संघर्ष में स्त्रियां भी भाग लेकर स्वतंत्रता के लिए लड़ती हैं' तो शांता यह समझकर प्रसन्न होती कि उसी की प्रशंसा हो रही है।

जमाने के मुताबिक अपनी छोटी आयु में ही स्वतंत्रता अनुभव कर लेने वाली शांता से रत्ना की भांति झुककर चलना संभव न था। शांता वर्षों से छोटी युवती सी दिखने लगी। वह लंहगा चुन्नी छोड़कर साड़ी पहनने लगी थी। इससे वह और भी सुंदर दिखती थी। अड़ोसी-पड़ोसी और सखी सहेलियां उसके सौंदर्य की प्रशंसा करते। सौभाग्य से मां की इस बारे में उपेक्षा दिखाने के कारण वह घमंडी न बनी। एक घटना ने तो उसके मन को ही बदल डाला। उसके मन में आत्म-सम्मान पैदा कर दिया और बचपन को छोड़ कर उसकी चाल को एक गंभीरता सिखा दी।

उसके स्कूल में पढ़ाने वाला एक देशभक्त तरुण अध्यापक शांता के सौंदर्य तथा उसके देशप्रेम संबंधी निबंधों से प्रभावित होकर उससे विवाह करने को उत्सुक हुआ। एक दिन बिना कुछ सोचे-समझे और किसी को भी बीच में न डाल कर स्वयं ही उसकी 'प्रोग्रेस रिपोर्ट' लेकर राघप्पा के पास पहुंचा। उसकी पढ़ाई की प्रशंसा करते हुए उसने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए राघप्पा से कहा, 'और कुछ नहीं तो कम से कम देश की भलाई को ही ध्यान में रखकर आप हमारा विवाह करा दीजिये।' यह कहते हुए उसने आंसू तक बहाये। इस पर राघप्पा ने इनकार कर दिया और यह कहकर धमकाया कि वह प्रधानाध्यापक को रिपोर्ट कर देगा तो वह लोकलाज से डरकर नौकरी से इस्तीफा देकर दूसरी जगह भाग गया। इन सब बातों में कोई बिचौलिया न होने के कारण शहर में कोई बात न फैली। लेकिन शांता के मन में कभी-कभी इस बात का अभिमान जाग उठता कि उसके कारण एक अध्यापक ने नौकरी खो दी। वह रत्ना की भांति सभी बातों में मां पर अवलंबित न थी। माता के साथ वह मित्रता का सा व्यवहार करती। इसके साथ ही साथ चंपक्का के बहुत निशक्त हो जाने के कारण शांता ही सारे घर को संभालती। इसलिए वह घर की मालकिन-सी हो गयी थी।

राघप्पा शांता का विवाह वसंत से करना चाहता है यह बात दो ही दिनों में चंपक्का भांप गयी। वह मन ही मन इस बात से प्रसन्न हुई। वसंतराव उसकी बेटी को पसंद कर लेगा इस बात में उसे कोई संदेह ही न था क्योंकि शांता का सौंदर्य

ही कुछ ऐसा था। हो सकता है वसंतराव का बाप इस पर राजी न हो पर यह उसके सोचने की बात न थी। सौ झूठ बोलकर भी उसका पति यह काम कर डालेगा। इस बात का उसे विश्वास था। एक बात उसके लिए और खुशी की थी कि वसंत संपन्न व्यक्ति था। भगवान की कृपा से यदि वह गर्भवती न हुई तो वसंत उसकी थोड़ी-सी जायदाद के लालच में किट्टी के आड़े आकर रत्ना के मुंह का कौर न छीनेगा। इस विचार से उसे थोड़ी सी तसल्ली हुई। चंपक्का ने जीवन में बहुत दुख देखे थे। इसलिए उसके मन में अनावश्यक संदेह उठा करते थे। वसंत अमीर है, जब किट्टी घर में आया तो किसी बात का डर नहीं था। परंतु राघप्पा की अनुमति से जब वसंत घर में आनेजाने लगा तो उसे कुछ घबराहट-सी हुई। वह सोचती ऐसा अमीर आदमी हमारा दामाद बन सकेगा? उस पर मैं विश्वास कर लूं!

चंपक्का का विवाह धारवाड़ में प्रथम प्रेम-विवाह के रूप में एक पीढ़ी तक प्रसिद्ध रहा। चंपक्का के बारे में लोगों की गलत धारणाएं थीं। दूसरों के बारे में शारंगराव की तरह निष्ठुर होकर बात करना लोगों की आदतें होती हैं। उसके संयमित गंभीर रहन-सहन को देखकर कुछ ओछे प्रौढ़ लोग भी कह तो देते 'नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली' पर उसके सुसंस्कृत स्वभाव ने इस सबसे सबक सीखा था। केवल क्षणिक लापरवाही से उसके कौमार्य का भंग होना, उससे समाज में हल्लागुल्ला, मां का कुएं में कूदने को तैयार होना, उसके पति का शादी से इनकार करना, अपने मन का भयंकर पश्चाताप, अंत में मां का इसी बात से घुल-घुलकर जान दे देना। इन सब बातों को भुगत चुकने वाली चंपक्का अपने बच्चों के बारे में सोचते-सोचते चकरा जाती।

29. प्रत्यक्ष और परोक्ष संघर्ष

राघप्पा और देसाईजी में प्रत्यक्ष भेंट हुए बहुत दिन हो गये थे, लेकिन वे परोक्ष में राघप्पा का अस्तित्व बार-बार अनुभव करते रहे। वसंत के धारवाड़ आने और घर पर मिले बिना लौट जाने की खबर उड़ती-उड़ती किसी के द्वारा उनकी पहचान के लोगों तक पहुंची और उनसे वेणुबाई तक पहुंची। उसने यह बात देसाईजी को बताई। देसाईजी बिना कुछ कहे गंभीर होकर बैठे रहे। वसंत को पत्र डालकर उसे वहां से बुला लेने की वेणुबाई की विनती भी उन्होंने न मानी। यह सब सह न पाने पर वह देसाईजी से एक दिन बोली :

"वह राघप्पा भी कैसा दुष्ट है ! गंगव्वा उसकी छाया तक देखना नहीं चाहती थी। आप क्यों उससे झगड़ा करते हैं। उनकी चीज उन्हें सौंप दीजिये। कहीं वह लड़के का दिमाग ही खराब न कर डालें। दो हजार रुपये की वजह से ही इतनी बातें कर रहा है ना वह ? उनकी चीज उन्हें दे दीजिये। एक बार आपकी चिंता तो मिट जायेगी।"

"राघप्पा को आकर पांव पकड़ने दो, दे दूंगा, तमाशा है क्या ? मेरा मुकाबला करेगा ? मुझसे कुश्ती करेगा ? करने दो। एक हाथ देख ही लूंगा। उस किट्टी को भेज देता है और मुझे अकल सिखाता है। एक बार आमना-सामना हो ही जाने दो। उसे खंभे से बंधवा दूंगा।"

"पहले तो उनके झगड़े से जान चुरा रहे थे। अब क्यों ऐसे इरादे हैं ? अब इन बातों में मजा आने लगा ?"

"जाने दो उन बातों को। हमारे चुप रहने पर भी वह हमें छेड़ता है तो हो जाने दो एक बार फैसला।"

"उसके साथ आप चाहें तो कीजिये पर वसंत को एक पत्र डाल कर यहां बुलवा लीजिये। नहीं तो कम से कम मुझे ही वहां भेज दीजिये। ज्यों-ज्यों आप लापरवाही करते जा रहे हैं त्यों-त्यों वह राघप्पा के जाल में फंसता जा रहा है ? अभी बच्चा ही तो है, बेचारा। मैं दो दिन वहां रहकर आती हूं...।"

देसाईजी अपने को रोक न पाये। वे क्यों चुप बैठे हैं ? यह बात अब अपनी

पत्नी को बता देना ही ठीक है सोचकर वे उठे और दो दिन पहले आया वसंत का पत्र तिजोरी से निकाल कर बोले, "तुम्हारा बेटा अभी बच्चा ही है... उसने बाप को चिट्ठी लिखी है, देखो।" यह कहकर उन्होंने पत्र पढ़कर सुनाया।

श्री

इनामग्राम, सफेदी वाला मकान

"पूज्य तीर्थ रूप श्री श्री गोपालराव देसाईजी की सेवा में। यह पत्र लिखने का कारण यह है कि मुझे बालिग हुए दो वर्ष होने पर भी आपने मुझे मेरा हिस्सा न देकर आप ही उसका उपभोग कर रहे हैं। आपके तीन लड़के हैं। उनमें मैं मंझला हूं। मुझे कायदे के मुताबिक जितना हिस्सा पितृ अर्जित संपत्ति से मिलना चाहिये उतना मेरे नाम यथाशीघ्र कर दिया जाय। यदि आप की स्वीकृति हो तो चार बुजुर्गों के सामने बंटवारा करके मैं अपना हिस्सा ले लेना चाहता हूं। बाकी मेरे बड़े भाई अच्युतराव और छोटी उम्र के भाई पुरुषोत्तम चाहें तो अपने हिस्से ले लें या आपके पास ही रहने दें। इससे मेरा कोई संबंध नहीं। इस बात का फैसला चार आदमियों के सामने हो जाना चाहिए। मुझे मेरा हिस्सा चाहिए। किसी भी कारणवश मेरे पत्र पहुंचने के तीन मास के भीतर आप यदि मेरा हिस्सा मुझे देने का बंदोबस्त नहीं करते तो आप ही इस बात के जिम्मेदार होंगे। आप को विलंब का उचित मुआवजा देना होगा। इस लिए इस काम का जल्दी हो जाना सबके हित में होगा। आपकी यदि सम्मति हो तो मैं अपने हितचिंतकों को साथ लेकर आपसे मिलने आऊंगा। आपसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप अपनी इच्छा प्रकट करने में आगापीछा न करके, तुरंत सूचित करें। अन्य बातों के लिए मुझे क्षमा करें। आप से प्रार्थना है कि यह पत्र नोटिस तो नहीं पर इसे नोटिस समझ कर पंद्रह दिन में ही उत्तर भेज दें। अपना कुशल समाचार लिखें।

इति आपका दूसरा चिरंजीव
वसंतराव (ब) देसाई

वेणुबाई को अपने पुत्र का पत्र सुनकर बहुत असंतोष हुआ। यह सोचकर कि उसके पति को इस कारण कितना घुलना पड़ता है, उसकी आंखों में आंसू आ गये।

"मैंने कितना समझाया बेटा ऐसा न कर, बुरी आदतें न सीख... बुरे लोगों की संगत में न जा, पिता देवता स्वरूप हैं, तो भी यह नौबत आ गयी।... पत्थर को अक्ल सिखाने जैसी बात हो गयी। वह पिछले जन्म का बैरी है, बेटा बनकर पैदा हो गया। इस लड़के से आपको सुख नहीं मिल सकता।"

"मेरा क्या कर लेगा। अपने आप भुगतेगा। इस पत्र लिखने के लिए किसने उकसाया है, मैं समझता नहीं क्या ? ... उस गुरु का टेंटुआ दबाऊंगा। इस बार किट्टी-विट्टी सभी ठीक रास्ते पर आ जाएंगे।"

देसाईजी ने तुरंत निश्चय करके यह पत्र लिखा।

क्षेत्र श्री धारवाड़

चिरंजीवी वसंतराव को आशीर्वाद। तुम्हारा पत्र मिला। हम सब कुशल हैं। तुम मेरे बेटे हो। यह बात मैं नहीं भूल सकता। तुम अपने हितचिंतक के साथ आना।

इति आशीर्वाद। गोपालराव

यह पत्र पाकर वसंतराव को डर लगा, क्योंकि उसमें मुख्य विषय का उल्लेख ही न था। उसने अपने पिता को जो पत्र लिखा वह अप्पण्णा भट्ट से लिखा कर उसकी नकल करके भेजा था। उसे आशा न थी कि पिताजी से इतनी जल्दी पत्र का उत्तर आ जायेगा। अब अप्पण्णा भट्ट को बुलवाना होगा। अब तक का काम स्वयं उसने अपनी बुद्धि के अनुसार कर लिया परंतु अब आगे राघप्पा से सलाह करनी पड़ेगी। मन में यह निश्चय करके उसने अपने पत्र की नकल और पिता का पत्र दोनों संभालकर कोट की जेब में रखे और राघप्पा से मिलने चल पड़ा।

राघप्पा को यह कल्पना भी न थी कि उसका बोया बीज इतनी जल्दी प्रतिफलित हो जायेगा। देसाईजी से वह खुल्लम-खुल्ला बैर मोल लेना नहीं चाहता था। वह छिप कर चोट करने की ताक में था। तो भी किसी प्रकार कार्याभाव व्यक्त किये बिना उसने दोनों पत्र पढ़े। उसने अप्पण्णा भट्ट के द्वारा लिखे पत्र की प्रशंसा करते हुए कहा, "ब्राह्मण होशियार है। लेख में संयम है।" उसने देसाईजी के उत्तर को फिर से ध्यान से पढ़ा। राघप्पा ने उसमें एक बारीकी की बात भी देखी जो वसंत की समझ से बाहर थी। वसंत ने पत्र में 'मैं अपने

हितचिंतकों को लेकर मिलने आऊंगा' बहुवचन में लिखा था पर देसाईजी ने अपने हितचिंतक को एकवचन का इस्तेमाल किया था। राघप्पा ने उसका भाव समझ लिया। देसाईजी से प्रत्यक्ष रूप में उलझने की उसकी एकदम इच्छा न थी। वह बोला। "लेकिन वसंतराव तुम्हारे पिता के पत्र से ऐसा मालूम नहीं होता कि वे इतनी आसानी से मान जायेंगे।"

"क्यों ? आने को तो लिखा है ?"

"तुम्हें इतनी जल्दी बुला रहे हैं। इससे ऐसा लगता है कि तुम्हारी बात का उन पर कोई असर नहीं हुआ है। तुम्हारे पिता इतने ढील देने वाले आदमी नहीं हैं। मैं उन्हें जानता हूं।"

"पर जब बुलाया है तो उनकी बात को समझने में क्या नुकसान है ?"

"हां समझकर जाइये, जरूर हो आइये।"

"आपको भी साथ चलना चाहिए।" वसंतराव को संदेह होने लगा कि राघप्पा अब बचना चाहता है।

"बाप-बेटे की बात में हम लोगों का आना ठीक नहीं।"

यह सुनकर वसंत का मुंह उतर गया। उसे देखकर राघप्पा ने दिलासा देते हुए कहा। "वसंतराव मैंने आपका साथ नहीं छोड़ा... आप ऐसा मत समझिये। मैं सदा आपके पीछे हूं... क्योंकि एक बार नाटक कंपनी खोलने का निश्चय हो जाने के बाद मैं आपको सहायता देने को वचनबद्ध हूं, वायदा करता हूं।... लेकिन मेरे आने से आपको फायदा नहीं होगा। मैं तो आखिरी हथियार हूं। पहले आप अपने छोटे-मोटे हथियार उपयोग में ले आइये। पहले आप इस चिट्ठी को लिख कर देने वाले भट्ट को साथ ले जाइये। वह होशियार दिखता है। अपने पिता जी के अभिप्राय को सुन लीजिये। अगर वे गुस्सा हों तो आप गुस्सा न कीजियेगा। वे आपको फुसलाना चाहें तो आप कड़े पड़ जाइयेगा। आपके पिता खोखले व्यक्तित्व के आदमी नहीं हैं। पहले आपको लालच देंगे, चिकनी चुपड़ी बातें करेंगे, डरायेंगे। ऐसी सब तरकीबें करेंगे। उस परीक्षा को पार करके अपनी बात पर अड़े रहकर बाद में मुझे बुलाइये। ऐसे ढंग से फैसला कराऊंगा जिससे आपको कोई नुकसान न होगा। चाहे जैसा भी वकील क्यों न आ जाय, आपको धोखा नहीं होने दूंगा। लेकिन पहले आप यह पता लगाइये कि आपके पिताजी

का रुख क्या है ? मुझे उसका कुछ थोड़ा सा आभास तो होने दीजिये। आगे जो कुछ करना होगा सो करेंगे क्योंकि काम शुरू करने पर दो टूक हो जाना ही ठीक हैं, समझे आप।"

इससे वसंत को पर्याप्त साहस तो न मिला पर थोड़ा उत्साह जरूर बढ़ा। राघप्पा की सलाह ठीक जंची। काम में अलग-अलग स्तर होते हैं, और उस स्तर के अनुसार ही व्यक्तियों का उपयोग करना ही ठीक होता है। फिर भी उसे अपने में साहस की कमी के कारण एक संदेह था। उसने पूछा, "अप्पण्णा भट्ट चालाक तो है, पर बड़ा डरपोक भी है। धमकाने पर डर जाता है। यदि अब आने से इनकार कर दे तो ?"

"दस रुपये उसके आगे फेंक दो आयेगा क्यों नहीं। नाटक का आदमी है। दौड़ता हुआ आयेगा।"

वसंतराव को अब यह समझ में न आया कि राघप्पा बचने के लिए कह रहा है या सचमुच। वसंत ने उससे इस बात का वादा लिया कि यदि अप्पण्णा भट्ट साथ न चला तो वह साथ चला चलेगा। बाद में अप्पण्णा को खोजने भोजन की भी प्रतीक्षा न करके गांव को चल पड़ा।

अप्पण्णा भट्ट वेदांती था। उसने बचपन में वेदपाठ सीखने का प्रयास किया था। अब वही उसकी जीविका का साधन बन गया था। वह कविता भी करता था। हे मानव ममता को त्याग। उसका लिखा गीत गांवों में बहुत लोकप्रिय हुआ था। कीर्तन में भी उसने यह भजन 'अहंकार को जैसे महायोगी छोड़ देता है वैसे ही राम ने सीता को छोड़ दिया' गाकर खूब वाह-वाही लूटी थी। देसाइजी के सामने जाने की बात सुनकर उसके हाथ-पांव सुन्न से पड़ गये। इस वेदांती को बड़ा देसाई का नाम सुनते ही उनसे भगवान से भी अधिक डर लगा। दस रुपये दक्षिणा के लालच में 'स्वधर्मपि चावेक्ष्य न विकपितुमर्हसि' कहकर मन में धैर्य धारण किया चार साल पहले नाटक सिखाने के लिए सफेदी वाले मकान में जब गया था तब उसे पंद्रह रुपये बेटे से मिले थे और सिखाना छोड़ देने के लिए पिता से भी पंद्रह रुपये मिले थे। इस प्रकार आठ ही दिन में आधी बोरी ज्वार और तीस रुपये मिले थे। उसे उन दिनों का बढ़िया खाना भी याद आया। इसलिए लालच में आकर

फिर से वसंत के साथ जाने को तैयार हो गया ।

इस प्रकार वसंत तथा उसका हितैषी धारवाड़ पहुंचे । होटल में जाकर पेड़ा, हलवा, सूजी के लड्डू आदि पकवान सेवन से भट्ट का डर कुछ दूर हुआ । वसंत-राव के काम करने के लिए अंतःप्रेरणा मिली । राघप्पा से भेंट के बाद थोड़ा साहस भी बंधा । वहां से उन्होंने देसाईजी के घर जाने के लिए तांगा पकड़ा । आधे रास्ते से ही भट्ट ने तांगा लौटा कर उडपी होटल में नयी शादी वाले वर की भांति मेवे वाला दूध पिया । उसके साथ वसंत ने भी लेमन की बोतल पीते हुए, 'भट्ट जी काम ठीक से कर दो तो तुम्हारा घोड़े पर बिठा कर जलूस निकालूंगा ।' कहकर अंतिम आश्वासन दिया । खैर पुनः तांगा लेकर देसाईजी के घर के सामने पहुंच गया ।

घर का फाटक बंद था । बाहर कोई नौकर-चाकर भी दिखायी न दिया । वसंत को समझ में न आया कि पिताजी को पुकारे । वह देसाईजी के सोने का समय था । यह आया था हिस्सा मांगने लेकिन उनकी नींद खराब करना कठिन कार्य था । वसंत ने फुसफुसा कर बात की फिर पिछवाड़े से जाकर मां से मिलने को मन हो आया । इस पर अप्पण्णा भट्ट बोला, "राव साहब ऐसे करेंगे तो काम बिगड़ जायेगा । आने की गरमी में ही दो बातें कर लें तो रुपये में दो आने भर काम तो कम-से-कम हो ही जायेगा, ऐसी उम्मीद है । पर अगर आप मां से बात करने बैठे, बहिन से सलाह करने लगे और दादी से प्यार करने बैठे तो हो लिया काम ।" वसंत ने और कोई रास्ता न देखकर जोर से दरवाजा खटखटाया ।

खटखटाने की आवाज सुनकर भरमा इसलिए दौड़ा आया कि देसाईजी की नींद न खराब हो, परंतु उसके दरवाजा खोलने तक देसाईजी जाग गये । वे आंखें मलते हुए आंगन में आये । उन्होंने घबराहट में अपनी जबान को दांतों में दबा कर खड़े पुत्र और उसके पीछे बांहों पर आड़ा चंदन लगाये घुटनों तक की धोती पहने झूठी विनय की हंसी से विभूषित खड़े अप्पण्णा भट्ट को देखा । वसंत भीतर जाय या नहीं, इस संकोच से दहलीज पर कांपता हुआ खड़ा था । देसाईजी उनको भीतर न बुलाकर स्वयं दरवाजे पर आये । उन्होने एक दृष्टि वसंत पर डाली और मुंह फेर कर अप्पण्णा को घूरने लगे । इससे अप्पण्णा भट्ट को अपना परिचय देने का अवसर मिल गया ।

"राव साहब क्यों आपने मुझे पहचाना नहीं ? ... मैं अप्पण्ण भट्ट हूं । मैं पहाड़ी ब्राह्मण हूं । पहले भी आपकी चिरंजीव को नाटक सिखाने सफेदी वाले मकान में आया था। आपने इनाम देकर भेजा था।"

देसाईजी निर्विकार भाव से सब सुनते रहे फिर भरमा की ओर देखकर बोले, "ऐ उन्हें एक मुट्ठी भर ज्वार देकर विदा कर।"

"नहीं-नहीं राव साहब मैं भिक्षा के लिए नहीं आया। ..."

"समझ गया । समझ गया आप वसंत के हितैषी हैं ? वसंत अपने असली हितैषी को बुलाकर ला ... इस वैदिक ब्राह्मण को क्यों ले आया है ?"

देसाइजी की एक-एक बात को देख कर वसंत के हाथ पैर ही शून्य हो गये थे । अब भी उसके मुंह से बात नहीं निकल पा रही थी । भले ही घोड़े पर जलूस न निकले कम-से-कम दस रुपये तो कमा ही लू यह सोचकर साहस करके अप्पण्ण भट्ट ने एक डग आगे भर कर बोला,––

"राव साहब आपने अपने चिरंजीव को हिस्सा ले जाने के लिए पत्र लिखा था ... एकदम अपने बेटे पर इतना गुस्सा क्यों महाराज ? बाप-बेटे में बंटवारा क्या यह पहली बार हो रहा है ? आपको तनिक शांत करने के लिए बसंतराव इस गरीब ब्राह्मण को साथ लाये हैं। आप से कुछ मिले या न मिले यह खास बात नहीं है । परंतु यह गृह कलह यहीं समाप्त हो जाय । यह हम जैसे आश्रित जनों की ... अप्पण्णा भट्ट का नाटकीय भाषण और आगे बढ़ता पर सब चुपचाप देखता हुआ चकित खड़े भरमा की ओर देसाईजी गुस्से से देखकर चिल्लाये । क्या बहरा हो गया है ? इस ब्राह्मण को एक मुट्ठी ज्वार देकर कंपाउंड से बाहर निकालो ।

डर कर भरमा ज्वार लाने की तेजी से भीतर की ओर भागा । अब वसंत की जबान खुली "अप्पण्ण भट्ट को मैं ही साथ लाया हूं ।"

देसाईजी, "जिस किसी को साथ ले आने के लिए क्या यह धरमशाला है ? लाना ही है तो अपने हितैषी राघप्पा को साथ ले आ ।" इतना कहने के बाद गुस्से से कांपते हुए उन्होंने "हिस्सा चाहिए तुझे हिस्सा ले," कहते हुए उन्हीं की ओर ताकते हुए वसंत की गाल पर जोर से एक थप्पड़ जड़ दिया । उस थप्पड़ की चोट वसंत को ऐसे लगी मानो किसी भूत की चपेट पड़ी हो । वह अवाक होकर जमीन पर धप से बैठ गया ।

इस रंग-ढंग को देख कर अप्पण्ण भट्ट तब तक गेट का आधा रास्ता तय कर चुका था। गौड़ साहब के आज्ञाकारी भरमा ने जिसने कभी डांट न खाई थी। तेजी से उसका पीछा किया और उसे रोक कर बड़ी-सी मुट्ठी भर ज्वार उसकी धोती के पल्ले डाल कर गांठ लगा दी और उसे गेट तक पहुंचा दिया।

इस सब शोरशराबे के कारण वेणुबाई बाहर आ गयी। उसने सीढ़ी पर गठरी से पड़े पुत्र के शरीर को सहला कर उठाने का प्रयास किया। वह उठने को तैयार न हुआ। उसने बायें गाल पर रखे उसके हाथ को खींचकर हटाया, उस पर देसाईजी की पहली तीनों उंगलियां साफ उभर आयी थीं। छिगुनी उंगली मात्र का निशान थोड़ा कम उभरा था। देसाईजी की तीसरी उंगली में पहनी अष्टकोण अंगूठी भी साफ छप गयी थी। सहम कर बैठा हुआ बसंत मां को देख कर सिसक-सिसक कर रोने लगा। भरमा की सहायता से वेणक्का ने उसे भीतर ले जाकर अपने बिस्तर पर लिटाया और उसी की सलाह से तिल का तेल उसकी गाल पर मला। पानी गर्म किया, वह कुछ बोल नहीं पा रहा था। आंखों से अविरल आंसू बह रहे थे।

उसकी प्रतिध्वनि के रूप में वसंत पहले सिसकता रहा बाद में संकोच छोड़ कर फूट-फूटकर राग से रो पड़ा।

उद्धत वसंत चुपचाप मार खा कर इस प्रकार क्यों रोया। पाठकों को यह बात मुझ से पूछने का कोई कारण नहीं है। गलत रास्ते चलने वाले उद्धत युवक उसमें भी अमीर विचार शून्य लोग शारीरिक पीड़ा से कितना डरते हैं, यह ऐसी चीज नहीं जो अनुभवियों को पता न हो।

मां की गोद में सिर रखकर दो-तीन घंटे सेवासुश्रुषा पाने के बाद वसंतराव का डर थोड़ा कम हुआ। कंपकंपी जाती रही। गाल में अब भी दर्द था। थप्पड़ से उसके कान बंद से हो गये थे, मानसिक चोट में थोड़ी कमी अवश्य आयी। इतने में भरमा ने वसंत का ऊपर वाला कमरा ठीकठाक कर दिया था। मां के उपदेश पर वसंत ने अपने कमरे में जाने से पूर्व देसाईजी के कमरे में जाकर उनके पांव छूकर माफी मांगी और 'मेरी गलती हुई' कहा। वे 'मुझे तुम पर

विश्वास नहीं यदि गलती हो गयी है तो आचरण ठीक करके दिखाओ।' कहकर चुप हो गये।

इस विषय पर फिर चर्चा नहीं हुई। वसंत को केवल इस बात का संतोष था कि उसके इतना कुछ करने पर भी पिता ने उसे बिना कुछ कहे स्वीकार कर लिया। पिता ने दुबारा राघप्पा का नाम तक नहीं लिया। वसंत ने भी फिर से गांव जाने की बात नहीं उठायी। फिर से सुख के दिन लौट आये। सुख के लिए कीमत चुकानी पड़ती है यह बात वसंत के मन से जल्दी ही मिट गयी। उसने अपना बचपन अभी पार नहीं किया था। आगे पचास वर्ष तक पार करने की संभावना भी न थी। उस समय की मार के कारण राघप्पा के घर में पांव रखना छोड़ दिया।

30. राघप्पा की विजय

देसाईजी के घर से मुट्ठी भर ज्वार प्राप्त करके वहां से बच कर जब अप्पण्ण भट्ट निकला तो उसने अपने को यह कहकर तसल्ली दी, 'भगवान की यही कृपा काफी है कि उन्होंने हमें जिंदा तो छोड़ दिया।' उसे यह समझ में न आया कि आगे क्या करे? वह वसंत के सहारे धारवाड़ आया था इसलिए वह अपने पास एक पाई भी न लाया था। इधर वसंत ने उसे मझधार में छोड़ दिया। साथ ही उसे राघप्पा के घर का पता भी याद न था। उसका उपनाम भी याद न था। केवल इतना ही याद था कि उसके घर के सामने एक अंजीर का पेड़ था। वह राघप्पा का उपनाम तक भूल गया था। उसके सौभाग्य से सुबह उसे देसाईजी के घर पहुंचाने वाला तांगा उसे सामने से आता दिखायी दिया। अप्पण्ण यही उद्धार का समय मानकर जान की परवाह किये बिना सीधा तांगे के सामने खड़ा होकर चिल्लाया। तांगा रुका। तांगे वाले से राघप्पा के घर जाने का

रास्ता पूछकर चक्कर काटता हुआ मुश्किल से आखिर में उसी अंजीर के पेड़ के पास पहुंच कर राघप्पा का घर ढूंढ निकाला। वहां दो कौर खाये और देसाई जी के घर घटित हुई घटना को आद्योपांत सुनाया। गाड़ी और दूसरे खर्चों के लिए राघप्पा से छह आने मांग कर भगवान का नाम लेते-लेते गांव की बस पकड़ी।

राघप्पा ने पंद्रह दिन वसंत के आने की प्रतीक्षा की पर वसंत का कहीं नामोनिशान न मिला। हाटबाजार को आने वाले गांव वालों ने बताया कि वसंत सफेदी वाले मकान में नहीं लौटा। राघप्पा सोचने लगा वसंत कहां जा सकता है? धारवाड़ में बाप के साथ रहकर मुझ से शर्म से या डर से आंखें चुरा रहा है क्या? नाटक गया भाड़ में। अगर ऐसे ढील छोड़ दी तो वसंत अपने बाप के ही वश में हो जायेगा और मेरी बेटी का उसके साथ विवाह केवल स्वप्न ही रह जायेगा। भूले भटके भी राह में नहीं मिलता। वाह रे बाप का दर्प।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते राघप्पा की आतुरता बढ़ती गयी। उसने सोचा 'वसंत बाहर न मिले तो स्वयं उसे देसाई के घर पर धावा बोलना पड़ेगा। कैसे भी उससे एक बार मिलना ही होगा। आगे क्या करना है? यह वहीं सूझेगा। 'वह देसाईजी के घर जाने का बहाना ढूंढ ही रहा कि एक बढ़िया सा अवसर अपने आप आ जुटा।

एक दिन चंपक्का ने सब खायापिया उल्टी कर दिया।

राघप्पा एकदम उछल पड़ा। उसने पूछा, "कितने दिन हो गये उल्टियां शुरू हुए?" चंपक्का आंखों में आंसू भर बोली, "तीन महीने हो गये।"

उसी दिन दोपहर को राघप्पा तांगा करके उसे सिविल अस्पताल ले गया। वहां लेडी डाक्टर को दिखा उनसे परामर्श किया। पता चला करीब तीन महीने चढ़ गये हैं।

राघप्पा ने मन ही मन नारा लगाया 'राघोबा भरारी की जय।'

यह खबर देसाईजी तक पहुंचाये बिना राघप्पा को कैसे शांति मिलती? ... दूसरे ही दिन उसने देसाईजी के घर धावा बोला।

देसाईजी समझ न पाये कि राघप्पा क्यों आया है। उन्होंने यह सोचकर कि यदि राघप्पा ने उनके बेटे की बात उठाई तो वे भी उसे हाथ दिखा ही देंगे। उन्होंने

उसे अपने कमरे में आदर से ले जाकर अपने प्रिय नरम गद्दे पर बिठाकर पान सुपारी तंबाकू आदि देकर उसका कुशल समाचार पूछा। इसके बाद उसकी बात सुनने को तैयार हुए। राघप्पा ने बड़ी विनय और भक्ति के साथ तकिये का हल्का सा सहारा लेकर देसाईजी की ओर मुंह घुमाकर बात इस प्रकार शुरू की मानो कान में कहना चाहता हो, वह बोला—

"रायसाहब आप जैसे लोगों की कृपा से सब कुशल है मगर फिर भी दुर्भाग्य देखिये। मुझे इस चिंता के कारण दिन-रात नींद नहीं आती है कि मैं आपके सामने झूठा न पड़ जाऊं, क्योंकि आदमी की कीमत उसकी जबान है। एक बार जबान देने के बाद झूठी नहीं होनी चाहिए। यही सनातन धर्म है।... भगवान ही यदि दिये वचन को झूठा करने पर उतर आये तो आदमी क्या करे ? ...तभी असली धर्म संकट पैदा हो जाता है। मैं भगवान से सदा हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि मेरा वचन झूठा न हो... लेकिन भगवान ही कमर कस ले तो...।"

देसाईजी उसकी बातें मुस्कराते हुए चुपचाप सुन रहे थे। उन्हें मुस्कराते हुए देखकर राघप्पा के तन में आग लग गयी। वह मन-ही-मन बोला, अरे देसाई मेरी बात पर हंस रहे हो। फिर अपनी बात की प्रस्तावना को वहीं रोककर थूक निगलते हुए बात आगे बढ़ायी।

"भगवान की लीला तो देखिये देसाईजी। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था इस ढलती हुई आयु में संतान-प्राप्ति का योग है। यह बात अगर कोई होशियार ज्योतिषी भी बताता तो मैं हंस देता पर क्या इसी को सच होना था ?..."

देसाईजी की हंसी रुकती देखकर राघप्पा ने मन-ही-मन कहा, 'अब आये रास्ते पर देसाई।' देसाई जी कुछ न बोले। राघप्पा ने एक परचा दिखाते हुए कहा "देखिये अभी लेडी डाक्टर को दिखाकर आ रहा हूं।" देसाईजी ने उस ओर विशेष ध्यान न दिया।

"देसाईजी आप विश्वास करें या न करें, पर भगवान से मेरी यही प्रार्थना है, हे भगवान मुझे लड़का न देना! आप पूछेंगे क्यों ? क्या हमारा किट्टी मेरे लिये पराया है ? एक तरफ भांजा है दूसरी तरफ दामाद। जब से उस लड़के को देखा है तब से उसे मैं एक ही भाव से अपने बेटे की तरह मानता चला आ रहा हूं। मेरे पास जो कुछ है... वह वह चाहे थोड़ा हो या बहुत चाहे एक राज्य क्यों न हो उसी

के हाथों में सौंप कर आंखें बंद कर लेने का विश्वास लेकर एक सरल रास्ते पर चल रहा हूं। वह परमात्मा दयालु है। मेरा विश्वास है वह मेरे सरल मार्ग में रोड़ा नहीं अटकायेगा। देखिये देसाईजी भगवान कैसा खेल खेलेगा यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता ? ... आखिर मैं यह सब क्यों कह रहा हूं इसलिए कि कल को लोग भले मुझे 'झूठा' कहें पर आप जैसे बुजुर्गों को सही हकीकत पता होनी चाहिये वही हमारा कवच है।"

देसाईजी फिर मुस्कराते हुए बोले, "आपके यहां अगर लड़का पैदा हुआ तो मैं पेड़े बांटूंगा राघप्पा जी। आप इस दत्तक के झंझट को छोड़िये, अगर आपकी संपत्ति कृष्ण के भाग्य में भगवान ने लिखी है तो कोई कुछ भी करे, छीन नहीं सकता। अगर उसके भाग्य में नहीं है तो भले ही वह हजार कोशिशें क्यों न करे, नहीं मिल सकती। इसलिए ऐसी बातों पर आप जैसे समझदार लोग मुझे लड़के की जरूरत नहीं दत्तक ही लूंगा कहें तो भगवान को स्वीकार नहीं होगा। दुनिया की रीति के अनुसार आपको चाहिये कि भगवान से यही प्रार्थना करे कि हे भगवान मुझे पुत्र देकर वंश का उद्धार करो। भगवान की क्या इच्छा है इसे कौन जानता है।"

राघप्पा ने मन में यह कहकर 'हां' भैया तुम बड़े होशियार हो। फिर अपनी राम कहानी आगे बढ़ाई :

"राय साहब लड़की हो या लड़का यह तो किसी के बस की बात नहीं है। यह सच है कि आपके कहने के अनुसार दुनिया की रीत को सामने रख कर मुझे भगवान से लड़का मांगना ही श्रेयष्कर है। लेकिन उससे मेरे भाग्य में सुख नहीं... मेरी पत्नी बड़ी कमजोर है। मुझे इस बात की चिंता है कि वह पता नहीं क्या कर डाले।"

"कुछ भी नहीं होगा जी ! आप डर छोड़िये भगवान पर विश्वास रखिये। सब ठीक हो जायेगा।"

राघप्पा को लगा कि देसाईजी बिना किसी प्रकार का विरोध दिखाये उसी की बात पर सहमति देकर उसके चंगुल से साफ निकल गये। देसाईजी के क्रुद्ध न दिखने से उसे मन में बड़ा क्रोध आया मन-ही-मन वह बोला "अरे पहले जैसी शक्ति होती तो किसी-न-किसी रास्ते से उसे गुस्से में ले आता। उसने जो-जो

बातें सोचीं वे सब हारती चली गयी।" बिना उत्साह के कवितालिखने की चेष्टा करने वाले कवि की भांति राघप्पा थकान से भर गया। एक गिलास और पानी पीकर वह चलने को तैयार हुआ कि इतने में अमरुद के पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ता हुआ वसंतराव खिड़की में से दिखायी दिया।

इस बात की आशा न थी कि सामाजिक व्यवहार के अनुकूल इसके वसंत में आसक्ति दिखाने पर देसाईजी उसे वहां बुलाकर यह हमारा चिरंजीव है कह कर परिचय करा ले। इसके अतिरिक्त इस हरामखोर देसाई की उसकी चिकनी चुपड़ी बातों पर पानी फेरने की संभावना थी। यह सोचकर बिना आगा-पीछा सोचे राघप्पा ने अपने बैठने के स्थान से आवाज़ लगायी 'ऐ वसंतराव। ऐ वसंत राव।' वसंत यह न समझ पाकर कि कौन उसे पुकार रहा है पेड़ से उतरने लगा।

आपका हमारे वसंत से परिचय है कहां हुआ कैसे हुआ 'आदि' प्रश्न देसाई जी पूछेंगे यह सोचकर उसके मुंह में पानी भर आया था। अगर उन्होंने यह सब पूछा तो वह वसंत की नाटक में राजा का अभिनय करने की इच्छा करना, पर्दा आदि के बारे में बातचीत, सुंदर सारी के घर जाकर गाना सुनना वह सब बातें नमक-मिर्च लगाकर उन्हें बतायेगा और उनका सिर नीचा कर देगा। लेकिन देसाईजी ने कुछ भी न पूछा। वे चुपचाप ऐसे बैठे रहे मानो कुछ हुआ ही न हो और वे सब बातें पुरानी हों।

वसंतराव कमरे में आते ही राघप्पा को देखकर मुंह लटका कर खड़ा हो गया। उसे अधिक अवकाश न देकर राघप्पा आगे बढ़ कर फटाफट बोलने लगा। "अरे वसंतराव क्या हमें भूल गये। गांव में पशुओं के मेले में एक जोड़ी बैल दिखाये थे तब आप ने धारवाड़ आने पर मिलूंगा कहा था कितने दिन हो गये। यही लेन बाजार में हमारा घर है एक बार आइये तो, अपना वादा भूलियेगा नहीं। क्यों... तुम्हारे पिताजी मना करते हैं क्या ? मैंने उन्हें सब कुछ बताया है आपके बेटे की चरणधूलि एक दिन हमारे घर पड़ने दीजिये। कल हमारे घर आइये।" इतना कहकर देसाईजी की ओर देख कर जोर से हंसते हुए अच्छा अब मैं चलता हूं कह कर उठा। देसाईजी चुप थे। उसके चले जाने के बाद भी उन्होंने वसंत से कुछ न कहा।

घर की ओर बिना मतलब तेजी से जाते हुए उसे अपनी वाचलता पर बड़ी शर्म आयी। 'अरे मैं राघोबा भरारी हूं। ऐसा ओछा झूठ बोलना मैंने कब से सीख लिया। यहां झूठ बोलने की क्या बात थी। सिर्फ घर आने को ही कहा होता तो क्या न चलता। ऐसा बकवास झूठ बोलने की क्या जरूरत थी?'

राघप्पा कदम-कदम पर यह अनुभव कर रहा था कि अब उसके दिन बदलते जा रहे हैं। देसाईजी जैसे व्यक्ति के साथ लड़के के लिए और ही प्रकार के झूठ का सहारा लेना चाहिये था। ऐसे हल्के झूठ बोलने पर राघप्पा को अपने पर क्रोध आया। वहां उसके मुंह अय्यो[1] निकल गयी।

31. औषधी

दूसरे दिन दोपहर के भोजन के बाद एक घंटा नींद का बहाना करके वसंतराव ने अपने कमरे में इस्त्री किये हुए कपड़े पहने। तीन बजे के लगभग सजधज कर वह यह सोचकर कि पिताजी सोये हुए हैं आंगन का दरवाजा खोलने की ताक में था कि देसाईजी सीधे उसी की तरफ चले आये। वह अभी तक पिता के हाथ की ताकत को उस मार के बाद भूला नहीं था। उनके प्रति उसका आदर और अधिक हो गया था। उनको देखते ही वह थर-थर कांपने लगा। पास आकर देसाईजी ने सीधा पूछा "राघप्पा के घर जा रहे हो?"

घबराहट के मारे उसके मुंह से 'हां या नां' कुछ भी नहीं निकला। एक झूठा बहाना गढ़ने का भी साहस उसमें न था। और घबराहट का अवकाश न देकर देसाईजी बोले, "अगर तुम जा रहे तो यह चिट्ठी राघप्पा को दे देना। तुम्हें कहीं और जाना हो तो भरमा को भेजे देता हूं।"

पूज्य पिता जी की सेवा करने का अवसर पाकर खुशी से झूठ का सहारा लेते

---

1. यहां यह शब्द निराशा सूचक है।

हुए वसंत बोला, "उसी रास्ते से जा रहा हूं लौटते हुए देता आऊंगा।"

देसाईजी ने और अधिक पूछताछ न करके तह किया हुआ एक कागज उसके हाथ में पकड़ा दिया उस पर लिफाफा तक न था। उन्होंने इतना कहा, "कह देना पिताजी ने दिया है।"

वसंत को लगा जैसे इस पत्र से उसे राघप्पा के घर बेरोक टोक जाने का सरकारी फरमान मिल गया हो। रास्ते में यह जानने के लिए कि उसमें उसके बारे में कुछ लिखा तो नहीं उसने पेड़ के तले खड़े होकर वह पत्र पढ़ा। उसमें उसका नाम तक न था।

वह पत्र अच्युत द्वारा बंबई से भेजी गयी वेंकटराय के दानपत्र की प्रतिलिपि था। देसाईजी सुबह से उसकी नकल तैयार करके वसंत के जाने की राह देख रहे थे। उनकी योजना थी कि उसे वसंत के द्वारा ही राघप्पा के पास भेजा जाय। इसीलिए वह जब गुसलखाने में मुंह धोने आया तो वे जाग उठे और जब वह चोरों की तरह निकलने की फिराक में था तो उन्होंने उसे वह पत्र पकड़ा दिया।

उसमें उनका उद्देश्य राघप्पा पर एक नकली गोली दाग कर देखने का था।

वसंतराव उत्सुकता से सीधा राघाप्पा के घर गया। राघप्पा ने हंसकर उसका स्वागत किया। उसके आते ही बढ़िया काजू का उपीट्टु तैयार करने की आज्ञा रसोई में भेजी। राघप्पा ने उसे गद्दे पर बैठने को कहते हुए हल्का-सा मजाक किया। इसीलिए तो कहा जाता है बाप और बेटे में रिश्ता होता है। तुम्हें हिस्सा दिलाने के चक्कर में हम भी बदनाम हुए। आप लोग तो एक हो गये। हमें मक्खन में से बाल की तरह बाहर निकाल कर फेंक दिया। फिर इधर-उधर की बातें होने लगी। राघप्पा ने उसके थप्पड़ खाने की बात छोड़कर शेष सभी बातें की। अंत में नाटक की बात चली। नाटक में किस-किस कंपनी वालों ने कितना-कितना कमाया और कैसे उजड़े आदि बातें मजा ले लेकर वर्णन करते हुए कहा। "वैसे तुम्हारी कंपनी तो जन्म लेने से पहले ही मर गयी। कहो!"

वसंत मर्माहत होकर बोला, "राघप्पा जी कुछ भी हो जाय आज नहीं तो कल मैं एक कंपनी अवश्य खोलूंगा।"

"अच्छी बात है भैया जरूर खोलो पर तुम्हारी कंपनी खुलने तक हमारे

जसे गिद्ध इस दुनिया से चले जाएंगे।... जाने दो तब तक तुम्हें कोई न कोई और गुरु मिल ही जाएंगे। आजकल गुरुओं की क्या कमी है।"

"आपसे क्या कहूं राघप्पा जी... उस दिन काम बिगाड़ने वाले आप ही हैं। आप अब मेरा मजाक उड़ा रहे हैं। उस दिन अप्पण्ण भट्ट के बदले आप चलते...?"

"चलता तो मुझे भी एक मुट्ठी भर ज्वार का फायदा होता...।"

"आपकी हमारे पिताजी बड़ी इज्जत करते हैं। कल आपको नरम गद्दे पर बिठाया था ना उस पर वे किसी को भी नहीं बिठाते हैं? बहुत बड़े या बहुत नजदीकी लोगों को ही बिठाते हैं।"

"तुम्हारे पिताजी सब बातें मान सकते हैं पर मुझे ऐसा लगता है कि हिस्सा देने को नहीं मानेंगे। एक बात और है वसंत उसके लिए भी भूख की जरूरत होती है। भूख के बिना कोई काम नहीं होता। तुम अभी छोटे हो, तुम्हारी यह बात अभी मन से नहीं आयी। कल दो एक बच्चे हो जाने के बाद तब उस कष्ट का पता चलेगा कि बाप की छाया में क्या मजा आता है। तब सही ढंग से हिस्सा मांग पाओगे। सही संकट में मांगने पर ही हिस्सा मिल सकता है। बेकार कंपनी खोलने के लिये झूठे जोश में आकर अगर मांगोगे तो कैसे मिल सकता है।"

वसंतराव ने अपने में झांक कर देखा कि हिस्सा लेने की सचमुच तड़प है भी या नहीं। राघप्पा का कहना सच लगा, परंतु बाप का थप्पड़ अभी भूला नहीं था। इसलिए वसंत को उस बात को आगे बढ़ाने की इच्छा नहीं हुई। उसने बात बदल दी। इधर-उधर की गप्पें हांकी गयीं। उप्पिट्टु और चाय के बाद वसंत चलने को तैयार हुआ। इतने में पिता की दी हुई चिट्ठी की याद आयी। उसने उसे राघप्पा को देते हुए कहा "पिताजी ने दी है।"

"तुम्हारे पिताजी ने मुझे चिट्ठी भेजी है, मुझे। वह क्यों भैया।" कहते हुए उसने उस पत्र को खोलकर देखा 'अरे' कहकर उसने उसे आंख फाड़-फाड़कर मन लगा कर पढ़ा।

'ओह तो यह देसाई मेरे काबू में नहीं आयेगा।' यह बात मन ही मन कहते हुए उसने वसंत को विदा दी।

आगे भी वसंतराव राघप्पा के घर कई बार जाता रहा। प्रत्येक बार उसे अच्छी तरह खिलाया पिलाया जाता था। उसे कुछ अजीब-सा महसूस होने लगा। राघप्पा की बातें नीरस होती जा रही थीं।

राघप्पा नाटक की बात ही न उठाता था। हिस्से की बात वसंत के उठाने पर भी वह उससे बचने की कोशिश करता। वसंत को आश्चर्य हुआ कि राघप्पा क्यों ऐसे भागने की कोशिश करता है? क्या इसके प्रति उसके मन में अनादर उत्पन्न हो गया है? खिलाने-पिलाने में तो कोई कमी नहीं करता पर बातों में पहले की भांति रसिकता की बातों से उदासीन होता जा रहा है। ऐसा क्यों? अंत में वसंतराव ने मन में यही तर्क किया कि शायद राघप्पा उसके बाप से डरने लगा है।

इससे पिता के बारे में उसके मन में और भी आदर बढ़ा। राघप्पा के ही हाथ खींच लेने के बाद घर में हिस्से आदि जैसी ऊटपटांग बातों पर उसने मां से कभी चर्चा न की। दुबारा गांव जाने की भी इच्छा व्यक्त न की! सिनेमा के लिए भी मां से जितना मिल सकता था उतना हड़प लेता निचले दर्जे में बैठकर एक पिक्चर की जगह दो देखता। गांव में तंबाकू खाने की आदत पड़ गयी थी। इसलिए इन दिनों चाय पानी का खर्च भी कम हो गया था। वह घर में या राघप्पा के घर या दोस्तों में ही चाय पीता। अकेले चाय के लिये दुकान पर जाना कम हो गया।

देसाईजी ने वेणक्का को कह रखा था "वसंत हिस्से वगैरा की बात शायद छोड़ देगा। यदि वह हिस्सा दिलाओ, गांव जाऊंगा वगैरा कहे तो मुझे बताना। मैं उसे मारूंगा पीटूंगा नहीं। देखना यह है कि वसंत में कोई परिवर्तन आया है या नहीं।...तुम्हारा उसे राघप्पा के घर जाने से रोकना ठीक नहीं। मना करने पर वह हमसे छिप कर जायेगा। इतने बड़े बच्चे की कितनी रखवाली की जा सकती है? उसके वहां जाने पर भी उस पर कोई असर न पड़े ऐसा प्रबंध कर दिया है। वसंत के पेट की दर्द का इलाज मैंने राघप्पा को अजवायन खिला कर किया है। उसका परिणाम अभी देखना है। उसको राघप्पा के घर जाने से रोकना मत पर पहले की भांति उपद्रव करे तो मुझे बता देना।"

वसंत की ओर से पंद्रह दिन बीत जाने पर भी कोई बात न सुनने पर उन्होंने

सोचा कि दवा का असर होने लगा है।

सच में दवा का असर हुआ था पर दर्द दूसरी ओर से दिखायी देने लगा। राघप्पा ने वसंत से छोटे-मोटे फायदे उठाने का विचार छोड़ दिया था और लाभ उठाना संभव भी न था। वसंत जब शहर ही में रहने लग गया था तो अनाज बेचता ही कौन। इसके बदले में राघप्पा ने वसंत को ही पूर्ण रूप से अपने वश में कर लेने की योजना बनायी। चाय नाश्ते की व्यवस्था उसने यथा प्रकार रखी। एक दो बार वह वसंत के साथ सिनेमा भी गया। प्रत्येक बार चाय लाने का काम शांता का था। चाय पीते-पीते राघप्पा शांता की चाय बनाने की प्रशंसा करता।

एक दिन अच्छा मौका देखकर राघप्पा ने फुलझड़ी छोड़ी। "वसंत हमारी शांता अब सयानी हो गयी है। उसके विवाह के बारे में मुझे समझ में नहीं आ रहा है। हाल में उसे एक लड़का दिखाया है। लड़के ने तो शांता को पसंद किया है... मुझे भी लड़का पसंद है पर विचित्र बात देखो, शांता लड़के को पसंद नहीं कर रही। देखो मेरी बड़ी लड़की रत्ना ने तनिक भी चूं-चपड़ किये बिना जिस लड़के को हमने पसंद किया उससे विवाह करने को तैयार हो गयी। रत्ना को मैंने बताया भी था कि तुम्हें सास के घर में कष्ट होगा तुम्हारी सास डंक मारती है, तुम्हें कष्ट दे सकती है, तुम्हें सहन करना होगा। पर लड़का हमें पसंद है। तुम्हारी क्या मर्जी है ? यह पूछा भी था इस पर वह क्या बोली तुम्हें पता है... 'मेरी शादी करने वाले आप हैं तो मुझे काहे का सोच-विचार' ऐसा उसने स्पष्ट कर दिया था। वह भी हमारी लड़की है। उसमें और इसमें ज्यादा-से-ज्यादा पांच छह साल का फर्क है। पर शांता आजकल की देशभक्ति के आंदोलन में अगुवा रह चुकी है। कहती है मुझे खादी पहनने वाला लड़का चाहिये, ऐसा सरकारी नौकर नहीं चाहिये। हठ करती है। वह लड़का मैंने सरकारी नौकर देखकर ही चुना था। लेकिन इसने तो एकदम इनकार ही कर दिया। मैं इसे गलत नहीं कहता, रत्ना का भी एक ढंग से ठीक ही था। शांता का भी एक तरह ठीक ही ढंग है। समय के अनुसार विचार भी बदलते हैं देखो। आज के जमाने में देशभक्ति की भी जरूरत है। तुम्हारी क्या राय है वसंत ?"

"जी हां, चाहिये तो ।" कहकर वसंतराव दूसरे दिन से एक गांधी टोपी खरीदने का विचार करने लगा ।

"मैंने तुमसे इसलिए जिक्र किया कि तुम्हारे बहुत से दोस्त हैं । कोई अच्छे घराने का लड़का जिसके कुछ थोड़ी बहुत जायदाद हो और देशभक्ति की बातें करता हो ऐसा कोई लड़का तुम्हारी नजर में हो तो बताना । मैंने भी एक देख रखा है वह वर भी अच्छा है । अच्छा अमीर है । चार जोड़ी हल की खेती है । एक सर्राफे की दुकान भी है । पर वरदक्षिणा काफी देनी होगी । उससे मैं डरता नहीं । चाहे जितनी वरदक्षिणा मांगने वाला वर क्यों न हो पर मुझे विश्वास है कि हमारी शांता को देखते ही उनका हठ कम हो जायेगा । कुछ भी हो इसकी शादी भर हो जाय हमारी चिंता मिट जायेगी । इसलिए तुम्हारी जान-पहचान का कोई अच्छा लड़का हो तो मुझे बताना भैया । मेरे शिष्य होने के बाद इतनी-सी सेवा कर देना कोई बड़ी बात है क्या ? भगवाब तुम्हारा भला करके जल्दी ही तुम्हारी भी शादी कर देगा ।" कहकर राघप्पा जोर से हंस पड़ा ।

एक ही सप्ताह के बाद वसंत गांधी टोपी लगाने और नेहरू शर्ट पहनने लगा । उसे देखकर वेणुबाई समझी कि वसंत भी अपने भाई अच्युत की राह पर चलने लगा है । राघप्पा मन-ही-मन हर्षित हुआ और उसने मन-ही-मन कहा, 'देसाई तुम मेरे हाथ से बाहर नहीं हो, मैं तुम्हें कुचल दूंगा ।'

32. गजेंद्र मोक्ष

शालिग्राम की पूजा से घर में जो शांति उत्पन्न हुई थी वह अधिक दिन न रही । घर में फिर से झगड़े शुरू हो गये । गंगव्वा ने बहुत दिन तक वेणक्का से खोल कर नहीं बताया । वह यह सोचकर सह जाती कि ऐसी सब बातें सभी को पता रहती हैं । वेणक्का भी उसके साथ क्या सहानुभूति कर सकती थी ? थोड़ी-सी इस बात की कल्पना उसे थी । रोज एक ही राग अलापने और सुनने से आदमी

ऊब जाता है। मालूम नहीं कब और किस समय वेणक्का उसकी बातों से ऊब जाय। गंगव्वा इसीलिए चुपचाप रहती। इसके अलावा एक बात यह भी थी कि देसाई जी ने ही बीच में पड़कर यह विवाह कराया था तो बार-बार शिकायत पहुंचाने का मतलब उन्हीं पर आरोप लगाना होता। गंगव्वा को इस बात का डर था कि इस प्रकार कहीं उन्हें दुख न पहुंचे।

इधर वेणक्का को भी पता था कि सबके घर के चूल्हे मिट्टी के ही हैं। इस कारण गंगव्वा के घर के बारे में बहुत उत्सुकता न दिखा कर चुप रहती। कभी-कभी केवल इतना ही पूछ लेती "गंगव्वा घर में तो सब ठीक-ठाक है ना?" गंगव्वा इसका अर्थ यह लेती कि स्वास्थ्य के बारे में पूछ रही सो उत्तर दे देती "ठीक है... कल किट्टी को जरा जुकाम हो गया था।" वेणक्का को भी इस बात का काफी अनुभव था कि घर में जो कुछ होता है वह कह देना कितना हास्यास्पद होता है। गंगव्वा जब अपने सुख-दुख बताती तो वेणक्का को अपने ही सुख-दुख अधिक नजर आते। वह जीवन से तंग आ गयी थी। एक और उपवास, वनवास, जेल से जूझने वाला अच्युत। दूसरी ओर हिस्सा मांगने और ताश खेलने और सिनेमा देखने का शौकीन वसंत। जितना वेणक्का सोचती उतना ही अनुभव करती कि अमीर लोगों को मिलने वाले सब दुख उसे भी थे। इस प्रकार उन दोनों में एक मूक समझौता-सा हो गया था कि वे अपने सुख-दुख एक दूसरे से अधिक नहीं कहेंगी।

इन दिनों गंगव्वा के सामने उसकी सहन-शक्ति से परे के प्रसंग आने लगे। शालिग्राम की कृपा से जो गृह शांति स्थापित हुई थी, किट्टी के देसाईजी से अपनी वरदक्षिणा के रुपये मांगने आकर अपमानित होकर लौटने के बाद टिक न सकी। देसाईजी के इतनी दृढ़ता से गंगव्वा के पक्ष के समर्थन की बात वेणक्का के मुंह से सुनकर उसे संतोष हुआ। लेकिन उसने नहीं सोचा था कि देसाईजी का गुस्सा किट्टी उस पर निकालेगा। राघप्पा तथा किट्टी की कारस्तानी से देसाई जी को जो हानि पहुंची थी वह उन्होंने अपनी पत्नी को भी नहीं बतायी थी। वसंत का राघप्पा को अनाज बेचने की बात वेणक्का को पता थी पर गंगव्वा से इसका जिकर नहीं किया था उसका विचार था कि हमने शादी करायी इसलिए हमें ही भुगतना होगा। इसलिए गंगव्वा भी निस्संकोच सदा की भांति देसाईजी के घर

आती जाती रही। शालिग्राम की घटना के बाद दस-बीस दिन तक किट्टी मां का कुशल समाचार पूछा करता था। इससे जलकर रत्ना अंदर-ही-अंदर कुढ़ा करती थी। कुछ दिन के बाद वरदक्षिणा की बात पर किट्टी को झाड़ पड़ी। इससे चिढ़ कर किट्टी मां का अनादर करने लगा। एकाध बार विवेक छोड़ कर चीखा चिल्लाया भी।

राघप्पा की करतूत से देसाई को हानि पहुंचाने में सहयोग देने से किट्टी को कोई व्यक्तिगत प्रसन्नता न हुई। यह तो संसार की रीत समझ उस काम के लिए तैयार हुआ था लेकिन उसकी आत्मा उसे कचोटे जा रही थी। उसका कर्जा उतरा न था। ब्याज देने से छुटकारा नहीं हुआ था। एक दिन जब गंगव्वा भगवान के सामने पोथी खोलकर बैठी थी तब किट्टी जलता-भुनता आकर उसके सामने बीस रुपये की चिल्लर उंड़ेल कर उबल पड़ा, "तुम्हारे नाम पर यह ब्याज भर रहा हूं।"

गंगव्वा भी दुखी हुई। "तुम यह जनानी आदतें छोड़ दो। इन तीन चार वर्षों में ब्याज भर कर साथ ही एक दो सौ रुपये मूल भी नहीं चुका सकते थे। तुम उतना चुका कर यदि मुझसे कहते कि मां मैंने इतना चुका दिया। चलो और भी चुका देंगे कह कर मुझसे मांगते तो क्या मैं इनकार कर देती? कमाई पूरी नहीं होती कहकर रोते हो। मेरे पास तो इतना भी नहीं था पर क्या मैंने घर नहीं चलाया। पूछो चार आदमियों से। लड़ाई के दिनों में जब रुपये की सेर ज्वार थी तब मैंने आधा पेट खाकर भी तुम्हें खिलाया। तुम्हें स्कूल भेजने में कोई कमी नहीं की। अब तुम तनख्वाह पाते हो तब भी तुम्हारी पूरी नहीं पड़ती है? अब तुम पर ऐसा कौन-सा बोझ आन पड़ा है कि जिसे तुम निभा नहीं पा रहे हो। वह अकेली ही तो है।"

गंगव्वा की बातों के दो-दो मतलब लगाने वाले किट्टी और रत्ना को यह सब बातें बहुत बुरी लगीं। उसमें भी अंतिम वाक्य मर्म में चुभ गया। किट्टी ने यही समझा कि मां ने उसके मन को दुखाने के लिए यह बात कही है। उसमें उसके संतानहीन होने की ओर इशारा भी है। इसलिए उसने भी उसे दुख पहुंचाने को कहा, "तुम्हारे सब के पेट भरने में ही उड़ जाता है।"

"गंगव्वा गरजी, छोड़ो मेरे पेट भरने की बात। मुझे तेरा खाना नहीं चाहिए।

आज से तुम अपनी नौकरी छोड़ दो तुम्हें और तुम्हारी बीवी को बिठा कर खिला सकती हूं।"

गंगव्वा को इतनी बात कहने का बड़ा प्रयास करना पड़ा। मेरे कपड़े-लत्ते बाहर फेंक दे। मैं तेरे घर में नहीं रहूंगी। गाणापुर चली जाऊंगी यह कहने को उसका मन हो आया लेकिन उसने प्रयत्नपूर्वक अपने को रोक लिया। कुछ भी हो जाय यह घर नहीं छोड़ना यह प्रतिज्ञा उसे याद आ गयी।

उस दिन गंगव्वा ने भोजन नहीं किया। किट्टी भी गुस्से में दफ्तर चला गया। संध्या तक गंगव्वा ने खाना नहीं खाया। उसी तरह रत्ना ने खाना नहीं खाया। उनके लड़ाई-झगड़े से सारा मोहल्ला दंग रह गया। जब किट्टी शाम को घर लौटा तब उसने मां को भगवान की तस्वीर के सामने चटाई बिछाये लेटी देखा। पत्नी बोली "उन्होंने खाना नहीं खाया है। इसलिए मैंने भी नहीं खाया। क्या मुझे उपवास करना नहीं आता ?"

किट्टी घबराकर मां के पास गया, और बोला "मां मुझसे गलती हुई। पैसे जाते देखकर मुझे दुख हुआ था, सह नहीं सका।" बहुत दिलासा देने के बाद गंगव्वा ने उठकर भोजन किया।

किट्टी भले ही ये बातें भूल गया पर रत्ना सास की बातें न भूल सकी। रोज-मर्रा की खटपट के कारण रत्ना के मन में गंगव्वा के प्रति जो डर था वह भी जाता रहा। उसके प्रति तिरस्कार भी बढ़ गया था। वह सोचती, मेरे पति को उसने पाला तो इसका मतलब यह तो नहीं कि मैं सदा डरती ही रहूं। इतना दुख उठा कर जिस सास ने उन्हें पाला है आज ऐसी बातें क्यों करती है जिससे उनकी इज्जत घटती है। मेरे बच्चे नहीं तो इसमें मेरा क्या दोष। उसके लिए भी मुझे ताने देने चाहिये। इन विचारों के कारण रत्ना उस दिन के बाद और भी जोर-शोर से सास का विरोध करने लगी।

घर में किट्टी की जेब में रखा पैसा गायब होने लगा। किट्टी समझ न पाया कि किस से क्या कहे। पास-पड़ोसियों के साथ रत्ना खूब खुल कर बातें करती और उसने यह बात फैलाने का प्रयास भी किया कि उसकी सास ने कुछ टोने-टोटके करा कर उसकी कोख बांध दी है। पड़ोसियों को इस बात में बड़ा आनंद आया। रत्ना को दोपहर को बुलाकर उससे दो अच्छी बातें करके सहानुभूति दिखा कर

उसके मुंह से ये बातें सुनते। यह खबर गंगव्वा के कान पड़ते ही उसने किट्टी की अध्यक्षता में रत्ना को सामने बिठाकर पूछा "किस ओझा या स्याने से कब मैंने टोटका कराया था ?" किट्टी को दोनों में से किसी को भी समझाना मुश्किल हो गया। रत्ना ने शपथ खाकर कहा कि उसने ऐसी बात नहीं कही। अब साक्षी की आवश्यकता पड़ी। गंगव्वा अपनी साक्षी के लिए काशी की मां को बुला लायी। काशी की मां ने नाटक को मजे से देखा और किसी का भी पक्ष न लेकर इस बात को दूसरों को सुनाने के लिए वहां से खिसक गयी। अब तक रत्ना पति की आज्ञा से झगड़ा मिटाने के लिए अपनी गलती न होने पर भी 'गलती हो गयी' कह दिया करती थी। पर आज उसने 'गलती हो गयी' कहने से स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया।

एक दिन किट्टी ढाई सेर गुड़ घर के लिये लाया। शाम तक उसमें से एक बड़ा टुकड़ा गायब हो गया था। बहू का तर्क था कि सास घर के सामान किसी को बेच देती है। सास का तर्क था कि बहू अपने बाप के घर थैले में सामान छिपाकर पहुंचा देती है। इस प्रकार तर्क-वितर्क के बाद रत्ना ने पति के कान में धीरे-से यह संदेह व्यक्त किया कि सास के तह किये हुए सुच्चे कपड़ों के नीचे कुछ उभरी-सी दिखायी देती है। उठा कर देखने पर उसके नीचे गुड़ का एक बड़ा टुकड़ा रखा था। फिर वाद-विवाद शुरू हो गया। गंगव्वा बोली "मुझे बदनाम करने के लिए बहू की यह करतूत है।" इस पर रत्ना बोली सुच्चे कपड़े मैं क्यों छूने जाऊं, बांझ कहकर मुझे पहले ही अछूत बना रखा है।' तो गंगव्वा ने कहा, "अगर छूआछूत का ही ध्यान होता तो ऐसा होता ही क्यों ?" तब रत्ना जोर से बोल पड़ी "आप तो बहुत छूआछूत का ध्यान रखती हैं ना पर रात को अपने बासी 'बुक्करी' को क्यों खा लिया।"

अपनी बात को सही करने के लिए झूठ बोला जा सकता है पर रत्ना की अंतिम बात बहुत असह्य थी। गंगव्वा इस झूठे आरोप से अप्रतिभ हो गयी। वह बिना कोई उत्तर दिये खाना छोड़ कर बैठ गयी। किट्टी ने पहले पत्नी से 'गलती हो गयी' कहलाने का प्रयास किया। बहुत जोर देने पर भी रत्ना तैयार न हुई। जब बात सही है तो मैं क्यों गलती मानूं कहकर वह अकड़ गयी। पत्नी के विरोध से हार कर किट्टी ने आखिर मां को सांत्वना देने का प्रयास किया। उसने उसे भोजन

करने का नोटिस-सा जारी कर दिया। पत्नी को तो उसने प्यार से कहा था और मां को आज्ञा दी तो गंगव्वा भला इसे कैसे सहन करती? "मुझ पर हुक्म चलाने वाला तू होता कौन है? बहुत दिन हो गये चुपचाप सहते-सहते। अब मैं चुप नहीं रहूंगी। गोपण्णा से पूछती हूं। अब क्या करना चाहिये।" यह कहकर देसाईजी के घर पहुंच गयी। उस समय दोपहर के तीन बजे थे।

"गोपण्णा तुम्हें पता ही है कि यदि मैं आज किट्टी का साथ छोड़ दूं तो राघप्पा उसे रीछ बनाकर नचायेगा। इस कारण मैं अब तक उसके साथ बनी रही। उसके लात मारने पर भी घर की चौखट पकड़ कर वहीं बैठी रही। तुम बताओ अब मुझे जी कर क्या करना है? बेटे को बड़ा किया, शादी कर दी। पोते-पोतियों को देखने की इच्छा थी... लेकिन भगवान की मर्जी नहीं। वह बात जाने दो। मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि ऐसा हो जायेगा। पिछली बार जैसे काशी ले गये थे वैसे ही एक बार बदरीनाथ ले चलना भैया। भगवान के दर्शन करूंगी। गंगा-माई वहीं बहती हैं। वहीं कहीं पहाड़ से उसमें कूद कर इस नारी जन्म से छुट-कारा पा जाऊंगी। इस जीवन से मेरा जी भर गया।" इतना कहकर गंगव्वा रो दी।

गंगव्वा को इस बात का संदेह था कि किट्टी अब देसाईजी को भी कुछ नहीं समझता। देसाईजी के बुलाने पर यदि वह न आया तो उनकी क्या इज्जत रहेगी? इसलिए उसने अपने को रोक लिया। पिछले दो वर्षों का सारा अनुभव और अंतिम घटना को विस्तार से बताने के बाद वह बोली, "इतने दिनों से सब छिपाये थी। आज तुम्हारे सामने सब बताने की इच्छा हुई सो कह दिया। तुम कुछ भी मन में नहीं रखना भैया। उसके अलावा और मेरा कौन है? ... मैं फिर जाती हूं चाहे भूखा रखे या बनवास दे। मैं घर में ही मरूंगी।"

देसाईजी ने उसे जाने नहीं दिया। वे बोले, "गंगव्वा तुम डरो नहीं। तुम यहीं नहा लो और थोड़ा चावल और झुणकी[1] बनाकर खा लो। मैं ऐसा प्रबंध करता हूं कि कल तुम्हारे बेटे और बहू तुम्हारे पांव पड़कर तुम्हें घर ले जायेंगे।"

गंगव्वा के मन में संदेह था। आज मैं यहां रह तो जाऊं पर इस बात का क्या भरोसा कि बेटा कल को आकर ले ही जायेगा? यदि वह न आया तो कल

[1] भुनी दाल के पाउडर को छौंककर चावल खाने के काम में लाया जाता है।

अपने आप घर जाना और भी बेइज्जती की बात होगी। इसलिए उसने कहा, "रहने दो भैया स्त्री जन्म है, भोगूंगी।"

देसाईजी ने उसे जाने न दिया आग्रहपूर्वक रोक लिया। संध्या को वसंत के द्वारा राघप्पा के पास यह संदेश भेजा। "गंगव्वा हमारे घर है। कल सुबह बहू और बेटा आकर उसे घर लिवा ले जायें।"

देसाईजी का निशाना ठीक ही बैठा। अगले दिन बहू बेटे दोनों आये। दोनों ने मां से क्षमा याचना की।

गंगव्वा को यह रहस्य समझ में न आया। बहू का भी उसके पांव पड़ना देख कर उसे आश्चर्य हुआ। इतने में देसाईजी हंसते हुए, बोले "अब गुस्सा थूको। चाय पी या नहीं ? अब सबको हंसना चाहिये क्योंकि सबको एक खुशी की बात सुनाता हूं।"

"उन्होंने हंसते हुए पूछा, कृष्ण तुम्हारे मामा ने तुम्हें यहां आकर मां को ले जाने का बहुत आग्रह किया है क्या ?"

किट्टी हां और नहीं के बीच हिचकिचा ही रहा था कि उन्होंने और जोर से हंसते हुए कहा, "अब से तुम्हें अपने मामा को सलाम करने की जरूरत नहीं है। अब से तुम उसके खालिस दामाद हो। अब राघप्पा दत्तक का विचार नहीं रखता। अब क्यों उसकी खुशामद की जाय ?"

गंगव्वा और रत्ना के मुंह से एक साथ निकल पड़ा "क्या कहा।"

देसाई जी चुपचाप हंस पड़े।

गंगव्वा ने पूछा "मजाक कर रहे हैं क्या ?"

वे बोले, "मैं क्यों मजाक करुं। राघप्पा ही पंद्रह बीस दिन पहले आकर बता गया है।"

"तो किसको गोद लेगा ?" गंगव्वा ने पूछा।

"दत्तक से राघप्पा का विश्वास उठ गया है" उन्हें और चक्कर में डालकर अंत में बोले :

"जब अपना ही बेटा होने वाला हो तो दत्तक की क्या जरूरत है? यह राघप्पा का कहना है।" इतने में वेणुबाई ने दहलीज के पीछे से ही भाष्य किया, "चंपाबाई को तीन पूरे होकर चौथा महीना लगा है।"

रत्ना के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। वह सोचने लगी मैं तीन-चार महीने में हर हफ्ते में दो तीन बार मायके जाती रही हूं किसी ने भी यह जिकर नहीं किया। शांता को भी पता नहीं क्या ?

शारीरिक अशक्तता के कारण चंपक्का में गर्भवती होने पर भी कोई परिवर्तन नहीं दिखायी देता था। शांता को पता था पर रत्ना अपने मन में दुखी होगी सोच कर चंपक्का ने शांता को यह बात उसे बताने को मना कर दिया था। इसलिए शांता ने भी नहीं बताया था।

उसके लिए यह कल्पना करना भी कठिन था कि दैव उसके साथ इस प्रकार धोखा करेगा। राघप्पा के यहां इस आयु में संतान होना एक असंभव सी कल्पना थी। असंभव ही क्यों हास्यास्पद भी। परंतु अब रत्ना का सामाजिक और आर्थिक मूल्य एकदम घट गया। वह भी पिता के विषय में संतप्त हुई। उसी ने वास्तविक दुख का अनुभव किया था। अपने मन में कहा 'भगवान ही रक्षा करे।' यदि यही गर्भ भगवान ने उसे दिया होता तो सोचकर उसके मन में जलन भी हुई। इस पगली जलन के लिए उसे अपने पर गुस्सा भी आया।

किट्टी को आधी जलन और आधी हंसी आई। उसने दत्तक की बात को कभी अधिक महत्व नही दिया था। वह तो लड़की पर रीझा था। परंतु उसकी ओर से जो संपत्ति मिलने वाली थी और उसके कारण उसने अपनी पत्नी को अधिक फूल चढ़ाये वह अपने आप नीचे गिर गये। 'रसिक राघप्पा' की बात सोचकर हंसी आने लगी।

गंगव्वा को वास्तव में दु:ख हुआ। लेकिन इस सुमधुर प्रसंग के बीच वह भी कैसे कड़वी बात कहती ? बाह्य रूप से आनंददायक होने पर भी आंतरिक रूप से चिंताजनक इस हास्यापद विषय से प्रसन्न होकर वह छोटा सा परिवार घर को चला।

अगले दिन रत्ना फिर से मायके गयी।

अब रत्ना किस बात से झगड़ा शुरू करे ?

उसे किसी ने भी यह बात नहीं बताई थी। यही उसके दुख का मुख्य विषय था। यह ओछी बातों को लेकर झगड़ा करने लगें तो समझदार लोग समझ लेते

हैं कि उसके पीछे कोई दूसरी बात रहती है जिसे वे सीधे नहीं कहना चाहतीं।

रत्ना पांव पटकती हुई आई और सब पर बरस पड़ी। "मुझे कच्ची बात बतानी नहीं थी ? बता देते तो मैं छीन लेती क्या ? अपने घर की बात मुझे दूसरों के मुंह पता लगनी चाहिए ? मैं घर की नहीं हूं ? ... मां-बांप ने मुझे दूर कर दिया है क्या ? मुझसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए ही क्या मेरी शादी की थी ? मुझे मेरी बहिन भी धोखा दे दे ? सास के घर में दुख भोगते हुए मायके का धैर्य था। क्या हम मायके की संपत्ति के सहारे जी रहे हैं। लड़का पैदा होने पर मुझे भी भाई होने की खुशी नहीं होगी ? क्या मैं उस समय लड्डू बांटने में हिस्सेदार नहीं ?" प्रत्येक प्रश्न के साथ उसकी ध्वनि ऊंची होती जा रही थी। उसका आवेश देखकर राघप्पा भी उसे तसल्ली न दे पाया।

इतना चीख चिल्लाकर रोकर चाय के प्याले को लुढकाकर यह प्रतीज्ञा करके, "मैं दुबारा इस घर में पांव नहीं रखूंगी। लड़की पैदा होने पर भी मेरे पति को दत्तक नहीं लिया जाय। यदि लिया गया तो मेरे टुकड़े करके खाने के बराबर होगा।" यह कसम खाकर वह वहां से तेजी से चलती हुई घर पहुंची।

यह बात नहीं कि उस दिन से किट्टी के घर में झगड़ा खत्म हो गया परंतु रत्ना में अपने मायके का अभिमान स्वेच्छा से छोड़ देने के कारण अपनी ससुराल के घर सा अभिमान जागरित हुआ। पति के सिवा मेरा और कोई नहीं, पति पर ही विश्वास करना चाहिये। मां-बाप अपने नहीं होते, यह बात उसके मन में पक्की हो गयी। गंगव्वा को भी उसने भगवान का दिया अपना एक अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार कर लिया।

33. अच्युत का दूसरा पत्र

अच्युत का दूसरा पत्र आने में एक महीना लग गया, क्योंकि वेंकटराय से उसकी कहानी उगलवाना असाध्य बात थी। महीना पंद्रह में अच्युत ने असाध्य को साध्य

बना लिया। रूखा सा दिखने पर भी वेंकटराय बहुत संशयी और हठी था। एक तरह से वह थोड़ा कमीना भी था। कभी-कभी अच्युत उससे लंबा प्रश्न पूछता तो 'हमें इस तरह तंग न कीजिये, न कीजिये, न कीजिये', कह देता। नहीं तो कभी-कभी एक बार जोर से बात कहता। हाथ घुमाकर यह तो झूठ है, झूठ है, कह देता और कई बार 'क्यों देसाई जी, देसाई जी वाला कारोबार कर रहे हैं', कह-कर चिढ़ाता। परंतु अच्युत ने उसका पीछा न छोड़ा। उसने उसे यह कहकर फुसलाया 'मेरे पिताजी तुम्हारा हिस्सा तुम्हें दिला देंगे' और कभी उसे खुश करके धीरे-धीरे उससे बातें थोड़ी-थोड़ी करके निकलवाता और उन्हें नोट कर लेता। एक महीने के बाद जो भी विवरण मिले उन सबको तरतीब देकर देसाईजी को इस प्रकार पत्र लिखा।

क्षेम श्री बंबई

पूज्य पिताजी के चरणारविंदों में चिरंजीवी अच्युतराव का साष्टांग नमस्कार। आपका पत्र मिला। आपके पत्र से श्री वेंकटराय के घोरूघड़ी के मामले में फंस जाने की बात पता चली। मैंने उस बात का फायदा उठाकर यह कहकर उसे घबरा दिया 'तुमने झूठे हस्ताक्षर किये थे ना ?' वह बहुत सच्चा आदमी है। भगवान और मां बाप की कसम खाकर बताया कि उसने ऐसा नहीं किया। उससे अलग-अलग समय में प्राप्त विवरण नीचे दे रहा हूं। ये विवरण अपूर्ण है। मेरा अंदाज है कि उसमें से बहुत-सी बातें ऐसे ही हुई होंगी।

पंद्रह बीस वर्ष पूर्व वेंकटराय पूना में सेठ तख्तमल नाम के व्यापारी के यहां नौकर था। उसके घर के नौकर चाकरों में वेंकटराय ही अकेला दक्षिणी ब्राह्मण होने के कारण सेठ को इस पर बड़ा विश्वास था। उसने इसे अपने घर के पिछवाड़े ही एक कमरा दे रखा था। यह तो आपने अनुभव किया ही होगा कि वेंकटराय पागल-सा दिखने पर भी बड़ा ईमानदार है। ईमानदारी के साथ-साथ वह समय-समय पर चतुर भी बन सकता है। सेठ के घर में पूजा पाठ वेंकटराय ही करता था। श्राद्ध पक्ष भी वेंकटराय ही निभाता था। सेठानी वेंकटराय का स्वभाव देखकर उसे भगवान का अवतार ही मानती थी। उसको खूब खिलाने में ही उसे आनंद आता। बाद में कुछ विश्वास बैठ जाने के कारण सेठ ने बैंक को पैसे ले जाने तथा चैक तुड़वाने आदि का काम वेंकटराय को सौंप दिया। इस

कारण यह रत्ती जैसी आंखों वाला रुखी मराठी और विचित्र हिंदी बोलने वाला, बेबाक, विक्षिप्त व्यक्ति बैंक वालों में बड़ा परिचित-सा हो गया। उसने बताया कि जब काम के लिए बैंक जाता वहां के क्लर्क लोग उसे छेड़ते, 'क्यों आज सेठानी ने क्या खिलाया कचौरी या लड्डू।' उनके जवाब में यह कहता 'खाया मैंने तुम्हारे पेट में दर्द क्यों होता है।'

एक दिन चैक तुड़ाने के लिए बैंक की पंक्ति में खड़ा था। इतने में सेठ के ड्राइवर ने (उसका नाम ताजिमुद्दीन था) तेजी से मोटर लाकर बैंक के सामने खड़ी की। उसने वेंकटराय को बुलाकर दो हजार रुपये का चैक देकर कहा, 'सेठ जी ने मुझे मोटर के पुराने पुर्जे बदलवाने के लिए यह दिया है। मुझे रुपये आज ही चाहिये पर यह चैक तुड़ाने को मेरे पास समय नहीं। मुझे इसे तुड़ाने के लिए पंक्ति के अंत में खड़ा होना पड़ेगा। तुमने तो नंबर लगा रखा है। तुम इसे तुड़ा कर मुझे दे देना। वेंकटराय उस चैक को लेकर फिर से पंक्ति में खड़ा हो गया। उस समय इससे अगला आदमी किसी बात को लेकर बैंक क्लर्क से बहस कर रहा था। वेंकटराय की बारी होने पर भी उसे चुपचाप खड़ा रहना पड़ा। इसलिए ताजिमुद्दीन को देर होने लगी। उसने मोटर से उतर कर उसके कान में तुम यह चैक तुड़ाव कर यहीं खड़े रहना। सेठ जी को दुकान पर पहुंचा कर मैं पंद्रह बीस मिनट में आता हूं।' इतना कहकर वह चला गया।

वेंकटराय को बिना किसी दिक्कत के पैसे मिल गये। ऐसा लगता है कि उस आदमी के साथ झगड़ा हो जाने की गर्मी में उस बैंक के क्लर्क ने इस परिचित व्यक्ति के चैक को बिना जांच-पड़ताल के मंजूर कर दिया होगा। तीन-चार मिनट में दूसरी खिड़की से वेंकटराय को दो हजार रुपये मिल गये। उसका लाया दूसरा चैक सेठ के नाम पर जमा हो गया। उस पैसे को लेकर वेंकटराय बैंक की सीढ़ियों पर बैठ कर ताजिमुद्दीन की राह देखने लगा। एक घंटा रास्ता देखने पर भी ताजिमुद्दीन का अतापता न लगा। उसे इस बात का भी डर लगा कि यदि किसी ने उसे दो थप्पड़ लगा कर उससे पैसे छीन लिये तो...। इसलिए और अधिक इंतजार न करके वह घर चला आया। उसने वह रुपये ट्रंक में हिफाजत से रख कर उसका ध्यान रखने को अपने भाई राघप्पा से कहा। राघप्पा उन दिनों कहीं और नौकरी न मिलने पर पूना में नौकरी ढूंढ़ने आया था। उसे ट्रंक छोड़कर कहीं

न जाने की ताकीद करके वेंकटराय काम पर गया।

सेठ के बड़े लड़के बाबू भाई ने वेंकटराय को देखते ही उसे अपने कमरे में आने का इशारा किया। वह काफी दिनों से अपनी आवारागर्दी के लिए प्रसिद्ध था। कमरे में पहुंचते ही उसने वेंकटराय से पूछा 'ताजिमुद्दीन तुमसे मिला था?' वेंकटराय को संदेह हुआ उसने 'हां' कह दिया। बाबू भाई ने आगे पूछा, 'चैक दिया था?' वेंकटराय ने उसके लिए भी जी हां कहा। बाबू भाई के फिर पूछने पर 'चैक तुड़वा कर पैसा ताजिमुद्दीन को दे दिया' वेंकटराय ने निरुपाय होकर 'जी हां' कह कर झूठ बोल दिया। झूठ बोलना वेंकटराय के लिये बिच्छू काटने के बराबर था। परंतु यदि वह सच बोलता तो क्या बाबू भाई उसे छोड़ देता? वह उसका कुरता पकड़कर रुपयों के लिए उसके गले ही पड़ जाता। उसने ताजिमुद्दीन से सच्चा बनने के लिए ही यह झूठ बोला था। ऐसी चतुरता वेंकटराय में बहुत है। वह अपने सिद्धांत को छोड़ने वाला नहीं है। बाबू भाई ने इस पर उसे छोड़ दिया।

उस सारा दिन ताजिमुद्दीन उधर नहीं आया। सेठ जी तो संध्या को रेल से बंबई चले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल जब वेंकटराय सेठ के घर में पूजा पर बैठा था तब राघप्पा ने आकर कहा ताजिमुद्दीन आया है। इसी समय पैसा चाहता है। नहा-धोकर पूजा पर बैठे वेंकटराय से उस समय उठकर ट्रंक छूना संभव न था। उसने अपने जनेउ से चाबी निकालकर राघप्पा को दे दी।

राघप्पा से पैसा लेकर ताजिमुद्दीन जो गया तो फिर कभी न लौटा।

अगले दस-बारह दिनों में संभवतः हिसाब-किताब में फर्क आने पर संदेह में सेठ ने पुलिस में रिपोर्ट की होगी। बारह-पंद्रह दिन बाद पुलिस वेंकटराय को हथकड़ी लगाकर ले गयी। इसमें पाप का भागी ताजिमुद्दीन या और कोई। कहा नहीं जा सकता। चैक तुड़वाने के कारण वेंकटराय पर मुसीबत आयी।

इतने में नौकरी न मिलने के कारण राघप्पा वापस लौट गया। वेंकटराय ने घबराकर राघप्पा को पत्र लिखा। राघप्पा ने अपने बहिनोई स्वामी राय कुलकर्णी से जमानता दिलाकर वेंकटराय को जेल के सींकचों में बंद होने से बचा लिया।

वहां से तीनों जब धारवाड आ रहे थे तब रेल में कुलकर्णी स्वामीराय बोले

तुम्हारी जिम्मेदारी ली है तुम अपने हिस्से की जमीन मेरे नाम लिख दो। तुम्हारा क्या भरोसा ?' कहकर उसके पीछे पड़ गया। उसके आग्रह पर धारवाड़ आते ही उसने वह बख्शीश पत्र लिख दिया था। लिख देने के बाद उस पर वेंकटराय को बार-बार चिंता होने लगी। लिखे गये बख्शीश पत्र की प्रति न तो वेंकटराय के पास थी और ना ही राघप्पा के पास। इधर राघप्पा ने कहा 'तुम्हारे हिस्से में रखा ही क्या है ? हमारे खेतों में से दो अच्छे खेत स्वामीराय मांग बैठे तो मेरी क्या दशा होगी ?' यह कह उसे तंग कर करके उससे स्वामीराय से उस कागज की एक प्रति मांगने के लिए विवश किया। पहले से ही विक्षिप्त वेंकटराय इन दोनों की बातों से तंग आकर स्वामीराय से बोला, मैं वकील से पूछना चाहता हूं। उस बख्शीश पत्र की एक प्रति मुझे चाहिए।'

अनुभवी स्वामीराय के उसकी यह बात न मानने पर वेंकटराय दुखी हुआ होगा। अंत में तंग आकर गुस्से में स्वामीराय ने यह कहकर मैंने पांच हजार रुपये की जमानत दी है। कोई कह तो दे कि मैंने तुमसे गलत लिखवाया है तो मैं कोई भी सजा भुगतने के लिए तैयार हूं। वेंकटराय की ओर उस पत्र की प्रति फेंक दी। वेंकटराय उसे लेकर राघप्पा के घर आया। अगले दिन प्रातःकाल वकील से मिलकर उस पत्र के बारे में सलाह लेनी थी। इसीलिए वेंकटराय वहीं भोजन करके उस दिन वहीं सो गया। उसी रात को ग्यारह बजे उसे पकड़ने के लिए आई पुलिस ने दरवाजा खटखटाया, और उनके हाथ से बचने के लिए वेंकटराय पिछवाड़े के दरवाजे से भाग कर स्टेशन पहुंचा। वहां से बंबई की गाड़ी पकड़ ली। इस प्रकरण को जैसा वेंकटराय ने बताया ज्यों-का-त्यों लिख रहा हूं। लेकिन इस बारे में मुझे कई संदेह भी हैं।

बंबई में कुछ दिन बाद इस आटे की चक्की के मालिक के घर में काम पर लग गया। कुछ दिनों के बाद जब यह चक्की उसके मालिक ने चालू की तो वह यहीं लग गया। तब से वह अज्ञातवस में दिन काट रहा है। वेंकटराय का कहना है कि इस बख्शीश पत्र को देखने वालों में मैं ही अकेला ऐसा आदमी हूं जिसने यह कहा है कि तुम्हारा हिस्सा तुम्हें मिल जायेगा।

इस विषय में वेंकट ने जिस हिसाब से बातें बतायी उसी के अनुसार यह लिखा है। यह निश्चित है कि उसके विक्षिप्त स्वभाव के कारण उसकी कई बातें उलट

पलट समझ में आयी होंगी। इसलिए इसमें कई बातें संदेहास्पद लगती हैं। आप भी यदि वेंकटराय के मुंह से यह बात सुनते तो आपको इन बातों में यही संदेह होते। मैंने जो नोट्स लिए उनके आधार पर बात स्पष्ट न होगी यह सोच नीचे अपने विचार लिखता हूं।

पहली बात, वेंकटराय अपने पास की प्रति को मूल बख्शीश पत्र की प्रतिलिपि मानता है। आपको याद होगा कि मैंने पहले पत्र में लिखा था कि उसके पास जो प्रति है वह मूल बख्शीश पत्र होने में संदेह-सा लगता है। उस पर रजिस्ट्रेशन स्टांप न होने के कारण और स्याही पुरानी पड़ जाने के कारण वह मूल पत्र की प्रतिलिपि-सी लगती है। इस बात की पुष्टि एक और बात से होती है कि गुस्से में आकर स्वामीराय ने वह कागज वेंकटराय पर फेंक दिया था इसलिए यह पत्र मूल पत्र हो सकता है। यह बात वेंकटराय की कल्पना से बाहर की है। अवश्य ही यह मूल प्रति होगी। दो-तीन प्रतिलिपियां बना कर एक ही जगह रखने पर गुस्से में ऐसा होना संभव है।

दूसरी बात जमानत दे देने के बाद पुलिस क्यों आयी? सम्मन आना चाहिए था। पुलिस का दुबारा आना सच हो सकता है या वेंकटराय के भय का भूत?

तीसरी बात वेंकटराय के बंबई भाग जाने के बाद स्वामीराय की दशा क्या हुई? ...सिर्फ डर के मारे ही उसने इसकी संपत्ति लिखवा ली थी यह सच है। अगर कुछ हो जाय तो उसके खोये पैसे की जगह यह संपत्ति रहेगी। ऐसा झूठा धैर्य पहले उसे रहा होगा। पर अच्छी तरह देखने के बाद जब उसे पता चला होगा कि मूल पत्र ही उसके हाथ से निकल गया है तो अवश्य ही वह घबरा गया होगा। लेकिन यह विचार वेंकटराय के दिमाग में है ही नहीं। उसका अब भी यह विचार है कि उसकी संपत्ति स्वामीराय के पास चली गयी होगी और वह आनंदपूर्वक होगा। उसको यदि सही बात का पता लग जाय तो वह बहुत दुखी होगा और यह भी संभावना है कि उसकी बुद्धि का संतुलन बिगड़ जाय। इस बात के बारे में हमें बहुत ध्यान रखना चाहिये।

इन सब बातों के बाद भी मुख्य रहस्य बना ही रहता है। गलत चैक का देने वाला कौन था? वेंकटराय के फरार होने के बाद पुलिस ने उसे ढूंढ़ने का प्रयास किया? इसकी अनुपस्थिति में केस चला...? यह सब बड़े महत्वपूर्ण

प्रश्न हैं। उनकी और जगहों से छानबीन करनी आवश्यक है। इसकी सारी खोज पड़ताल करने की मेरी इच्छा है। यहां पर मैं और विवरण लेने तथा कोर्ट के पुराने फैसलों की फाइलें निकलवाने का प्रयास करूंगा।

यदि यह कहानी पूरी रूप से पता चल जाय तो इसे हमारे समाचार-पत्र में धारावाहिक रूप में छद्म नाम से छपवाया जा सकता है। मैंने अपने संपादक को इसमें से कुछ विवरण बताये थे। उन्हें बहुत पसंद आये। उनका कहना है, हिंदुस्तान में ऐसी हृदय विदारक घटनाओं को लिखने वाले कितने लोग हैं, कामिक भी हमें बाहर से खरीदने पड़ते हैं। कहानियां भी बाहर से खरीदनी पड़ती हैं। वे सब दूसरे देशों के वातावरण में लिखी गयी होती हैं। इसलिए वे इसे धारावाहिक रूप देने को कह रहे हैं। पूना जाने के लिए पैसे भिजवायेंगे?

मेरी पढ़ाई अच्छी चल रही है? स्वास्थ्य ठीक है। माता जी को नमस्कार। भाइयों को आशीर्वाद।

इति

अच्युत राव

34. आग के साथ खेल

देसाईजी द्वारा बेटी और दामाद को भेजने का संदेश आने पर राघप्पा ने बड़-बड़ाते हुए उनकी यह बात पूरी करी। 'कर लो देसाई' जो तुम्हें करना है, वक्त आने पर मैं भी तुम्हारी गर्दन पकडूंगा।' उसने दामाद और बेटी को अपने घर बुलाकर समझाया 'आप लोगों को मिलजुल कर चलना चाहिये। मेरी बहिन ने बहुत दुख उठाये हैं। उसे और दुख नहीं देना चाहिये।' रत्ना के विवाह के बाद भी राघप्पा ने गंगव्वा के घर कदम नहीं रखा था। गंगव्वा भी राघप्पा के घर नहीं गयी थी। इतना द्वेष होने के साथ-साथ राघप्पा गंगव्वा के लिए पापों की साक्षात मूर्ति था। राघप्पा के लिए गंगव्वा अपनी सामर्थ्य से उसे झुकाने वाली

और उससे लड़ने वाली एक शक्ति थी। परंतु कभी गंगव्वा का जिकर आने पर उसका मन करुणा से भर जाता। जब विवाह का निश्चय हुआ था तब भी ऐसा ही हुआ था। अब गंगव्वा बिना खाना खाये घर छोड़कर चली गयी है। देसाई जी के घर में है आदि विवरण बेटी से पता लगने पर उसका दिल पिघल गया। इस कारण बेटी और दामाद दोनों मान गये।

उसने अपने मन पिघलने की भावना को छिपाकर ऐसा दिखाया कि वह देसाईजी की बात रखने के लिए ऐसा कर रहा है। उसने दामाद और बेटी को अगले ही दिन जाने के लिए विवश किया। दुर्बुद्धि की विशेषता यह होती है कि वह सद्बुद्धि की राह पर चलने के लिए भी अपना ही एक कारण ढूंढ निकालती है।

लेकिन इस सब का परिणाम कुछ और ही हुआ। राघप्पा ने यह न सोचा था कि उसके द्वारा उपेक्षित विषय को लेकर देसाईजी उसमें और उसकी बेटी में भेदभाव पैदा करा देंगे। हर दूसरे तीसरे दिन भागी आने वाली रत्ना ने झगड़े के बाद पंद्रह दिन बीत जाने पर भी मुंह न दिखाया। किट्टी से राह में ही दो तीन बार भेंट हुई थी। उससे अपनी बेटी के बारे में क्या पूछता? रत्ना का मुख दिखायी न देने के कारण मन में तड़फड़ाहट होने लगी। जो भी हो पति के घर सुख से रहे, कहकर मन मजबूत बनाया। 'अब रावण हूं विनाशकाल आ गया है। एक-एक करके खो रहा हूं', बड़बड़ाते हुए सोचा, अच्छी बात है, देसाई एक और जगह तुझे झुका दूंगा।

दो आशाएं उसमें दिन-दिन जोर पकड़ती जा रही थीं। एक तो यह कि लड़का ही होना चाहिये। उसके लिए सत्यनारायण की पूजा करायी, मन्नत मानी, बंबई के प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास पांच रुपये मनीआर्डर करके प्रश्न पूछा। उससे भी उत्तर आया लड़का ही होगा। पांच आने और पांच सुपारी रखकर शरीर में देवता को खिलाने वाली जोगिन से भी पूछा। उसका उत्तर भी वही था। इस बारे में राघप्पा खुश था।

एक और भी आशा थी। वसंतराव का शांता से विवाह कराना। देसाईजी पर दर्प दिखा सकने के लिए उसके पास एक ही उपाय बचा था। इसलिए वसंत को घर आने के लिए काफी उत्साहित करता। उसे सदा शांता ही चाय पिलाती

पर वसंत कोई बात नहीं करता था। उसे संकोच था। वह सोचता जब उसे वह सर्राफे की दुकान वाला लड़का मिल रहा है तो वह मेरी ओर क्यों ध्यान देने लगा? केवल खादी के कपड़े पहनने से क्या लाभ? अगर उसे मुझे बेटी देनी है तो साफ-साफ क्यों नहीं कहता? तुरंत फल की कामना करने वाला वसंतराव विशेष लाभ की ओर ध्यान न रखते हुए अपने संपन्न घर में भी जो भोजन प्राप्य न था ऐसे स्वादिष्ट पकवानों, गप्पों और कभी-कभी ताश के खेल से संतुष्ट हो जाता।

वसंत के मन में एक संदेह था। संभवतः लड़की मुझे पसंद करती हो। ऐसा न होता तो मेरे राघप्पा के घर से निकलते समय फूल तोड़ने के बहाने बगीचे में क्यों दिखायी देती? वसंत जब पहले नाटकों के चक्कर में था तब उसने अपने लिए उक कलचर मोतियों का हार बनवाया था। उस हार को तुड़वा कर जनाने डिजाइन में फिर से बनवाकर काफी दिन से जेब में रखे शांता को देने का अवसर ढूंढ रहा था। आखिर एक दिन मौका मिल गया पर जगह ठीक न थी, रास्ता था। घर में शांता कभी अकेली न मिलती थी। चंपक्का उस पर पूरी निगाह रखती थी।

एक दिन सहेली के घर से आते हुए शांता रास्ते में वसंत के सामने पड़ी। वसंत रास्ते में उससे बात करेगा यह उसने स्वप्न में भी न सोचा था। वसंत ने उसके सामने आकर खंभे की भांति खड़े होकर पूछा, "राघप्पा जी शहर में नहीं हैं?"

"हैं तो।"

"घर में नहीं थे?"

"बाहर गये होंगे।"

"जरा यह देखो" कहकर वसंत ने जेब से हार निकाल दूर से ही उसके हाथ पर रख दिया।

वह उस हार को देखते हुए उसके बड़े मोतियों पर कोमल उंगलियां फिराने लगी। वसंत को उसकी उंगलियां भी मोतियों सी दिखने लगी। तो वह उत्साह से बोला, "मोती सच्चे नहीं, कल्चर्ड हैं।"

शांता समझ न पायी कि क्या बात करे। इसलिए तनिक अधीर होकर उसने

पूछा, "आपकी माता जी का है क्या ?"

उसने कहा, "नहीं मेरा ही है। गांव में नाटक खेलते समय राजा के अभिनय करने के लिए बनवाया था। तुम्हें पसंद है ? तो ले लो।"

इस पर शांता और अधीर हो गयी। इधर-उधर निगाह दौड़ाने पर उसने पाया कि इस दृश्य को गली में घरों की दो चार स्त्रियां अपने-अपने घर से काक दृष्टि से देख रही थीं। वर दूर होने के कारण इनकी बातें सुन पाना संभव न था फिर भी शांता को यह उचित न लगा। पहले जब उसने जलूस में भाग लिया था तब कुछ गिद्धों ने कहा था, 'ओह चंपा की लड़की है और कौन हो सकती है ?' वह अपमानजनक बातें याद हो आयीं। उसने सोचा अगर अब मैं इंकार कर दूं तो यह महाराज रास्ते में ही आग्रह करते जायेंगे। यह मोती भी कितने प्यारे हैं। फिर बोली 'अपनी सहेलियों को दिखाकर लौटा दूंगी' इतना ही कह कर उसे लेकर हाथ में उछालती हुई आगे चली गयी।

वसंत ठगा सा रह गया। उसने अपने को धन्य समझा।

दिन बीतते राघप्पा के लिए अपने को रोकना कठिन हो गया। एक दिन वसंत के सामने स्पष्ट रूप से बात खोल दी।

"वसंत मैंने अपनी शांता के बारे में बहुत सोचा। उस सर्राफ गोविंदराय का लड़का आज कह दूं तो नाचता हुआ आकर शांता से शादी कर लेगा, पर उनके घर के बारे में मुझे कुछ पता नहीं। दिखने में तो सभी अमीर दिखते हैं पर इन सर्राफों का कोई भरोसा नहीं है ? सोने को काटने वाला हाथ कसाई के हाथ जैसा होता है। उनकी बड़ी-बड़ी इच्छाएं होती हैं। घर में एक न एक झगड़ा लगा ही रहता है, जहर वगैरा। इनके तो खानदान ही अभिशप्त होते हैं। बच्चे पगले और बेवकूफ होते हैं। सारांश यह है कि मेरी हिम्मत ही नहीं पड़ती इस लिए मैंने एक बात सोची है।"

"क्या ?"

"हमारी तुम्हारी दोस्ती को दो साल हो गये। तुम्हारा स्वभाव मुझे पसंद है। तुम्हारे पिताजी के बारे में मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती जा रही है।... तुम्हारी लंबाई, ऊंचाई, तुम्हारा रूप, तुम्हारा स्वभाव सोलह आने हमारी

शांता के लायक है। यदि मैं तुम्हें अपनी शांता दे दूं तो मैं ही नहीं तुम, तुम्हारे पिता और तुम्हारा कुल भी धन्य हो जायेगा। मुझे इस बात में रत्ती भर भी संदेह नहीं है। दो दिनों से ही यह विचार मेरे मन में आया है। मुझे नींद नहीं आती है। अपने को रोक नहीं पाया इसलिए कह दिया।"

वसंत फूला न समाया। उसने कहा, "मुझसे आपकी बात काटना संभव नहीं। पिता जी को मना लीजिये मैं तो कल ही तैयार हूं।"

राघप्पा को इसी बात की अपेक्षा थी। इसलिए उसका उत्तर भी तैयार था। उसे पता था कि देसाई जी उसके बारे में अच्छे विचार नहीं रखते हैं। वे इस विवाह की बात को मान लें यह संभव न था। इसके अतिरिक्त एक बार उनके मुंह से 'न' निकल जाय तो उन्हें मनवाना कठिन कार्य था। इसके साथ ही अच्युत का विवाह पहले हो जाय बाद में वसंत का देखा जायेगा। देसाई जी यह बहाना भी कर सकते हैं। यही बात राघप्पा को पसंद न थी। उसका स्वप्न ही कुछ और था, वसंत को अपने पिता से स्वयं कहना चाहिए, उनसे झगड़ना चाहिए, अपना घर छोड़ कर इसके घर आकर रहना चाहिए, इसकी बेटी से शादी करके पिता के विरुद्ध दावा करके हिस्सा लेकर स्वतंत्र रूप से इसके कहने के मुताबिक चलना चाहिए। इतना हो जाय तो देसाई जी को हाथ का मजा मिल जाय। यह सब सोचकर राघप्पा बोला, "तुम्हें मंजूर है कि नहीं। वैसे खून का रिश्ता मजबूत होता है। पहले तुम अपना मन पक्का कर लो बाद में बताऊंगा।"

"हां मेरा मन पक्का है। आप अगली बात कहिए।"

"अब हमारी शांता पंद्रह पूरे करके सोलहवें में चल रही है। अभी और तीन साल ठहरें क्या तुम ऐसा सोचते हो ? यह बात पहले बता दो।"

"मैं ऐसा कहां कह रहा हूं ?"

"तुम नहीं, तुम्हारे पिता जी कह सकते हैं। पिता जी को मनाने की बात तुमने कही ना...। यह सच है तुम्हारे पिता जी मेरी बात काटेंगे नहीं... पर बड़ा लड़का अभी पढ़ रहा है उसकी पढ़ाई खत्म हो जाय। बाद में वसंत की शादी की बात सोचेंगे। यह बात तुम्हारे पिताजी कहेंगे। इसमें उनका कोई दोष भी नहीं। सामाजिक दृष्टि के अनुकूल सभी काम होना चाहिए, यह बड़ों की इच्छा रहती है। यदि वे ऐसा कह दें तो मैं तीन चार साल रुक नहीं सकता—शांता का सोलहवां

पूरा होते-होते उसका विवाह हो जाना चाहिए, यह मेरी इच्छा है।"

"तो कैसे हो ?" वसंत ने परेशान होकर गाल सहलाते हुए पूछा मानो उसे पिता के उस थप्पड़ की याद आ गयी हो।

"वह तुम्हारा काम है। यदि सच में ही तुम मेरी लड़की से शादी करना चाहते हो तो यह बात अपने पिता से स्पष्ट रूप से बता देनी होगी। तुममें यदि वह इच्छा है तो तुम अपने आप कहोगे। मेरे जैसे का इस विषय में कुछ कहना संभव नहीं है। देखो मेरी भी उमर अब आधी बीत चुकी है। चार आदमियों में यजमान माना जाता हूं। एक बेटी की शादी भी मैं कर चुका हूं। मैं यह बात तुम्हारे पिता जी से यदि कहूं कि बड़े भाई से पहले छोटे भाई की शादी कर दो तो चार आदमी मेरा यह कहकर अपमान करेंगे कि वुड्ढा हुआ अक्ल नहीं आई। वैसे इसमें कोई अर्थ नहीं है। हमारी शांता तुम्हारे योग्य लड़की है इससे तुम्हारा भाग्योदय होगा। इतना मैं कह सकता हूं। बाकी तुम्हारी दृढ़ता पर निर्भर करता है।"

वसंत और भी असमंजस में पड़ गया। बहुत सोचकर बोला, "आप जैसा कहेंगे मैं वैसा करने को तैयार हूं।"

"मैं एक ही बात कहता हूं। ... अपने पिता को मनाने का काम तुम्हारा है। हम इसमें हाथ नहीं डाल सकते। इतने में ही तुम सब समझ लो। तुम कोई बेवकूफ नहीं, मूर्ख भी नहीं। तुम सब समझते हो। हमारी शांता को भी तुमने देखा है। मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं। पुरुष का भविष्य उसके विवाह पर निर्भर करता है। शादी-ब्याह के मामले में कभी-कभी छोटों को बड़े लोगों को अक्ल सिखानी पड़ती है।"

वसंत इस विषय का एक ही जगह जिकर करने का साहस कर सकता था। वह मां के सामने हठ कर सकता था। वसंत कुछ निश्चय कर नहीं पाया। इसी मनोदशा में राघप्पा से विदा ली और घर पहुंचा।

पंद्रह दिन तक मां के साथ रसोई घर में खुसर-फुसर करने पर भी मां उस बात को देसाईजी के सामने रखने को एकदम तैयार न हुई। वह बड़े घराने की थी। ऐसी बातें उसके लिए एकदम नयी थीं उसे जब देसाईजी को दिखाने के लिए लाया गया था तब उसके साथ बत्तीस पैट्रोमैक्स वाले, बीस खुली तलवार वाले पहरेदार, दो बंदूकधारी, बैंडबाजे वाले और ढेर से रिश्तेदार आदि थे। अब वर

स्वयं यह कहे कि मुझे इसी लड़की से शादी करनी है और वह भी अपनी बेटी के विवाह में हजार रुपये भी वरदक्षिणा देने में असमर्थ राघप्पा जैसे आदमी के साथ समधीपना उसमें भी अच्युत का नंबर पीछे डालकर। यह सब बातें उसकी कल्पना से परे की ही थीं। असाध्य थीं। उसकी घुसफुस बातों से तंग आकर उसने स्पष्ट कह दिया "अगर तुम्हारा इतना ही मन है तो जाकर खुद कह दो। उस राघप्पा की बात मैं सुनना नहीं चाहती।"

मां यदि एक बार बात छेड़ देती तो यह आगे बात बढ़ा सकता था। लेकिन स्वयं आगे बढ़कर बात करने का धैर्य उसका कभी से समाप्त हो गया था। अब वह दोहरे संकट में फंस गया। इधर घर में बात आगे नहीं बढ़ पा रही थी, उधर राघप्पा को दिखाने लायक मुह न था।

इस प्रकार किसी भी निश्चय पर न पहुंच पाने के कारण वसंतराव ने राघप्पा के घर जाना ही बंद कर दिया।

देसाई को सब बातें पत्नी के द्वारा पता चल गयीं। एक बार नौकर के हाथ अच्युत का दूसरा पत्र राघप्पा को भिजवाया और कहलवाया कि पढ़कर लौटा दिया जाय।

एक दिन सहेली के घर जाने को सजधज कर तैयार हुई शांता को घूर-घूरकर देखने के वाद चंपक्का ने कहा, "शांता इधर आना।" उसे पास बिठाकर उसके ब्लाउज में छिपी मोतियों की माला को बाहर खींचकर पूछा, "यह किसने दी ?"

"मेरी सहेली की है।"

"सच बोलो।"

"सच सहेली की है।"

"कौन-सी सहेली की ?"

"पद्मा"

"उसने क्यों दी ?"

'मां क्या पागल हो गयी हो, उसने दो दिन पहनने को दी।"

"शांता सच बोलो ? तुम्हारी शादी की फिकर के मारे मुझे रात को नींद नहीं आती है, यदि अब तुम झूठ बोलोगी तो आगे सुख नहीं मिलेगा।"

"मां झूठ क्यों बोलूं ? तुम पद्मा को बुलाकर पूछ लो। क्या तुम्हें शक होने लग गया है कि मैं चोरी करने लगी हूं ?"

चंपक्का को समझ में न आया कि क्या कहे। उसमें गुस्सा करने की भी ताकत न थी। यदि वह पति से शिकायत करे तो मालूम नहीं, वे किस ढंग से बात करें। शांता ने भी ऐसा जवाब दिया था कि मुंह बंद हो जाय। पहले जैसी शक्ति होती तो वह बेटी के गाल पर दो चांटे कस देती, पर अब वह भी कर नहीं सकती थी। अपने अव्यक्त क्रोध को दिखाने के लिए चंपक्का सरकती हुई शांता के पास आयी और उसकी बांह पर दो चिकोटियां काट लीं।

"मां ऐसा लगता है कि तुम दोनों धीरे-धीरे पागल होते जा रहे हो। पिता जी अपने आप में बातें करते रहते हैं और तुम छोटी बच्चियों की तरह चिकोटी काट रही हो।"

"कुछ नहीं बेटा, गलती हुई, जाओ तुम अपनी सहेली के घर जाओ।"

चंपक्का को इससे तसल्ली न हुई। शांता के चले जाने के बाद एकदम उसके मन में एक बात उठी। यदि वह सहेली की माला थी तो वह ब्लाउज में क्यों छिपा रही थी ? ...अच्छा आगे से और जरा ध्यान से रहना होगा यह सोचकर चुप रह गयी।

उसके सौभाग्य से वसंत का आना जाना भी कम हो गया।

35. फलश्रुति

चंपक्का को आठवें महीने में ही दर्द शुरू हो गये। घर पर बुलाये डाक्टर ने उसकी निःशक्तता को देखकर उसे अस्पताल ले जाने को कहा। राघप्पा एंबुलेंस मंगवाकर पत्नी को अस्पताल ले गया। मां के घर छोड़कर जाते समय शांता दुख से रो पड़ी। उसका रोना देखकर चंपक्का दर्द में ही बोली, "मेरे लौटने तक कृष्ण की मां के घर में रहना।" लेकिन शांता उसके लिए बिलकुल तैयार न हुई। वह

बोली, "मुझे कोई डर नहीं। मैं घर में रहूंगी।" चंपक्का पिछले पांच छह सालों में पहली बार घर से निकली।

पड़ोसी के लड़के भीमसेन के साथ राघप्पा अपनी पत्नी को अस्पताल लेकर चला। चंपक्का का चीखना चिल्लाना देखकर राघप्पा का दिल हिल गया। दिल चीर देने वाला करुण दृश्य देखकर उसका रोम-रोम कांप उठा। अस्पताल के बाहर शून्य मन होकर भगवान से प्रार्थना करता हुआ बैठा रहा।

चंपक्का का दर्द असहनीय हो गया। दर्द को सहने की ताकत उसमें न थी। ऐनेस्थेलिया देने के लिए डाक्टरों ने आपस में सलाह की। लेकिन निःशक्तता में उसका कुछ दुष्परिणाम होने के डर से डाक्टरों ने न दिया। प्रसूति कक्ष में ड्यूटी पर लगे डाक्टरों को भी चंपक्का की फटी आंखों ने घबराहट में डाल दिया।

इस दर्द में भी अपने को संभालकर चंपक्का ने उठकर बैठने का प्रयास किया। उसे देखकर एक नर्स दौड़कर आयी और उसे लिटाने की कोशिश करने लगी। इस पर चंपक्का ने हठपूर्वक उठकर पूछा, "वे कहां गये?" नर्स बोली, "वे बाहर हैं, आप चिंता न कीजिये।"

"सिर्फ एक बार मिलना चाहती हूं, जरा अंदर बुलाइये। एक बात कहनी है।" कहकर चीखी।

नियम के विरुद्ध होने पर भी डाक्टर से अनुमति लेकर नर्स बाहर चिंता में डूबे राघप्पा से बोली, "अभी देर है, अंदर आपको बुला रही हैं, आप अंदर जा सकते हैं।" राघप्पा को रोना आ गया। वह यह सोचकर भीतर गया कि अंतिम भेंट के लिए बुला रही है।

सिसकियां लेते हुए उसने पूछा—"क्यों? ...कैसी हो?"

क्षण भर को उसकी आवाज सुनकर चंपक्का ने उसके दुःख की ओर ध्यान न देकर दर्द से ऐंठते हुए उसने पूछा—"आप यहीं बैठे हैं?"

"हां"

"आपकी अक्ल ठिकाने में है या नहीं। घर में शांता को अकेली छोड़ आये हैं? भीम को यहां छोड़कर आप घर जाइये। मुझे कुछ नहीं होने वाला है। आप आना ही चाहते हैं तो उसे साथ ले आइये। ...जाइये। अगर आप नहीं जायेंगे तो मेरा मांस खाने के बराबर होगा।" गुस्से में इतना कहकर वह बिस्तर पर टिककर

बैठ गयी। फिर दर्द उठने पर कराहते हुए तड़पने लगी।

राघप्पा अंगोछा मुख पर डालकर 'हूं' 'हूं' करके एक क्षण को रो पड़ा। नर्स के उसके कुरते को खींचने पर उसने अपने को काबू किया और आंखें पोंछता हुआ बाहर निकल आया।

"भीमय्या तुम यहीं रहो। खाना भेज दूंगा। यदि कुछ पता चले तो साइकल से आकर पता देना। मैं एक-दो घंटे में आता हूं।" भीमसेन से इतना कह कर वह घर की ओर चल पड़ा।

घर में शांता कुछ देर तक अकेली बैठी रोती रही। बाद में अकेलेपन का अनुभव करके उसे डर लगने लगा। घर का बाहरी दरवाजा बंद किया। किसी दूसरे के घर जाकर बैठने की उसकी इच्छा न थी। सभी पास-पड़ोसियों के लिए उसके मन में तिरस्कार था। अपने घर में अकेली बैठ कर कांपती रहने पर भी उसे चिंता न थी। पड़ोस की कृष्ण की मां के घर भी कदम नहीं रखूंगी यह निश्चय करके मन बदलने को एक उपन्यास लेकर पढ़ने लगी, पर पढ़ा न गया।

पिछली बार कृष्ण की मां के घर जाने पर उसका बड़ा अपमान हुआ था।

रास्ते में उसकी बसंत से मुलाकात कानों-कान फैल कर एक दो महीने में कहानी बन गयी थी। शांता की सहेलियां अनजाने बन कर यह पूछने पर की मोतियों की माला कहां से आयी। उसने निर्विकार भाव से साहस पूर्वक कह दिया था 'पिता जी ने मेरे जन्मदिन पर बनवा दी है।' शांता के प्रति उसकी सहेलियों के मन में डाह थी. लेकिन उसके सामने कोई भी यह बात प्रकट न करती। किसी-न-किसी रूप में सभी ने यह प्रश्न पूछा। उसने सभी को यही उत्तर दिया। इन सुंदर मोतियों को देखकर कईयों के पेट में जलन हुई। बात बहुत फैल गयी पर शांता को कुछ पता न था। वह धैर्य पूर्वक रही। उसका धैर्य कुछ बुढ़ियों के लिए असह्य हो गया। उन्होंने अपनी लड़कियों को चेतावनी दी। साराबाई के मुख से यह उद्गार निकले 'अरे वह चंपा की बेटी है, कोई और नहीं।'

कृष्ण की मां की लड़की मंदाकिनी से शांता की बड़ी दोस्ती थी। कृष्ण की मां ने इन दोनों की मित्रता तोड़ने में असमर्थ होकर एक और रास्ता निकाला।

एक बार कृष्ण की मां के घर फूल और पान सुपारी देने की रस्म हुई। कृष्ण की मां ने उसे कुछ देर पहले ही बुलाया और उससे काफी काम भी कराया। गौरी

का मंडप सजाने में शांता ने तीन घंटे परिश्रम किया। जब घर लोगों से भर गया तो शांता ने ब्लाऊज में छिपायी हुई माला को बाहर निकाल इस तरह पहना जिससे सबको दिखाई दे। इसे देखकर कृष्ण की मां ने अपने आसपास की स्त्रियों को चुप रहने का इशारा करके मंडप के पास बैठी शांता के समीप आकर बोली अब अच्छी लग रही हो। गौरी मां मंडप में है या बाहर कुछ समझ में नहीं आ रहा। यह मोती तुम्हारे रंग पर हैं। क्यों री बहिनों ?

औरतें बोली, "हां हमारी चंपक्का की लड़कियों का रंग ही ऐसा है।"

शांता बड़ी लज्जा से पर झूठी विनय दिखाती हुई बोली, "अरे छोड़िए भी ये कल्चर्ड मोती हैं, सच्चे नहीं।"

स्त्रियों के झुंड में से एकाध की हंसी निकल पड़ी। कुछ बोली, 'अब हम चलती हैं अधिकांश औरतों ने इस मजाक की बात को सुना पर डर से चुप लगा गयीं। कुछ ने मुंह लटका लिये।

शांता वहां से तेजी मे घर चली आयी और उसने प्रतिज्ञा की कि पास-पड़ोस में किसी के घर न जाएगी। वह बाजार से ऊन और रेशम खरीद लायी और अपने भावी भाई के लिए जुराब और स्वेटर बुन कर और उपन्यास पढ़कर दिन गुजारने लगी।

इन सब अनर्थों की जड़ वसंत था। उसने भी उस तरफ आना बंद कर दिया था। उसको शांता ने मन-ही-मन कोसा। यह निश्चय करके कि यदि वह कभी मिल जाय तो उसे इस माला को उसके मुंह पर फेंक देना चाहिये। इसके लिए वह उसका पंद्रह दिन तक रास्ता देखती रही। इसीलिए गले में पड़ी वह माला उसे कांटों की तरह गड़ती थी। एक महीना बीत जाने पर भी वसंत उस ओर न फटका।

अचानक वसंत उसी दिन आया।

शांता को देखे बहुत दिन बीत जाने के कारण मन काल्पनिक चित्रों से बेचैन था। विवाह के लिए पिता से बात करने में असमर्थ होने के कारण वसंत ने इधर आना छोड़ दिया था। चंपक्का की बीमारी की खबर सुनी और इसी बहाने एक बार शांता का मुंह देखने की इच्छा से दौड़ा आया।

दरवाजा उड़का हुआ था। भीतर कोई दिखाई नहीं दिया। यह सोच कर कि शायद सभी चंपक्का के कमरे में होंगे उसने दरवाजे को खोलकर बीच के कमरे में पहुंचा।

चुपके से भीतर आये वसंत को देखकर शांता पहले तो घबराई। चंपक्का के अस्पताल जाने की बात बताने के बाद इतने दिनों के अनुभवों की याद करके गुस्सा दिखाया। अपने पूर्व निश्चय के अनुसार गले का हार उतारकर फिर लौटाना चाहा। इस हार के कारण हुए कटु अनुभवों को दो-चार टूटे-फूटे शब्दों में व्यक्त किया।

वसंत क्षमा याचना करते हुए उसके पांव पड़ने लगा। इस प्रकार गिड़गिड़ाने लगा मानों उसकी शादी हो ही चुकी हो। भगवान पर चढ़ने वाला फूल इसका निर्माल्य बन गया।

अस्पताल से चला राघप्पा अभी घर से करीब एक फर्लांग दूर ही था कि उसे अपने घर से निकलता हुआ वसंत दिखाई पड़ा। उसका दिल जोर से धड़कने लगा। वह तेजी से चलने लगा। दोपहर के एक बजे की चिलचिलाती धूप थी।

राघप्पा भागता हुआ घर में घुसा। बीच के कमरे में थकी-सी डरी-सी शून्य दृष्टि से दीवार की ओर निहारती बेटी को देखते ही 'रंडी' चिल्लाते हुए उसे बाहों से पकड़ कर जमीन पर धकेल दिया। उसने अंधाधुंध गालों और पीठ पर थप्पड़ लगाये। अंत में थक कर 'रंडी' तूने मुझे मार ही डाला कहकर सिर पर हाथ रखकर दीवार से ढासना लगाकर बैठ गया।

इतने में दरवाजे पर दस्तक हुई। आने वाला भीमसेन था। राघप्पा को देखते ही हूं-हूं करके सिसकते हुए बोला, "मामी चली"।

सुनते ही राघप्पा तांगा लेकर अस्पताल को भागा।

उसकी पत्नी के प्राण प्रसव के समय निकल गये थे। नब्ज छूट जाने के बाद बच्चा पैदा हुआ था।

बच्चा-लड़का-मरा हुआ पैदा हुआ था।

राघप्पा ने पत्नी और पुत्र के अंतिम संस्कार को निर्विकार होकर अपने आप

कराया। एकत्रित लोगों को यह कहने पर भी, 'हम सब साथ हैं' उसने किसी की न सुनी। बच्चे के शव को अपने हाथ में लेकर अस्पताल से श्मशान तक पत्नी के शव के पीछे-पीछे गया।

देसाईजी सारी व्यवस्था करने के लिए स्वयं आ पहुंचे, परंतु उनके आने से पहले ही राघप्पा ने अर्थी आदि का प्रबंध कर लिया था उसे जिन-जिन को समाचार पहुंचाना था उसकी भी व्यवस्था स्वयं कर चुका था। देसाईजी का काम केवल चंपक्का की अर्थी को कंधा देना भर रह गया था।

कुछ भी समझ न सकने पर वसंत अस्पताल में चंपक्का के अंतिम दर्शनों के लिये गया।

रत्ना और शांता बहुत रोयी। उनकी सांत्वना देने आयी वेणुबाई भी रो पड़ी। गंगव्वा ने साहस पूर्वक आगे आकर उन दोनों को छाती से लगाकर सांत्वना देते हुए कहा, 'मुझे ही अपनी मां समझो।'

उस समय गंगव्वा शोक के घर में रही। भाई को भी बहुत देर तक सांत्वना देती रही। राघप्पा चुपचाप सुनता रहा, उसे अब सांत्वना की आवश्यकता न थी।

36. देसाई के नाम एक पत्र

दूसरे दिन रात के दस बजे किट्टी जब शोक के घर से अपने घर सोने के लिए जाने लगा। उस समय राघप्पा अपने कमरे में बैठा काफी देर से कुछ लिखे जा रहा था। उसने किट्टी को बुलाकर कहा, "यह पत्र कल सुबह देसाईजी को अवश्य पहुंचा देना। इस समय सोते हुए होंगे। उन्हें जगाना मत। कल जाकर दे देना।"

किट्टी को उस दिन रात जल्दी नींद नहीं आयी। सब लोग राघप्पा की निंदा कर रहे थे। किट्टी के मन में भी उसके प्रति आदर कुछ कम हो गया था। इससे अतिरिक्त उसके मन में एक तरह का डर बैठ गया। यह समस्या उसके मन को

कचोटे जा रही थी कि दोष के लिए दंड यहीं। यहीं इसी संसार में ही मिल जाता है। इतनी सब बातें आंखों के सामने से गुजर जाने के बाद डर उत्पन्न होना स्वाभाविक नहीं है ?

दूसरे दिन देर से नींद खुली। उठते ही हाथ मुंह धोकर देसाईजी के घर वह पत्र पहुंचाकर शोक के घर की ओर तेजी से चला।

अभी वह आधा रास्ता ही तय कर पाया था कि पीछे देसाईजी का तांगा तेजी से आया। देसाईजी ने तांगा रोककर कहा, "मैं भी वहीं चल रहा हूं तांगे पर आ जाओ।" किट्टी आश्चर्य से चकित-सा तांगे पर चढ़ा। दोनों के राघप्पा के घर पहुंचने तक सुबह के कोई नौ बजे होंगे। घर के चारों ओर लोग इकट्ठा हो गये थे। भीतर से स्त्रियों के रोने पीटने की ध्वनि सुनाई दे रही थी। दरवाजे पर एक पुलिस का सिपाही पहरे पर खड़ा था।

रात को एक दो बार कराहने की ध्वनि रत्ना ने सुनी थी। उसे अपनी सास के नींद में बड़बड़ाना सुनने की आदत थी। इसके अलावा शोक-घर होने के कारण डर कर वह वैसे ही सो गयी।

दूसरे लोग थकावट के कारण बेखबर सोये हुए थे। गंगव्वा प्रतिदिन की भांति छह बजे उठी। उसने अपने भाई के कमरे का दरवाजा बंद देखा। उसने कोई पूछताछ न की। आठ बजे तक भी राघप्पा के बाहर न आने पर गंगव्वा ने रत्ना को उसे जगाने के लिए भेजा। अंदर से चिटकनी बंद थी। दरवाजा बहुत खट-खटाने पर भी दरवाजा न खुला। अंत में भीमसेन को बुलाकर पिछवाड़े से खिड़की में चढ़कर देखने को कहा गया। शीशे के लाल रंग के कारण भीतर का कुछ भी नजर न आया तो रत्ना ने शीशा तोड़ देने को कहा। शीशा तोड़कर भीतर देखने पर राघप्पा का शव गर्डर से लटका हुआ देखकर भीमसेन जहां खड़ा था वहीं से चिल्लाकर घबराकर नीचे गिर पड़ा। मोहल्ले में खबर के फैलते ही लोग इकट्ठे हो गये।

पुलिस ने आकर उसी समय पंचनामा शुरू किया था। शव की कमीज की जेब से एक चिट्ठी मिली।

"संबंधित सभी लोगों को मैं राघवेंद्र वामन बिदुगोळ यह सूचित करता हूं कि

मैं अपनी पत्नी की मृत्यु के शोक में और अन्य चिंताओं से तंग आकर पाप-पुण्य का विचार न करते हुए अपनी खुशी से अपने कमरे के गर्डर में रस्सी बांधकर गले में फंदा डालकर मर रहा हूं। मैं यह अपनी मर्जी से कर रहा हूं। इनकी जिम्मेदारी किसी पर नहीं है और ना ही किसी पर डाली जाय। कोई भी दुख न करे। मेरे संस्कार के लिए मैंने हमारी गली के कोने के लकड़ी-टाल के मालिक को पंद्रह रुपये दे दिये हैं और उसकी रसीद इस पत्र के साथ रख दी है। कुछ दिन से मुझे यह डर लग रहा था कि कहीं मैं पागल न हो जाऊं। इसलिए तीन मास पहले मैंने एक वसीयत तैयार करायी थी। मैं कसम खाकर कहता हूं कि उसी को मेरा कायदेशीरा वसीयतनामा समझा जाय। वसीयतनामा तिजोरी में रखा हुआ है और उसकी चाबी इसके साथ है। तिजोरी में एक सौ पिच्छहत्तर रुपये आठ आने छः पैसे कुल रकम है। तिजोरी वसीयतनामा और रुपयों को मेरे दामाद चि. कृष्णजी स्वामीराव कुलकर्णी अपने वश में लें। इस पैसे से मेरी पत्नी का क्रियाकर्म कराया जाये। सभी उत्तराधिकार उसी को मिलेगा। यह सब लिखते समय मैं अपने पूरे होशोहवास में हूं और मैंने किसी तरह की नशीली चीज का सेवन नहीं किया है।"

नीचे राघप्पा के हस्ताक्षर थे और पिछले दिन की तारीख थी। वही तारीख लकड़ी के टाल की रसीद पर भी पड़ी थी। लकड़ी के टाल वाले ने जवाब दिया, "राघप्पाजी ने रुपये देकर कहा, 'कल दो गाड़ी लकड़ी चाहिए।' हमने समझा कि साल भर के उपयोग के लिए चाहिए होंगी। इसलिए उनके कहलवाते ही लकड़ी भेज दी जायेगी।" राघप्पा के अंतिम पत्र के कारण पुलिस वालों ने ज्यादा जांच पड़ताल नहीं की। दरवाजा भीतर से बंद होने के कारण उन्हें दरवाजा तोड़ कर भीतर घुसना पड़ा था इसलिए उन्होंने किसी तरह का संदेह नहीं उठाया।

किट्टी ने संदेह की दृष्टि से देसाईजी की ओर दृष्टि डाली। देसाईजी बोले, "तुमने जो पत्र लाकर दिया वह मैं तुम्हें दिखाऊंगा। उसकी बात यहां मत उठाना। इससे आगे और आफत खड़ी हो सकती है।"

पुलिस वालों ने 'कारण' के कालम में पत्नी की मृत्यु और अन्य चिंताओं के कारण लिखा और शव को उत्तराधिकारी किट्टी के सुपुर्द कर दिया। शव को देख कर देसाईजी ने कहा, "किसी लड़की को यह न दिखाया जाय।" किट्टी ने भी एक

बार ही डरते-डरते देखा था। वह सुंदर मुख ऐसे होंठ दबाये था जैसे झगड़ा करने को तैयार हो। एक आंख दूसरी से कुछ ज्यादा बाहर निकल आयी थी।

और कोई बात न सोचकर किट्टी को शव के पास किसी को न आने देने की ताकीद करके देसाईजी आगे के काम में लग गये। एक घंटे के अंदर शव श्मशान पहुंच गया।

बारह दिन हो जाने के बाद देसाईजी ने किट्टी को अपने घर बुलाकर राघप्पा का भेजा पत्र दिखाया।

क्षेम श्री धारवाड़

श्रीमान बहादुर देसाईजी की सेवा में राघप्पा का साष्टांग नमस्कार। आपके प्रेम के कारण दो बातें आपके सम्मुख प्रस्तुत करता हूं। मुझे पराजय से डर लगता है। मुझे यहां आपको यही बताना है कि मैं आपसे हारा नहीं। आपने अपने बेटे अच्युत के पत्र मेरे पास भेजकर मुझे डराने का प्रयास किया। यदि आप ऐसा सोचते हैं कि मैं उनसे डर गया तो वह सच नहीं है। मैं यह सिद्ध करके दिखाता हूं। आपको यदि मैं दुष्ट नजर आता हूं तो मुझे इस बात का कोई दुःख नहीं है। मैं अपने ही सिद्धांतों पर चला हूं। मैं आज बिना किसी पछतावे के पाप-पुण्य से ऊपर उठकर समदृष्टि से अपने कृत्यों को देख रहा हूं। आज उस दृष्टिकोण का खो जाना ही मुझे दुख दे रहा है। जब से मुझे सद्विवेक सताने लगा तब से मानो मेरी शक्ति आधी रह गयी। यदि मुझमें पहले की भांति निडर होकर कार्य साधन करने की शक्ति होती तो आगे घटने वाली बातें न होतीं। जब मुझमें सद्विवेक की बुद्धि जाग्रत हुयी तभी आपने अपने बेटे अच्युत के पत्र भेजकर मुझे भूतकाल की याद दिलाकर नीचे गिराने की चेष्टा की। यदि मैं पहले जैसा राघप्पा होता तो मैं आपके पत्रों से कभी न घबराता। घबराया तो अब भी नहीं, उन पत्रों में मैंने अपने आप को देखकर पश्चाताप किया। बस। इतना ही। वैसे उन पत्रों का महत्व कुछ विशेष नहीं है।

उदाहरण के लिए आप चाहें तो पूना जाकर दस वर्ष तलाश करें। मुझे हानि पहुंचाने वाली कोई भी बात वहां ढूंढ़ नहीं पायेंगे। यह बात मैं स्वयं आपको लिखे दे रहा हूं, इससे आपको सत्य का पता चल जायेगा और यह भी स्पष्ट होगा कि

मुझे आपसे डरने का कोई कारण नहीं। इससे आपको मेरे अवगुणों के साथ-साथ अच्छे गुणों का भी पता चल जायेगा।

हमारी पितृअर्जित सारी जमीन गिरवी पड़ी थी। हम लोगों ने किसी प्रकार धारवाड़ में दो चार क्लास तक पढ़ाई की। मुझे यहां नौकरी न मिलने के कारण मेरा वेंकाटी के पास पूना जाना आपको अपने बेटे के पत्रों द्वारा पता लग ही गया है। तब मेरा विवाह हुए दो वर्ष हो चले थे। कई बातों के कारण (वह शायद आपको पता भी होगी) नौकरी लगने से पहले ही मुझे विवाह करना पड़ा। विवाह के वर्ष में ही हमारी रत्ना का जन्म हुआ। आमदनी भी बहुत कम थी। इस प्रकार कंगाल स्थिति में मैं नौकरी ढूंढ़ने पूना गया। पूना में नौकरी के लिए बैंकों, दफ्तरों के चक्कर काटे। समाचार पत्रों में विज्ञापन देखता रहा। इस प्रकार वहां एक सप्ताह बीत गया। कोई नौकरी मिलने की आशा न हुई। वेंकाटी के समान चौकीदार बनना मुझसे संभव न था।

वेंकाटी के चैक तुड़वाकर लाने के अगले दिन प्रातःकाल मैंने समाचार पत्र में ताजिमुद्दीन ड्राइवर के बारे में एक खबर पढ़ी। समाचार पत्र के कोने में छपा था कि उसने लक्ष्मी रोड पर एक बुड्ढे पर पिछले दिन मोटर चढ़ा दी थी और उसे पुलिस पकड़कर ले गयी। वेंकटराय समाचार पत्र पढ़ने वाला आदमी न था कभी भूले भटके पढ़ भी लेता तो कोने में छपे समाचार को पढ़ लेना संभव न था, इस कारण उस दुर्घटना का वेंकाटी को पता लगना असंभव था। अवसर से लाभ उठाने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। मैंने इस सुअवसर को अपने पेट की खातिर खोया नहीं। वेंकाटी जब पूजा पर बैठा था तब उसे 'ताजिमुद्दीन आया है' कहकर उससे चाबी लेकर दो हजार रुपये मैंने उठा लिए। भगवान आपको ऐसा मौका न दे कि आप अपनी पत्नी और बच्चों को उपवास करते देखें परंतु ऐसी परिस्थिति में इस प्रकार का काम करने वालों को अनादर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये।

लेकिन चैक जाली होगा इस बात की मुझे कल्पना न थी और वेंकटराय तो यह बात भूल ही गया था। मैं लौटकर धारवाड़ आया। एक सप्ताह के भीतर ही मुझे वेंकाटी का पत्र मिला। पता लगा चैक जाली था इसलिए उसे पुलिस ने हिरासत में ले रखा है। पूना जाने के लिए वकील से सलाह करके किसी प्रकार

वेंकाटी को जेल जाने से बचाने के लिए और जमानत देनें के लिए आवश्यक कागज पत्र तैयार किये। मेरा बहनोई हिम्मत करके जमानत देने आगे आया। मैं जमानत नहीं दे सकता था। क्योंकि मेरी जमीन गिरवी पड़ी हुई थी। मेरे पास दो हजार रुपये जैसे के तैसे पड़े थे। स्वामीराय को साथ लेकर पूना गया। वहां जाकर वेंकटराय को छुड़ाया। स्वामीराय ने उसके लिए पांच हजार रुपये की जमानत दी। तीनों धारवाड़ लौटे। वेंकाटी स्वामीराय की निगरानी में उन्हीं के घर रहने लगा।

उपर से हिम्मत दिखाने वाला स्वामीराय वेंकाटी का विक्षिप्त स्वभाव देख कर अंदर ही अंदर डरा होगा क्योंकि उसने मुझे बिना बताये वेंकाटी को कहा था 'मैंने तुम्हारी जिम्मेदारी ली है। तुम अपने हिस्से की संपत्ति मेरे नाम लिख दो।' आपको जो बख्शीश पत्र मिला है वह तैयार कराकर स्वामीराय ने वेंकाटी से हस्ताक्षर करने को कहा, लेकिन वेंकटराय के यह जिद पकड़ जाने पर 'मेरा भाई हस्ताक्षर करेगा तो मैं भी करूंगा', इस पर मुझे बुलाकर स्वामीराय बोला, तुम्हारी संपत्ति के लालच से नहीं बल्कि इसके स्वभाव के कारण मैं एक बख्शीश-पत्र चाहता हूं। पांच हजार कोई छोटी रकम नहीं है। मुझे भी बात सही लगी। मैंने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। मेरे हस्ताक्षर करने के बाद वेंकाटी ने भी हस्ताक्षर कर दिये।

इस पर भी वेंकाटी की चपड़-चपड़ बंद नहीं हुई। वेंकाटी एक विचित्र ढंग का आदमी था। उसे पता नहीं क्यों संपत्ति पर मोह हो गया था। 'मुझे धोखा दे दिया मेरी संपत्ति' यह कहकर दिन रात लड़ता था। जैसा कि आपके बेटे ने अनुमान लगाया है कि मैंने उस प्रकार वेंकाटी से बख्शीश पत्र वापस ले लेने के लिए नहीं कहा। पर एक दिन गुस्से में आकर स्वामीराय ने मूल बख्शीश पत्र को ही उसकी प्रतिलिपि समझकर वेंकाटी के मुंह पर फेंक दिया था। वह उसे लेकर हमारे घर आया। उसे वकील को दिखाकर उसकी संपत्ति उसे छुड़वाकर देने के लिए सिर खाने लगा। मैंने उसे, 'कल वकील के पास चलेंगे' कहकर तसल्ली दी। उस पत्र को देखते ही मैं पहचान गया कि वह प्रतिलिपि नहीं, मूलपत्र ही है। आश्चर्य से या वेंकाटी से तंग आकर मेरे मुंह से यह बात निकल गयी "तुम क्यों चिंता कर रहे हो। यह तो उन्होंने मूल बख्शीश पत्र ही दे दिया है। तुम उसे

लौटाना नहीं। तुम्हारी संपत्ति तुम्हें मिल ही जायेगी।' ऐसा लगा कि इस बात से उस विक्षिप्त को कुछ तसल्ली मिली। रात का खाना हुआ। मेरे दुर्भाग्य से मैंने उसे अपने घर खाना खिलाकर अपने ही घर सुला लिया। उस रात को गांव के किसी आदमी ने आकर दरवाजा खटखटाया। वेंकाटी 'अय्यगय्यो पुलिस आ गयी मुझे पकड़ लेगी" कहकर पिछवाड़े की ओर भाग गया। मैंने यह कहकर कि यह कहां जायेगा आगंतुकों के स्वागत में लग गया। परंतु उस दिन गये वेंकाटी का पुनः समाचार आपके पत्रों से मिला।

वेंकाटी के विषय में कल्पना और सच्चाई अलग-अलग नहीं है। मूल बख्शीश पत्र मिल जाने से या सचमुच पुलिस के डर से वह भाग निकला। यह मैं नहीं समझ पाया। दोनों ही बातें संभव हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी बहिन का घर उजड़ गया, बहिन विधवा हुई, उस बात की बदनामी मुझ पर आयी। यदि मैंने स्वयं अपने बहिनोई को उजाड़ा होता तो मुझे दुख न होता। आपने सुना ही होगा कि बच्चे के मुंह में स्तन देकर सोई मां जब जागी तो पाया कि बच्चा दम-घुट कर मर चुका था? ···मेरी स्थिति ऐसी ही थी। जब मैं अशक्त था तब यह सब मेरे सामने घटित हुए। उन दो हजार रुपयों का कुकर्म मेरे पीछे पड़ गया था। स्वामीराय की मित्रता उसके रहते ही है एक महीने में समाप्त हो गयी। वह घुल-घुलकर मर गया। घर तो पहले ही उजड़ गया था उन दो हजार रुपयों से मैं कुछ करना चाहता था। परंतु गंगव्वा मुझे कुत्ते की भांति दुत्कारती रही। मेरे घर से वेंकाटी का फरार होना ही गंगव्वा का मेरे प्रति द्वेष रखने को काफी बड़ा कारण था।

बहिन से मुंह छिपाकर मैं गांव में रहने लगा। खेतों को गिरवी से छुड़ाकर व्यवसाय शुरू किया। घर की स्थिति सुधर गयी। व्यवस्थित जीवन बिताने लगा। मैंने अपने जीवन का यह सिद्धांत बनाया कि जीवन में पुनः कभी मात नहीं खानी हैं तो किस काम को हाथ में लेना है भले वह कैसा ही काम क्यों न हो उसे पूरे मन से निर्दोष रूप से करना है। काम की सफलता के लिए हार, जीत, डर और शर्त आदि सभी विकारों को छोड़ देना चाहिये। इस विश्वास से मैंने प्रत्येक काम में नीति और अनीति के प्रश्न को दूर रखा। निर्विकार रूप से काम को पूरा करना ही मेरे जीवन का नियम बन गया था। इसलिए मुझे 'भरारि' नाम मिला।

धारवाड़ में फिर से आने के बाद मैंने पूर्ण प्रयत्न करके चि. कृष्ण को अपनी बेटी दी। मेरे अनेक उद्देश्यों में पुरानी कहानी को खत्म करके गंगव्वा के साथ पूर्ववत् संबंधों को स्थापित करना भी था। परंतु उसका हठ और अभिमान मेरी दुष्टता के लिए आह्वान सिद्ध हुए। उसके तिरस्कार ने मेरे अंदर हठ को जन्म दिया। मैंने उसकी बात को काटकर यह विवाह कराया। उस विवाह में आपको भी बीच में डाल लिया था। क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगा कि इसमें धोखा हो गया।

रही अब मेरी दूसरी पराजय की बात। मुझे पता था कि वरदक्षिणा के लिए रुपये कम हो जायेंगे। चि. कृष्ण के रुपये आपके पास जमा हैं, यह जान जाने के के बाद मैंने सोचा कि पांच सौ रुपये आपसे पूरा करा लूं। आप उस चक्कर में नहीं फंस पाये पर आप इस बात के लिए मेरी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। लेकिन करने गया था कुछ, हो गया कुछ। मेरा एक प्रियजन उन पांच सौ की कमी को पूरा करने की खातिर, मेरे अनजाने में ही प्रयास करके काल का ग्रास बन गया। वह पीड़ा अब भी है। मेरे पतन के समय की इस दूसरी हार ने मुझे तोड़ दिया। मैं कुछ और भी कर सकता था। महबूब की मृत्यु का दुख आप जैसे सम्मानित समझ नहीं पायेंगे पर मुझे तो उसने तीन महीनों में ही बुड्ढा बना दिया। मेरी काम की पकड़ ही जाती रही। मैं कुछ और ही राघप्पा हो गया। मेरी मुट्ठी ढीली पड़ गयी।

पानी में पत्थर फेंककर यदि हम चाहें कि लहरें हमारी ओर चली आयें तो क्या लहरें हमारी बात सुनेंगी। मैं कवि की भांति बात नहीं कर रहा हूं। परंतु मेरे अनुभवों के सारस्वरूप और मेरे कर्मों के भोग के रूप में यह प्रश्न मेरे सामने चार वर्ष से लगातार खड़ा है। ...कुछ करने जाओ और कुछ हो जाय, इसका जिम्मेदार कौन है ? ...भोगने वाले कौन हैं ? मैं अनुभव की बात कहता हूं वेदांत नहीं। पर अनुभव ही वेदांत की ओर जाता है। इस प्रकार मेरा मन जो अब नरम पड़ चुका है, सारी पुरानी बातों को याद करके दुखी हो रहा है। मैं अशक्त हो गया हूं। दैहिक शक्ति अभी कुंठित नहीं हुई परंतु एक उद्देश्य की ओर लक्ष्य करके संधान करने की एकाग्रता दिन-दिन घटती जा रही है।

अब अगला अनुभव सुनिये। मुझे काम से आलस्य नहीं, पर डर शुरू हो गया

है। एक करने जाकर कुछ और ही हो जाय तो उसका जिम्मेदार कौन होगा? यही प्रश्न दिन-दिन तीव्र रूप से भासित होने के कारण काम करते समय अनचाहे परिणाम निकलने का डर शुरू हो गया है। पर कर्म छोड़ेगा? काम तो करना ही पड़ता है। इसलिए पहले सोचकर काम स्वीकार करने की बात मैंने छोड़ ही दी, और उसके पूर्व संचित प्रवाह के साथ बहने लगा। अनचाहे ही मन में नयी-नयी आकांक्षाएं जन्म लेने लगीं। मेरे डर का मूर्तिमान स्वरूप मेरी बहिन को मेरी संपत्ति न मिले। इस उद्देश्य से पत्नी के प्राणों को जोखों में डाल लड़का प्राप्त करने का यत्न किया। मैं इसमें जीत ही गया था, पर दैव ने मेरा विरोध करने की कसम खा रखी थी। अब कोई चारा न रहा।

बहुत बुरे समय में आपने वे पत्र भिजवाये। मैं उन से डरा नहीं। पुरानी स्मृतियां अधिक स्पष्ट होने के कारण मैं डरपोक बन गया। मेरे कामों के परिणाम मेरी इच्छा के अनुसार न निकलने के कारण मुझे डर लगने लगा। मेरी बहिन जिस दिन अपने घर से आपके घर भूखी-प्यासी पहुंची थी, उस दिन मैंने आपके कहने से डर-कर बेटी को नहीं भेजा था बल्कि गंगव्वा के बारे में मेरे जैसे व्यक्ति के मन में भी दया है। उसे कष्ट करते देख सकता हूं, पर उसका भूखा रहना मैं नहीं सह सकता।

अब मेरी अंतिम हार मेरी पत्नी की मृत्यु! ऐसा लगता है। कभी-कभी भग-वान दुर्बुद्धि के अतिरेक से ही सुबुद्धि प्रदान करता है। मैंने अपनी पत्नी को हज़ार ढंग से प्यार किया। इतना अनुभव आपको होना संभव नहीं है लेकिन अब मुझे पता चला कि हज़ारों एक गुणा भी प्यार हो सकता है। जब मैंने उसके साथ अन्याय किया, जब उसने दर्द सहे, उसने सब कुछ मूक रह कर सहन किया और अंत में चल बसी। तब मेरे जैसे व्यक्ति के मन में भी करुणा, ममता, माया लबा-लब भर उठी। अपार दया! समुद्र की लहरों के समान उठने वाली दया।... मुझे संदेह होता है कि साधु-संतों ने भी इसी प्रकार भगवान से प्रेम किया होगा। कितने भी आंसू क्यों न बहें यह दया समाप्त होती। देह एक हो जाय पर यह ममता समाप्त नहीं होती। मैंने कभी नहीं सोचा था कि मेरा अपनी पत्नीके प्रति इतना अपार और उन्नत प्रेम मेरे मन में उत्पन्न हो जायेगा। वैसे मेरा विवाह क्षणिक सुख की आशा के कारण ही हुआ था।

अब अंतिम विषय। आपका लड़का वसंत दृढ़ व्यक्ति नहीं है। मार से डर गया। आपको छोटी-मोटी हानि पहुंचाने से मुझे संतोष न हुआ। यदि वह कुछ साहसी होता तो आप मेरे असली हाथ देखते। आपके देखते-देखते मैं अपनी लड़की से उसका विवाह करके उसका हिस्सा दिलाने के लिए आपको कोर्ट के कटहरे में खड़ा किये बिना न मानता। पर आपके वसंत जैसे प्रतिद्वंद्वी को लेकर अखाड़े में उतरने में मैं ही अविवेकी था।

आपके वसंत को मैं अपनी बेटी देना चाहता था परंतु जब मैं अपनी पत्नी को अस्पताल ले गया था तब उसने उसकी चोरी की है। यह खबर कुछ ही दिनों में फैल जायेगी। इसमें संदेह नहीं। पर इस बारे में मैं आप से कुछ विनती करना नहीं चाहता। इतने दिन में मैंने आपसे द्वेष किया है अब आपको भी एक मौका मिल जायेगा। इसके साथ ही यह चि. शांता की अपनी गलती भी है। मैंने भी अपनी पत्नी की चोरी की थी पर पत्नी ने राघप्पा से प्यार किया था। मेरी बेटी और मेरी पत्नी—दोनों में धरती आकाश का अंतर है। उसे अपने अविवेक की कीमत चुकानी पड़ेगी। वह जब चाहे मेरे पास आ सकती है। मैं उदाहरण छोड़े जा रहा हूं।

मैं आज रात को ढाई बजे काम से निवृत्त हो रहा हूं। इससे पहले यदि मैं कहीं हारा हूं तो आप से नहीं। यह स्पष्ट कह रहा हूं। यह मेरा अंतिम काम है। कृपा बनी रहे।

आपका पुराना प्रतिद्वंद्वी
—राघप्पा

37. उपसंहार और अच्युत का तीसरा पत्र

राघप्पा की मृत्यु के बाद छः महीने में किट्टी के घर का वातावरण ही बदल गया।

राघप्पा के वसीयतनामे में यह बात स्पष्ट लिखी थी कि मेरे यहां यदि लड़का

पैदा हो तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता यदि लड़की पैदा हो जाय तो दत्तक लूं या न लूं मेरी संपत्ति चि. कृष्ण को ही मिले। उसी को दत्तक लेने का विचार है परंतु मैं डरता हूं कि मैं कहीं पागल न हो जाऊं अगर ऐसा हो जाय और मैं दत्तक न ले सका तो भी मेरी संपत्ति उसी की होगी। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट कर दिया था यदि वेंकटराय अपना हिस्सा मांगे तो दे दिया जाय, शांता का विवाह कर दिया जाय और जो बच्चा हो उसे पाला जाय। यदि पत्नी बच जाय तो उसे भी पालना होगा। ब्राह्मणों की सलाह के अनुसार एक मास तक किट्टी राघप्पा का घर छोड़ शांता को साथ लेकर अपने ही घर में रहा। उसके बाद राघप्पा के घर की ग्रहशांति कराकर वह वहीं रहने लगा। किट्टी के मन पर यह सब भयानक घटनाओं ने हथौड़े की भांति चोट की थी, और उसका दिमाग शिथिल हो गया था। वह एक ही चोट में कर्मठता की ओर कूद पड़ा। भांय-भांय करते हुए घर में ग्रह शांति के मंत्रोच्चार से शांति स्थापित हुई। इससे उसे कर्मठता में अपार आनंद आया। वह बहुत गहराई से सोचने वाला आदमी न था। अब सिनेमा की जगह कीर्तन और पुराण कथाओं में जाने लगा। महीने दो महीने में सत्यनारायण की कथा होने लगी। चाय की दुकान पर जाना एकदम बंद सा हो गया। जार्ज के साथ भी मित्रता नाम मात्र को ही रह गयी। उनके घर में भी चाय पीना बंद कर दिया। उसने बाल छंटवा दिये और बीच में चोटी बढ़ने लगी। उसने 'शालिग्राम की महिमा', नाम की मराठी की पुस्तक डेढ़ आने में खरीदी और रोज उसे पढ़कर शालिग्राम का अभिषेक करने लगा। प्रतिदिन आधा घंटा संध्यावंदन करने लगा। इससे चुस्ती बढ़ी। घर में उसका मंत्रोच्चार देखकर सब आदर करने लगे। कचहरी और दफ्तर में गप्पें बंद हो जाने से काम भी अच्छा होने लगा। इससे वहां भी जो बात उसे समझ न आती थी अपने आप समझ में आने लगी। हाथ में पैसे रहने लगे। मुंह भी वैदिक तेज से चमकने लगा। शरीर भी कुछ भर चला। अब किट्टी के जीवन में संतुलन आ गया था।

किट्टी ने अपने स्वभाव और आंतरिक मनोवृत्ति को समझा। वह सामान्य व्यक्ति था। इससे आगे बढ़ना उससे संभव भी न था। भले ही और बीस वर्ष बीत जायें पर उसमें कोई विशेष परिवर्तन आने वाला न था।

रत्ना का मूल्य और घट गया। मां-बाप के मरने पर 'मैं' तेरी मां नहीं हूं क्या ?

यह कहने वाला भी कोई है इस भावना से वह अभिभूत हो उठी। कभी-कभी सास के लिए एक कटोरा दूध लाकर रात को पीकर सोने का आग्रह करती। उसके पति के प्रति सभी का आदर भाव देखकर उसके मन में भी उसके लिए आदर उत्पन्न हुआ। किट्टी पति ही नहीं गुरू भी बना। धीरे-धीरे रत्ना भी मुख पर हल्दी लगाने लगी और तुलसी को पानी देने लगी। पुत्र प्राप्ति के लिये गंगव्वा की बतायी बातों पर अमल करने लगी।

अनाथ होकर रोती हुई रत्ना शांता को गंगव्वा अपने बच्चों की तरह ही नजर आयी। उसने उनकी जिम्मेदारी ले ली। राघप्पा का प्रचंड अस्तित्व उठ जाने से गंगव्वा को सब शून्य सा दिखने लगा। राघप्पा का भूत उसे पकड़ लेगा यह डर उसे भीतर ही भीतर कुछ दिन तक सताता रहा। पांच-सात दिन तक उसे भयंकर स्वप्न दिखते रहे। लेकिन गंगव्वा ने राघप्पा की बेटियों पर प्रेम करके उस डर को भगाने का प्रयास किया। देसाईजी के यह कहने पर कि गंगव्वा अब मन को सचमुच उदार बना लेना चाहिए। वह बोली, 'गोपण्णा इनमें कोई भी मेरे लिए पराया नहीं है। वह समय ही ऐसा था।' घर में सबका आदर पाने के कारण एक महीने में उसे बहुत शांति मिली। बदरीनाथ जाने का विचार रखने वाली गंगव्वा का मन अब इस सुख को देखकर संसार की ओर मुड़ गया। सौभाग्य से गंगामाई अपने आप चलकर वहां आयी।

काशी में जिनके यहां यह लोग ठहरे थे, उनमें से दो रामेश्वरम की यात्रा करने निकले। रास्ते में अपने यजमानों के यहां ठहरते करते दक्षिणा पाते धारवाड़ भी आने। वे अपने विशिष्ट यजमान देसाईजी का घर ढूंढ़कर पहुंच गये। देसाईजी ने गंगव्वा को भी कहला भेजा। गंगव्वा किट्टी के साथ आयी और उनको रात के भोजन को आमंत्रित किया। भोजनोपरांत एक रुपया दक्षिणा भी किट्टी के हाथ से दिलवायी। उनसे आठ आने का एक बोतल गंगाजल लेकर भगवान की पूजा में रख लिया। इस प्रकार गंगामायी स्वयं घर पहुंच गयी।

अच्युत राव देसाईजी का पत्र पाकर पूना जाने का विचार छोड़कर धारवाड़ आया। उसने अपने से पहले वसंत की शादी के लिए कोई विरोध प्रकट नहीं किया। वसंत ने शांता से विवाह करने की देसाई जी की बातकी खुशी से स्वीकार कर लिया। राघप्पा की अंतिम इच्छा को पूरी करने के लिए देसाईजी ने

उसकी बेटी को बहू बना लिया। इससे लोगों ने उन्हें 'सच्चा मनुष्य है, बड़ा आदमी है' कहा। शादी की तारीख आदि का निश्चय कराकर अच्युत पूना चला गया। लेकिन वेणुबाई को इससे बड़ा दुख हुआ और उसने अपने को अपमानित-सा महसूस किया। दस एकड़ खेत के मालिक राघप्पा की बेटी, आत्महत्या करने वाले की लड़की, उसकी बहू बने, दो पैसे वरदक्षिणा भी नहीं। इसके अतिरिक्त अच्युत से पहले शादी यह सब बातें उसके मन को कचोटतीं। कभी-कभी वह खाना खाने के बाद पानसुपारी खाते हुए रो पड़ती। देसाईजी उसे दिलासा देने का प्रयास ही न करते क्योंकि यह रोना कभी निबटने वाला न था।

विवाह का निश्चय हो जाने के बाद शांता गले में वसंत माला मोतियों का हार और महबूबजान का दिया चंद्रहार पहनकर अपनी गली की सहेलियों से मिलने गयी।

देसाईजी ने किट्टी और गंगव्वा दोनों को बिठाकर उनका हिसाब पढ़कर सुनाया और स्पष्ट रूप से कह दिया, अब मैं इस पैसे का भार न उठा सकूंगा। किट्टी ने अब तक जो कुछ हुआ उसके लिए क्षमा मांगी। उसने कहा, 'इस पैसे का क्या किया जाय? यह बता दें। कर्जा मैं स्वयं उतार लूंगा।' इस पर देसाईजी ने सुझाया, कर्जा तुरंत चुका देना चाहिए और बाकी पैसा गंगव्वा के नाम से डाकखाने में जमा कर देना चाहिए। वैसा ही किया गया। गंगव्वा के नाम से बारह सौ रुपए डाकखाने में रख दिये गये और दूसरी ओर किट्टी भी ऋण मुक्त हो गया।

जोशी रामराय जार्ज वाशिंगटन कंबार गर्णीव की कठोर सत्य निष्ठा के कारण किस प्रकार अपने पद से हटा यह एक लंबी कहानी है। उसके तबादले के बाद जार्ज ही कार्यकारी हेड क्लर्क बना, बाद में ऊपर के अधिकारियों की स्वीकृति से वह उस पद पर स्थायी हो गया। उसके यहां स्टीफन के बाद एक और लड़का हुआ। सैमुएल सारम्मा से रत्ना की अकसर भेंट हो जाती तो रत्ना प्यार से उसके बच्चों को गोद में लेकर प्यार करती।

पूना गये अच्युत ने यह पत्र भेजा।

क्षेम श्री पूना

तीर्थरूप के चरणार्विंदों में अनेक नमस्कार। मैं कुशल हूं। अपनी मूर्खता के कारण मुझे शर्म आ रही है। अगर थोड़ी-सी बुद्धि से काम लेता तो आधी समस्या बंबई में बैठे-बैठे हल हो जाती। बंबई में मेरे कई गुजराती और मारवाड़ी मित्र हैं। उनके व्यवहार और रीति रिवाज से मैं परिचित हूं। वे बहुत अमीर और व्यापारी होने के कारण कायदे और कानून से बहुत डरते हैं। इस बात को जानने पर भी मैंने उस बात का उपयोग नहीं किया।

पूना में सेठ तख्तमल अब भी हैं। उनसे भेंट भी हुई। उन्हें यह बात अच्छी तरह याद है कि उनके यहां वेंकटराय नाम का आदमी काम करता था। चैक की जालसाजी के बारे में जब पूछा तब उन्होंने उड़ता-उड़ता-सा जवाब दिया। उन्होंने कहा, 'मैं ही भूल गया था। चैक तो ठीक ही था। इसलिए केस वापस ले लिया था।' उन्हें मैंने आगे की कहानी नहीं बतायी। यदि आवश्यकता पड़ी तो फिर से जाकर सारी बात बताकर उन्हें कान से पकड़ लेने की बात सोच रहा हूं।

इस बारे में मेरा स्पष्ट तर्क यह है कि हिसाब में कमी बेशी होने पर बिना आगापीछा सोचे सेठ जी ने पुलिस में रिपोर्ट कर दी। ज्यों ही पुलिस ने थोड़ी बहुत जांच पड़ताल शुरू की तो सेठ जी ने यह सोचकर कि सारी बात उनके बेटे पर ही आने वाली है तुरंत केस वापस ले लिया होगा। सभी सेठों के लड़के प्राय: अपने बचपन में गलतियां करते हैं। पर वे ही जब थोड़े बड़े हो जाते हैं तो अपने पिता के कारोबार को उनसे भी अच्छी तरह संभाल लेते हैं। यह इन लोगों में साधारण सी बात है। अब सेठ की दुकान पर उनके नाम के बोर्ड के साथ उनके बेटे बाबू भाई के नाम का बोर्ड भी लटका दिखाई देता है। व्यापारी सेठ को यह मंजूर नहीं था कि उसका बेटा क्रिमिनल कोर्ट के कटघरे में केवल साक्षी के लिए खड़ा हो। यह उनके व्यापार धर्म के विरुद्ध था। इससे उनकी साख ही बिगड़ जाती। इसलिए ऐसा लगता है कि चैक सही था उन्हीं से गलती हो गयी कहकर या दूसरा रास्ता पकड़कर कोर्ट से बिना झंझट से मुक्ति पा ली होगी। तजिमुद्दीन को चाहे तो डरा कर या उसकी मुट्ठी गरम करके भगा दिया होगा। मेरा विचार है कि केस का बिना कारण तारीखें आगे-आगे डलवा कर मूल कारण ही निर्मूल सिद्ध करके केस वहीं बंद करा दिया होगा।

मुझे लड़का समझकर सेठजी ने ज्यादा बातचीत नहीं की। इस अपमान के कारण मैंने आगे की बात न कहकर वहीं बात छोड़ दी। इसलिए आपको ही बंबई आना पड़ेगा। सेठ अच्छे आदमी हैं। मुझे इस बात का भरोसा है कि यदि उन्हें पता चले कि चैक से कैसा अनर्थ हो गया तो वे स्वयं आगे बढ़कर मदद करेंगे। उनसे केस का नंबर पता चल जाय, वही काफी है। आगे का रास्ता हम स्वयं ढूंढ़ लेंगे।

मेरा विचार है कि स्वामीराय को जो हानि हुई उसे हम सरकार से भरवा सकते हैं क्योंकि जमानती होने के कारण सरकार ने स्वामीराय से पांच हजार रुपये की वसूली की। आगे चलकर वही मामला झूठा सिद्ध होगा। केस बंद हो जाने के कारण और उसका परिणाम न मालूम होने और रिफंड के लिए किसी के अर्जी न देने के कारण रुपया अभी सरकार के पास ही जमा है। इसलिए अब स्वामीराय के वारिस कृष्णजी से रिफंड के लिए अर्जी दिलायी जा सकती है। इसके साथ ही वेंकटराय को अब अज्ञातवास करने की आवश्यकता नहीं है। वह भी पुलिस से बिना डरे घूम सकता है।

इस कार्य में हमें सेठ तख्तमल की सहायता भी चाहिए। वह मैं प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए आपही आने की कृपा करें। मुझे विश्वास है कि आपसे यह काम पूरा हो जायेगा। आपके यहां आने के बाद यहां आप मेरे एक तरुण वकील मित्र से मिलकर आवश्यक हो तो उसे साथ लेकर पूना भी जा सकते हैं। माताजी को अनेक नमस्कार। उन्होंने मुझसे आग्रह किया था कि मैं भी वसंत के साथ ही किसी रूप में विवाह कर लूं। मैंने उन्हें बड़ी निष्ठुरता से इंकार कर दिया था। इस कारण वे बहुत दुखी होंगी। उन्हें तसल्ली दीजिएगा। अगले पत्र में आप उनसे अवश्य दो पंक्तियां लिखवा दीजियेगा। यह मेरी विनम्र प्रार्थना है। भाइयों को आशीर्वाद। आते समय चि. पुरुषोत्तम को साथ लेते आइयेगा।

इति

आपका

अच्युत राव